



# ऋग्वेद-संहिता

( हिन्दी-टीका-सहित )



रामगोविन्द त्रिवेदी  
गौरीनाथ झा

वीर सेवा मन्दिर  
दिल्ली

★

क्रम संख्या

काल न०

खण्ड

## पढ़ना चाहिये ?

पुस्तक है।

। से प्राचीन पुस्तक है।

विष्णु, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि  
तम गुणांशलो है, सबका वेदमें बड़ा है

प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-

धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पण-

की तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक  
मुसलमान कुरानको, गाढ़ और सुदाकी विमल बाणी जानकर  
अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझ  
कर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका, इङ्ग्लैण्ड आदि,  
के विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें  
एक भी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं। इसी अभावकी पूर्तिके लिये  
हमने "वैदिकपुस्तकमाला" द्वारा सरल सरल हिन्दीमें चारों वेदोंका  
अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका द्वितीय पुष्प आपके  
सामने है। इसका मूल्य केवल सात भर २) ५० रु० रखा गया है;  
क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारतवासि वनैलीराज्यके अधीश्वर हैं।

॥) देकर 'वैदिक-पुस्तकमाला' के भागी ग्राहक बननेवालोंकी आगे  
कभी भी डाकग्रच नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही,  
सूचना देकर, बी० पी० से, भेज दी जायगी।

वैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुतलानगंज, मथुरा

# ऋग्वेद-संहिता

( सरल-हिन्दी-टीका-सहित )

द्वितीय अष्टक

टीकाकार

प० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

( "दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महामती मन्त्रालया" आदिके लेखक,  
"मेनापति", "विश्वदत्त" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशम) के  
जन्मदाता, "दक्षिण अर्धाकल सनातनधर्म-महामण्डल" (हरबन, नेटाल) के आजीवन  
सभापति, "गंगा" के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक )

- "और" -

प० गौरीनाथ झा व्याकरणनोर्थ

( प्राइवेट मेकंटर, बनेरी राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द  
मिश्र प्रदातृ तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला" के  
अन्यतम जन्मदाता और सम्पादक )

प्रकाशक

प० गौरीनाथ झा व्याकरणनोर्थ,

संवाहक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

मूल्य २०

जुलै, १९८६ विक्रमाय

{ प्रथम संस्करण  
१९७७



# ऋग्वेदसंहिता



—ॐ नमो नरेण्ड्रे—

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी०

# ॥ समर्पण ॥

जिनका हिन्दी-साहित्य-प्रेम भारत-प्रसिद्ध है, जो वैदिक धर्मके अनन्य  
भक्त हैं, जिनकी विद्वत्ता और लेखनकलाकी प्रशंसा  
शत मुखसे की जाती है, जिनकी राजशासन-  
निपुणता, सरलता, दानपरायणता और  
मृगया-प्रवीणता आदर्श और  
अनुकरणीय हैं, उन

— ❦ —

— बनेलो-नरेश, ब्राह्मण-रत्न —

## राजा कीर्त्यानिन्द सिंह बहादुर बी० ए०

— ❦ —

कमनीय कर कमलोंमें

— सादर समर्पित —

— ❦ —

— रामगोविन्द त्रिवेदी  
गौरीनाथ झा





# ॥ प्रेमोपहार ॥

\*\*\*\*\*

---

---

---





## प्राक् कथन

संसारके प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ तीन गिने जाते हैं—वेद, चीनियोंका शुकिंग और पारसियोंकी गाथाएँ अथवा अवस्ता। प्रबल विद्याव्यपनो यूरोपियनोंने इन तीनोंका यथेष्ट मन्थन किया है। इनपर, उन्होंने, लाखों रुपये खर्च किये हैं, कितने ही आलोचनाएँ—प्रत्यालोचनाएँ और भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। कह्योंने तो एक-एक शब्दका विश्लेषण और निर्दिष्ट करनेमें महीनों बिना डाले हैं! इन ग्रन्थोंके बलपर उन्होंने तुलनात्मक देवता-विज्ञान और भाषा-विज्ञान नामक नवीन शास्त्रोंको आविष्कृत अथवा पुष्पित किया है।

मबकी तो नहीं; परन्तु अधिकांश विद्वानोंका राय है कि, उक्त तीनोंमें वेद सबसे प्राचीन हैं। वेदोंमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। मानवजातिके प्राथमिक समाजकी माड़ी परखनेके लिये ऋग्वेदसे बढ़कर कोई घेद्य नहीं है। मनुष्यका क्रमिक-विकास-रहस्य जाननेके लिये ऋग्वेद कुञ्जी है। संसारकी सर्व-प्रथम विजेता जाति (आर्यजाति, जिसे यूरोपियन भी अपना पूर्वज कहते हैं) को तो सारी युद्धविद्या, निखिल धर्म-कर्म, आचार-विचार और सभ्यता-संस्कृतिका ऋग्वेद प्रामाणिक कोष ही माना जाता है। बल्कि संसारका सच्चा आदिम इतिहास जाननेके लिये ऋग्वेद दीप-स्तम्भ है।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर प्रचण्ड विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने ऋग्वेदके लिये, उसका तत्त्व जाननेके लिये, समय, श्रम, शक्ति और द्रव्यका अपार और सार्थक व्यय किया है। राय और ब्रूमफिल्ड जैसे कितने ही विद्वानोंने तो वेद-परिशोधनमें अपना जीवन ही खपा दिया था! यूरोपियनोंके सिवा संसारके अन्य देशों और भारतके भी कितने ही विद्वान्, उक्त कारणोंसे ही, ऋग्वेदके सामने सिर नवाते हैं। परन्तु हिन्दुओंके लिये इन कारणोंके सिवा एक और भी कारण है, जिसके लिये हिन्दू वेदोंको प्राणके समान मानते हैं। वेद हमारे धर्म-ग्रन्थ भी हैं। हमारे दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि इन वेदोंको व्याख्याएँ हैं—“वेदा मूलम्”—मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं। इस नाते भी जो श्रद्धा ईसाइयों और मुसलमानोंकी बाइबिल और कुरानपर है, वेदोंपर वह प्रत्येक हिन्दूकी है। परन्तु वेदोंकी बराबरी अन्य ग्रन्थोंसे नहीं की जा सकती; क्योंकि वेद मूल धर्म-ग्रन्थ होनेके सिवा विश्वकी सर्व-श्रेष्ठ आर्यजातिका वास्तविक इतिहास भी हैं। यही कारण है कि, मीमांसा, सांख्य आदि जैसे अनीश्वरवादी शास्त्र भी, अपनी अछछेय श्रद्धाके कारण, वेदोंको अपौरुषेय और नित्यतक मानते हैं। धर्म-शास्त्र-ग्रन्थोंमें तो वेदज्ञानशून्य हिन्दूका सामाजिक बहिष्कारतक लिखा हुआ है। प्रत्येक द्विजके लिये वेदाध्ययन अनिवार्य माना गया है।

शोक है कि, ऐसे अमूल्य ग्रन्थके ज्ञानसे हम वञ्चित हो रहे हैं। यही कारण है कि, हम हर तरहसे परावृत्त, दूरिद और दुःखी बन गये हैं। ध्यान रहे, वेदके अध्ययन और प्रचारकी ओरसे हमारी यह उदासीनता हमें रसातल भेज देगी।

१।१६४।४४—औरकर्मकर्त्ताकी चर्चा ।

१।१६४।४५—ब्राह्मणका उल्लेख ।

१।१६४—यह समस्त सूक्त पढ़ने योग्य है । यह सूक्त अथर्ववेदमें भी है । इस सूक्तकेसे विचार दशम मण्डलमें ही अधिक हैं ।

१।१९१।—१४ और १५ में मयूर और नकुलका उल्लेख ।

२।२।१०—चार वर्णोंका उल्लेख । १।७।९ में भी चारो वर्णोंका उल्लेख है ।

२।३।६—झिपोंका कपड़े बुनना । दो झिपों ताना-बाना भी करता था ।

२।७।१—भारत शब्दका उल्लेख ।

२।११।१७—दाढ़ीमें लगे सोमरसको झाड़ना ।

२।१२।१२—सूर्यका मात किरणों या गोंका चर्चा ।

२।१५।५—पहूणा, इन्द्रधुनि अथवा द्वावता नदाका उल्लेख ।

२।१५।५—अन्धे और लंगड़े परावृज ऋषिका कई कन्याओंके साथ विवाह । १।११२।८ भी देखिये ।

२।१७।७—आजावन अर्वावाहिता कन्याका पितृसम्पत्तिका अधिकारिणा बनना ।

२।१९।५—एतश ऋषिका चर्चा । १।६१।१५ भी देखिये ।

२।२०।७—काले रंगका द्रविड़जातिका उल्लेख ।

२।२३।२—वृत्र असुरके लिये देव शब्दका प्रयोग । १।३२।१२ भी देखिये ।

२।२३।३—१७—कोलों ( आदि द्रविड़ों ) और द्रविड़ोंके उपद्रव तथा क्षात्रताका उल्लेख ।

२।२७।१—छ सूर्यका नाम—द्वादशका नहीं । १।१४।३ भी देखिये ।

२।२७।१०—सौ वर्षकी परमायु ।

२।२८।९—ऋण-प्रस्तका परिताप ।

२।२७—२९—दोनों सूक्त भगवद्गीताके लिये पठनाय हैं ।

२।२९।१—गुप्त-पुसविनी स्त्रोका उल्लेख ।

२।३०।८—असुर-पुरोहित शण्डामर्कका उल्लेख ।

२।३२।४—कपड़े पर बेल-झूटे काढ़ना ।

२।३४।३—सोनेके मुकुट या शिरस्त्राणका वर्णन ।

२।३४।३—क्षोणी ( धीणा-विशेष ) नामके बाजेका उल्लेख ।

२।३५।६—इन्द्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेका उल्लेख ।

२।३८।४—कपड़े बुननेवाला स्त्रियाँ ।

२।३९।३—चक्रवाकका उल्लेख ।

२।३९।४—कवचका उल्लेख । १।२५।१३ भी देखिये ।

२।४१।५—सहस्र स्तम्भवाले भवनका उल्लेख ।

२।४२—४३—सूक्तोंके देवता शकुनि या कपिशुल-रूपा इन्द्र हैं । पक्षियोंका अशुभ छानि सुननेपर इन दोनों सूक्तोंका जप किया जाता है ।

३।१।१०—स्वर्ग और पृथिवीके पति सूर्यदेव हैं ; इसलिये छायापृथिवी सपत्नी कहे जाते हैं ।

३।४।८—भारता और सारस्वत शब्दोंका उल्लेख ।

३।६।९—तेतास देवोंका उल्लेख । १।३४।११ और १।४५।२ भी देखिये ।



## सायणाचार्यके मतानुसार द्वितीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

द्वितीय अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२० से १९१ सूक्त, द्वितीय मण्डलके सब (४३) सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्त तक हैं। हर एक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ दी गयी हैं।

१ कृष्णरोग-प्रस्ता वीषा	११२२१५
२ इष्टावध और इष्टरश्मि नामक राजाकी शत्रुतारक नेताओं ( वरुणादि ) से शत्रुता	११२२११३
३ महाभारि राजाके और अयवस राजाके पुत्रोंका उपद्रव	११२२११५
४ कक्षीवानका विवाह	११२२५१
५ स्वनय राजा द्वारा कक्षीवानको प्रदत्त दहेज	११२२६१३-५
६ लोमशाके साथ स्वनयका सम्भोग	११२२६१४-७
७ शम्बरके विनाशके लिये इन्द्रका त्रिषांदासके लिये साहाय्य	११२३०७
८ अंशुमतीके तटपर इन्द्रने कृष्णाक्षरकी काली चमड़ी उधेड़ी	११२३०१८
९ उंटपर चढ़कर युद्ध करना	११२३८१२
१० ऋषियोंका दीर्घ जीवन	११२३९१९
११ गभिणी दीर्घतमाकी माताके साथ वृद्धस्पतिका सम्भोग	११२४७१३
१२ गतहव्यकी दुग्धशून्या गौका दुग्धवती होना	११२५३१३
१३ घामनावतार	११२५४११
१४ अश्विनाकुमारोंका औषध-ज्ञान	११२५७१६
१५ आनार्यों द्वारा एक वृद्धकी बोटी-बोटी काटा जाना	११२५८१५ और ११२५९१२
१६ सुधन्वाके पुत्रोंद्वारा चममका बनाया जाना	११२६१११
१७ अश्वमांसका उपयोग	११२६२ पूरा सूक्त
१८ इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जक संलाप	११२६५ पूरा सूक्त
१९ मरुद्गणकी शृंगार-प्रियता	११२६६११०
२० पृथिवी द्वारा महासंधामके लिये मरुद्गणका प्रसूत होना	११२६८१९
२१ इन्द्र द्वारा अत्यन्त बड़ सात पुरियोंका तोड़ा जाना	११२७४१५

२२ दुर्योनि राजाके लिये इन्द्र द्वारा कुयवका वध	११२७४१७
२३ अगस्त्य और लोपामुद्राका कामपूण सम्भाषण	११२७९ पूरा सूक्त
२४ दूषते दुष्पु तुषपुत्रके लिये अश्विनीकुमारोंने समुद्रमें मौका दौड़ाया था	११२८२१५-६
२५ विषाक्त सरिसृपगण	११२९१ पूरा सूक्त
२६ इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया	२१२११२९
२७ इन्द्रका दस सौ घोड़ोंपर प्रभुत्व। दम्भोति ऋषिका दस्युओं द्वारा श्राण पाना	२१२३१९
२८ निन्यान्वे बाहुवाला उरण	२१२४१४
२९ शुष्णका स्कन्ध-हीन होकर मरना	२१२४१५
३० वर्षीके सौ हजार पुत्र	२१२४१६
३१ इन्द्रने सिन्धुको उत्तरवाही किया	२१२५१६
३२ अन्धे और लंगड़े परावृजके विवाहके लिये कन्याएँ आर्थी; पर परावृजको इस प्रकारका देखकर भाग गयी; पीछे परावृज भी दौड़े - इसी क्षण इन्द्रकी कृपासे वे सुन्दर अङ्गवाले हो गये	२१२५१७
३३ इन्द्रने सुमुर् और धुनि अश्वोंको दीर्घ-निद्रित करके विनष्ट किया	२१२५१९
३४ इन्द्र द्वारा पर्वतोंका परास्त होना	२१२७१५
३५ अनेकानेक घोड़ोंवाले इन्द्र	२१२८१५-६
३६ अगिरा लोगोंको गो-प्राप्ति	२१२८१५
३७ गौओंका अन्वेषण करते समय अगिरा लोगोंके विकट मार्ग	२१२८१६-७
३८ रुद्रदेवका दवा तैयार करना	२१२९१७
३९ रुद्र द्वारा पृथ्वीके उदरसे मरुतोंका जन्म	२१३४११
४० रुद्र द्वारा पृथ्वीके अधोभागका दोहन	२१३४१२
४१ समुद्रसे उच्छ्वःश्रवाका जन्म	२१३५१६
४२ स्त्री द्वारा वस्त्रका धुना जाना	२१३८१४
४३ पक्षियों द्वारा शकुन	२१४२-४३
४४ जन्मके साथ ही अग्निने सुवनोंकी प्रकाशित किया	२१४२-४४





## देव-विवरण

इला (भू-देवी)	१।१२८।१	अमुला	१।१८६।१०
	१।१४२।१	इन्द्र और त्वष्टाकी वाद्यता २।१।१९। तैत्तिरीय संहिता (२।५।१)	
	१।१८६।१	और वातपथ ब्राह्मण (१।६।३)	
	१।१८८।८	में भी यह कहा है।	
	२।१।११		
	३।१।२३	राका, सिनीवालो, गुंगु	२।३२।५-८
आसी देवता श्रित और श्रैतन	३।४।८	मस्तोका बाइन पृषतो वा	
	१।१४२ सूक्त	बिन्दु-चिह्नित मृग	२।३४।३ । प्रथम अष्टक (१।३।२)
	१।१५८।४-५ । प्रथम अष्टक (१।५८।५) भी देखिये।		भी देखिये।
रोदसी (विद्युद्देवता)	१।१६७।६	गरुत्मान् (गरुड)	१।१६४।४६
इन्द्रके साथ मरुद्गण	१।७।१४	अधर	१।१२२।१
अद्विर्बुध्न [रुद्र] वा अष्टि	१।१८६।५ । रुद्रके सम्बन्धमें	३३ देवता	( १।१३९ और ३।१।९
	१।४३ सूक्त देखिये।		
	२।३।१६		

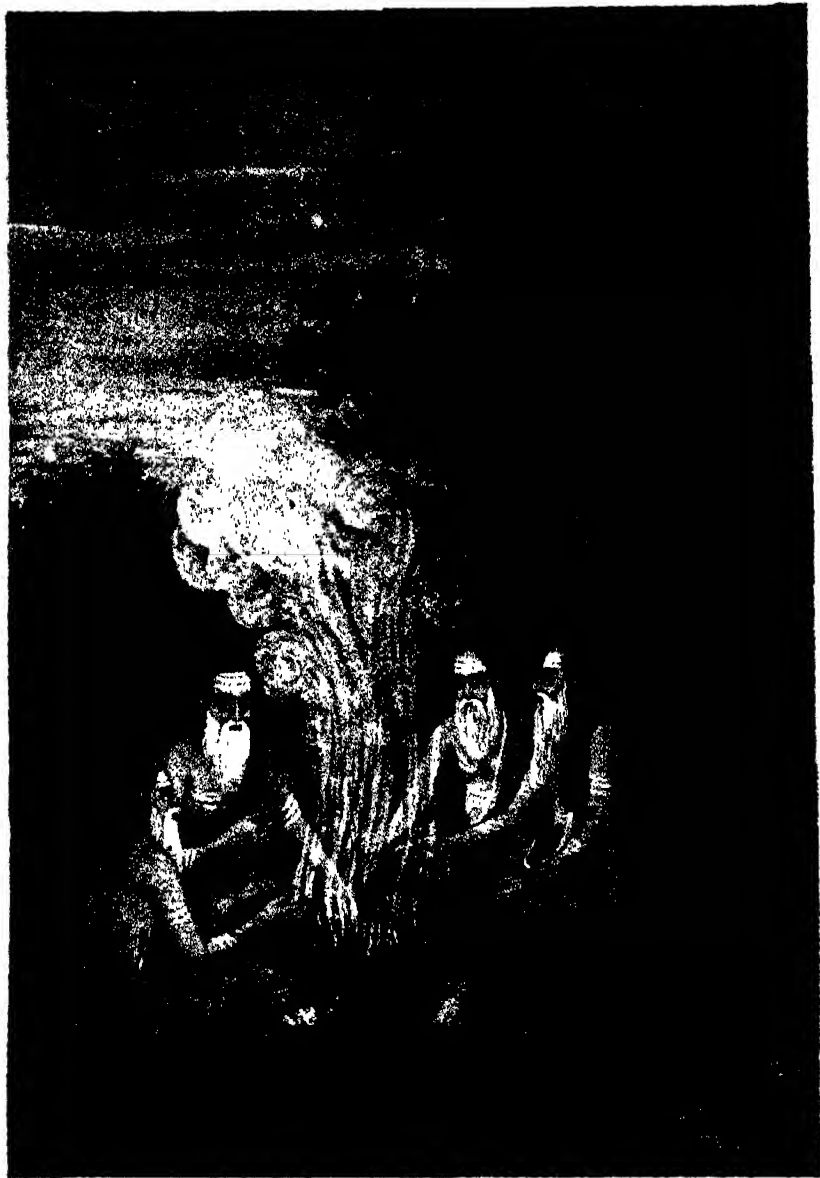
## वैदिकपुस्तकमाला की नियमावली

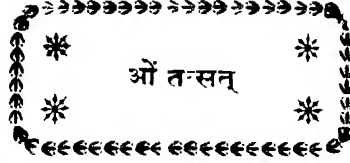
- ( १ ) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-बहिर्न चार्ग वेद और विशेषतः धार्मिक ग्रन्थ हो गूँथे जायेंगे।
- ( २ ) १) भंजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और "पांगरा" के माहकोंको किसी भी पुस्तक पर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा।
- ( ३ ) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।
- ( ४ ) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, बी० पी० से, मंजी जायेंगी।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णागढ़, सुलतानगंज, भागलपुर



# ऋग्वेद-संहिता



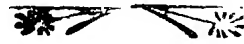


# ऋग्वेद-संहिता

( द्वितीय टंक और द्विपनियोंसे संयुक्त )



२ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।



१२२ सूक्त । विश्वदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्त तक कक्षीवान् ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्रवः पन्तं बहुमन्योन्यो यज्ञं रत्राय मीहुषे भगध्वम् ।

दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषु येन मनसो रोदर्याः ॥१॥

[ क्रोध-विरहित श्रुतिवको, तुम लोग कर्मफलदाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन वन्म अर्पण करो । मैं भी उन दुलोकके अक्षर ( देव ) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्गणकी स्तुति करता हूँ । जैसे तूणीर द्वारा शत्रुओंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर महर्षिके द्वारा शत्रुओंको निरस्त करते हैं ।

पत्नीव पूर्वहृतिं वावृधध्या उपास्तान्ता पुरुधा विदाने ।  
 स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्व धिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥  
 ममस्तु नः परिज्मावसर्हा ममस्तु वातो अपां वृषएवान् ।  
 शिशोतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥  
 उतत्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।  
 प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४॥  
 आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नशे ।  
 प्र वः पूष्णे दावनर्ह्य अच्छा वोक्षेय वसुतामिमघेः ॥५॥  
 श्रुतं मे मित्रावरुणात्वेमोत श्रुतं रुदने विश्वतः स्मीम् ।  
 श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुश्रुवा सिन्धुर्गद्भिः ॥६॥  
 स्तुपे सा वां वरुण मित्र रातिर्वाः शता पृक्षशमेपु पत्रे ।  
 श्रुतरथे प्रियगथे दधानाः श्वयः पुष्टि निरुध्यानासो अरमन ॥७॥

२ जैसे स्वामीके प्रथम आह्वानपर स्त्री शीघ्र आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता आवाधि स्तुतियों द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वानपर शीघ्र आवे। और जिन सूर्यकी तरफ उस देवी हिरण्यवर्ण किरणोंमें युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्यकी शोभासे शोभन लगे।

३ वसनयोग्य और सवेतोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ावे। वाग्नि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ावे। इन्द्र और पर्वत (मेघ) हमारी बुद्धिको बढ़ावे। विम्बेदेवता, हमें पौष्टिकता देनेकी चेष्टा करो।

४ मैं उशिजका पुत्र हूँ। श्रुतिबोध, मेरे मित मित्र-वरुण और स्तुति-भाजक अग्नि-कुमारोंको, संसारको प्रकाशित करनेवाली उषाके समय, बुलाओ। जलक नामक पवित्रता स्तुति करो तथा मेरे सहस्र स्तोता मनुष्योंके मानव-स्थानीय अहोरात्र-देवताओंको भी स्तुति करो।

५ देवता, मैं उशिजका पुत्र कभीधान हूँ। मैं तुम्हारे सम्बन्धमें कहने योग्य स्तोत्रका, आह्वानके लिये, पठ करता हूँ। अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोगके चिकित्से लिये घोंघा नामक वृक्षवादिनी महिलाने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ। देवो, फलदाता पूषा देवकी भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी घनकी भी स्तुति करता हूँ।

६ मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो। यज्ञ-गृहमें समस्त आह्वान सुनो। प्रसिद्ध धनशाली जलाभिमानि देव खेतोंमें जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनो।

७ मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जिस स्तोत्रसे अन्नका नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जाता है; इसलिये वक्षीवान् (श्रुति) को अपनी प्रसिद्ध गीतों दो। प्रसिद्ध और सुन्दर रथमें युक्त वक्षीवान्के प्रति प्रसन्न होकर तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सत्ता सनेम नहुषः सुवीगः ।  
 जनो यः पञ्चेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥  
 जनो यो मित्रावरुणावभिधृगणो न वां सुनीत्यक्षण्याधुक् ।  
 स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदी होत्राभिर्ऋतावा ॥९॥  
 स ब्राधतो नहुषो दंसुतूतः शर्धन्मरो नरां गूर्तश्रवाः ।  
 विसृष्टरातिर्बांनि बाह्वृन्वा विश्वासु वृत्सु सधमिच्छुरः ॥१०॥  
 अधगमन्ता नहुषो हवं सूरिः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।  
 नभो जुवो यन्तिरवस्य राधः प्रशस्मणे महिना रथवते ॥११॥  
 एतं शर्द्धं धाम यस्य मूर्गेरिण्यवोवन् दशतयस्य नंशे ।  
 द्युस्त्रानि येषु वसुताती रागन् विश्वे सन्तन्तु प्रभृषेपु वाजम् ॥१२॥  
 मन्दामहे दशतयस्य धामेर्द्विर्यन् पञ्च विध्रतो यन्त्यन्ता ।  
 किमिष्टाश्च इष्टगश्मिरेत ईशानासनामस्तरुप ऋज्वेन नृन् ॥१३॥

८. मैं महान् घनबाले देवोंके धनकी स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य हैं; इसलिये शोभन पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त होकर पुत्र दत्त धनका संभोग करें । जो देव अङ्गिरा गोमर्मे उत्पन्न कक्षीवान्के लिये अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और रथ देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ ।

९ हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा दोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा दोह करता है, जो तुम्हारे लिये सोम रसका अभिषेक नहीं करता, वह अपने हृदयमें यक्षा राग धारण करता है । जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-वचनोंसे सोमरस तैयार करता है—

१० वह व्यक्ति ज्ञान्त्त अश्व प्राप्त करता, मनुष्योंको पालत करता और समान मनुष्योंमें अन्नके लिये प्रसिद्ध होता है । अतिथियोंको घन देता है और सागे युद्धोंमें हिंसक मनुष्योंकी ओर निःशङ्क होकर सदा जाता है ।

११ सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्यके ( अर्थात् मेरे ) आह्वानको सुनो और आओ । तुम आकाशव्यापी हो । तुम अन्य-रक्षक-रहित रथसे संयुक्त यजमानकी समृद्धिके साधन इष्ट्यकी प्रशंसा करना पसन्द करते हो ।

१२ “जिस यजमानके दोसो इन्द्रियोंके बलकारक अन्नकी प्राप्तिके लिये हम आये हैं, उसे यह मनुष्य-विजेता बल दिया”—देवोंने ऐसा कहा । इन देवोंका प्रकाशमान अन्न और घन अत्यन्त शोभा पाता है । उत्तम यज्ञमें देवता लोग अन्न दान करें ।

१३ चूँकि इन्द्रियाँ दस प्रकारकी हैं; इसलिये श्रुतिद्विक लोग, दस अवयवोंसे युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं । हम विश्वदेवोंकी स्तुति करते हैं । इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामक राजा शत्रुतारक नेताओं ( धरुणादि ) का क्या कर सकते हैं ।

रिश्यकर्णं मणिप्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे हरिस्तन्तु देवाः ।  
 अर्यो गिः सद्य आ जग्मुपरोन्वाश्च तन्मयेष्टस्मे ॥१४॥  
 चत्वारो मा मशर्शास्य शिष्वस्त्रयो राज्ञ अ ययसस्य जिष्णोः ।  
 रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगमस्तिः सूरौ नादाद्यौत् ॥१५॥



१२३ सूक्त । उषा देवता ।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अभुतासो अस्थुः ।  
 कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चित्तपन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥  
 पूर्वा विश्वस्माद्भुवनाद्वोषि जयन्तो वाजं बृहती सनुत्री ।  
 उच्चान्तरुख्यद्युवतिः पुनर्भूरीषा श्रगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥  
 ददद्य भातं विमजासि नृभ्य उषो देवि मर्यात्रा सुजाते ।  
 देवो नो अत्र सविता दक्षुना अनन्तसो वोचति सूर्याय ॥३॥  
 गृहं गृहमहना या यच्छा दिविदिवे अधिनःमा दधाना ।  
 सिपासन्ती द्योतनाशशदाभादग्रमग्रमिद्वजने वसूनाम् ॥४॥

१४ विश्वदेव हमें हिरण्यकर्ण, मणिप्रीव और रूपवान् पुत्र प्रदान करें । श्रेष्ठ विश्वदेवगण सद्योनिगत स्तुति और हव्यकी आर्क्षीक्षा करें ।

१५ मशर्शा राजाके चार पुत्र और विजयी अययस राजाके तीन पुत्र मुझे बाधा देते हैं । मित्रावरुण, तुम्हारा अति विस्तृत और शोभन दीप्तिमाली रथ सूर्यकी तरह कान्ति प्राप्त किये हुए है ।

१ दक्षिणा या उषाका रथ अश्व-संयुक्त हुआ । अमर देव लोग उस रथपर सवार हुए । कृष्णवर्ण अन्धकारसे उत्पन्न, पूजनीय, बिचित्र-गतिमती और मनुष्यके निधासस्थानोंका रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुई ।

२ सद्य जीवोंके पहले ही उषा जागी । उषा अन्धकारिणी, महती और संसारको सुख देनेवाली हैं । वह युवती हैं, बार-बार आविर्भूत होती हैं । ऊर्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे कुलनेपर पहले ही आती हैं ।

३ सुजाता उषा देवी, तुम मनुष्योंकी पालिका हो । तुम अभी मनुष्योंको जो प्रकाशार्ण प्रदान करती हो, उसीको प्रदान कर दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्यके आगमनके लिये, हमें पाप-रहित कड़का स्वीकार करें ।

४ अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भावसे हर एक घरको ओर जाती हैं । भोगेच्छाशालिनी और द्युतिमती प्रतिदिन आगमन करती और हव्यरूप धनका श्रेष्ठ भाग ग्रहण करती हैं । ॥

❀ अहना ही कदाचित् ग्रीकोंकी Athena या Minerva हैं ।

भवस्य सता वरुणस्य जामिरुपः सूनूने प्रथमा जग्गः ।  
 पश्चाद्दध्या यो अघायाना जयेम तं द्वाविगता रथेन ॥५॥  
 उदीरतां सूनूत उ-पुन गीरुदग्रयः शुशुनाताया अस्थुः ।  
 स्प र्हा वसूनि तमसा गूहा विष्कृणन्त्युपलो विमानीः ॥६॥  
 अपानपदेवमपनपदेति विपुरुषे अहन्ति स्वध्वरेने ।  
 परिक्षिप्तोस्तमो अन्या गुहाकग्यै दुपाः शोशुवता रथेन ॥७॥  
 सदृशीरथ सदृशरिदुशो दीर्घ सनन्ने वरुणस्य धाम ।  
 अनवद्यास्त्रिशनं योजनान्येकैका क्रतुं परिचन्ति सद्यः ॥८॥  
 जानत्यहः प्रथमस्य न य शुकादृणादजनिष्ट शिवीची ।  
 ऋतस्य थोपा न मिनानि धामा रर्द्धिष्कृतदा गरन्ती ॥९॥  
 कन्येय तन्ना आशङ्कतां पपि रिरि देवमियभ्रमागम् ।  
 संरमामाना युवतिः पुनस्तादविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥

५ सूनूना उषा, तुम अघायाना सूनूकी यमिनो और वरुण या प्रकाशोक्ती सहजाता हो । तुम झेण्ड हो । सब देवता तुम्हारी स्तुति करें । इसके अनन्तर जो दुःखका जगदकरी, गह्र अघे । तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ द्वारा हम जीतेगे ।

६ सन्धी बातें कही जायें । प्रज्ञा प्रबुद्ध हो । अन्यन्त प्रकाशजान आगे प्रज्वलित हो । इससे विविध प्रभावतो उषा अन्धकारावृत्त स्पृहणीय धन आविष्कार करती हैं ।

७ विलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं । एक जते हैं, एक पाते हैं । पर्यायगामी दोनों देवताओंमें एक पदार्थोंको द्विपाने हैं, दूसरे ( उषा ) अतीव दीप्तिमान् रथ द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं ।

८ उषा देवी जेबे आज हैं, वैसे ही अल भी वे विबुद्ध हैं । प्रतिदिन वे वरुण या सूर्यके अवस्थिति-स्थानसे तीस योजन आगे अवस्थित होती हैं । एक एक उषा उद्य-कालमें ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती हैं । ॥

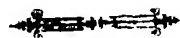
९ उषा दिनके प्रथमांशके आगमनका काल जावती हैं । वह सूर्य की दीप्त और श्वेतवर्ण हैं । कृष्णवर्णसे उनकी उत्पत्ति हुई है । वह सूर्य-लोकमें मिश्रित होती हैं; किन्तु उसको हानि नहीं पहुँचाती; बल्कि उसकी शोभा बढ़ाती हैं ।

१० देवि, कन्याकी तरह अपने अंगोंको विकसित करके तुम दानप्रायण और दीप्तमान् सूर्यके निकट जाओ । अनन्तर युवतीकी तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई, सूर्यके सामने अपना हृदय-देश उघारो ।

॥ सायणाचार्यके मतानुसार सूर्य प्रतिदिन ५०५६ योजन भ्रमण करते हैं । इस तरह सूर्य प्रत्येक दृक्कर्म, ७६ योजन घूमते हैं । चूँकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्व-गामिनी हैं; इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा दण्ड ( १ ) पहले उषाका उदय मानना चाहिये । कुछ यूरोपियनोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं ।



सुसङ्घाशा मानमुष्टेय योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।  
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युक्तं न तत्ते अन्या उपसो नशन्त ॥११॥  
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववागन्तमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।  
पराचयन्ति पुनराचयन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥  
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छन्तानां भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।  
उषो नो अद्य सुदवा व्युच्छास्मासु रायोमघवत्सु तस्युः ॥१३॥



१२४ सूक्त । उषा देवता ।

उषा उच्छन्ती रश्मिधाने अग्रा उद्यन सूर्य उर्विथा ज्योतिश्च त् ।  
देवो मो अत्र सवितान्वर्थं प्रास्वावीदृष्टिपत् प्र सनुष्वदित्यै ॥१॥  
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनतो मनुष्या युगानि ।  
ईशुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषाव्यद्यौत् ॥२॥  
एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्क्षि ज्योतिर्वस्माना समन्ता पुग्स्तात् ।  
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजाननीव न दिशो मिनाति ॥३॥

११ जैसे मामाके देहको धो देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अपने शरीरको प्रकाशित करो । तुम कल्याणशीला हो । अन्धकारका दूर कर दो । अन्य उषार्थ तुम्हारे कार्यको नहीं ब्याप्त करेगी ।

१२ अश्व और गौसे सम्बन्ध, सर्वकालीन और सूर्यश्मियोंके साथ तमोनिवारणके लिये चेष्टा-चिष्टिष्ट उषा-देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं ।

१३ उषा, ऋत या सूर्यकी रश्मिका अनुभवन् करती हुई जो कल्याणकारिणी प्रजा पक्षान करो । इस तुम्हें बुलाते हैं । अन्धकार दूर करो । इस हविलक्षण धनसे युक्त हैं । इसाग पन्थ धन हो ।

१ अग्निके समिद्धमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभुत ज्योति फैलाती है । हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद् और सनुष्वदके संयुक्त धन देते हैं ।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका हार करती, अतीत और नित्य उषाओंके समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं । उषा खुसि फैलाती हैं ।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं । वह प्रकाश द्वारा आडङ्गाद्वत होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देती हैं । उषा मानो सूर्यका अभिप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अड्की तरह अमण करती हैं । वह कभी भी दिशाओंको नहीं मारती ।

उपो अर्धशि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरुद्ध प्रियाणि ।  
 अग्रसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥३॥  
 पूर्ध अर्ध रजसो अप्यस्य गवाँ जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।  
 व्युप्रथते वितरं वरीय ओभापृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥  
 एवेवेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामि न परिवृणक्ति जामिम् ।  
 अरेपसा तन्वा शाशदाना नाभादीपते न महो विभाती ॥६॥  
 अन्नानेष पुंस एतिप्रतीचां गतारुगिव सनये धनानाम् ।  
 जायेव पत्य उशर्ता सुवासा उपाह्रस्व निरिणीते अप्सः ॥७॥  
 स्वसा स्थन्न उथापस्यै योनिमारैगपेत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।  
 व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याऽऽर्ज्यके समनगा इव घाः ॥८॥  
 आसां पूर्वासामहसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।  
 ताः प्रजयन्नव्यसार्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उपासः ॥९॥  
 प्रबोधयोयः पृणतां मघोन्यवुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।  
 रेवदुच्छ मघवद्भ्या मघानां रेवत् स्तोत्रे सूतृते जागयन्ती ॥१०॥

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करता है और नोधा श्रापने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषाने भी अपनेको आविष्कृत किया है । जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, ऐसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती है । अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती है ।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती है । उषा पितृ-स्थानोय स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवाको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रख्यात हुई है ।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतामें वर्णन-निमित्त मनुष्यादि और देवादियेसे कलुषको भी नहीं छोड़ती । प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमधः स्पष्ट होकर द्वात्रेयः बड़े किसीसे भी नहीं हटती ।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतभर्तृका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती है । जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई शस्य द्वारा अपनी वस्त्र-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती है ।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जमा कर स्वयं चली जाती है । सूर्य-किरणोंसे अन्धकार हटाकर उषा त्रिधु वराशिकी तरह जगत्को प्रकाशित करती है ।

९ इन सब भगिनीभावपन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं । प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा छविन पैदा करती हुई हमें अभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करे ।

१० धनवती उषा, हविर्दाताओंको जगाओ । पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़ें । धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो । सूतृते, तुम सारे प्राणियोंको क्षोण करती हुई यजमानको समृद्धि दो ।

अवेयमश्वैद्युचनिः पुरस्ताद्युक्ते गवामरुणानामनीकम् ।  
 वि नूनमुच्छादसतिः केतुर्गृहं गृहमुपनिष्ठाते अग्निः ॥१॥  
 उत्तम्यश्चिद्वसतेरपसन्नरश्च ये तितुभाजो व्युष्टौ ।  
 अमा सते वहसि भूग्वाममुषो देवि दाशुषे मर्याय ॥ २ ॥  
 अस्तोद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेीवृत्रं मुशतीरूपासः ।  
 युष्माकं देवीरवसा सनेम र हस्त्रिणं च शक्तिं च वाजम् ॥ ३ ॥

॥२॥ सूक्तः दान देवता ॥१॥

प्रातःकालं प्रातरित्वा दध्नाति तं निकित्वा नृतिगृहः निधत्ते ।  
 तेन प्रजां वर्धयमान आयूरायम्पोषेण सन्तते सुवीरः ॥ १ ॥

११ युवती उषा पूर्व दिशामे आती और सप्त घोड़ोंको रखमें जोतती हैं । वह दिनकी सूचना करके रूप-रहित अन्तरिक्षमें अन्धकारका निवारण करती हैं । घर-घरमें आग जलती है ।

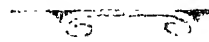
१२ उषा, तुम्हारा उदय होनेपर चिड़ियाँ अपने घोंगलेमें ऊपर उड़ती हैं । अन्न-प्राप्तिमें आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं । देवि, देव पूजन-गृहमें अवस्थापन द्वारा-दाता मनुष्यके लिये प्रभुत्व धन से आओ ।

१३ स्तुति-पात्र उषाएँ, मेरे मन्त्र द्वारा तुम स्तुत हो । मेरी समृद्धिकी इच्छा करके हमें वृद्धित वरें । देवियो, तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम महत्संख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें ।

१ स्वनय राजाने, प्रातःकाल आकर, प्रातःकाल ही स्नान ला रखा । वक्षीवान्ने उठकर, रत्न ग्रहणकर, स्थापित किया । छवीर दीर्घतमाने उस रत्नगजि द्वारा प्रजा और आयुकी वृद्धि करके धन लाभ किया ।

॥ 'गुल्फुलमें अध्ययन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए वक्षीवान् क्षपि मार्गमें सो गये । स्वनय नामके राजा, अनुचरोंके साथ, घूमते हुए आये और वक्षीवान्का सौन्दर्य देखकर सुख हो गये । राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें ब्याह दिया । राजाने प्रसन्न हो १०० निष्क ( तील ) छर्जन, १०० घोड़े, १०० वृषभ, १०६० गायें और ११ रथ, दोहेजमें, प्रदान किये । इन सबको वक्षीवान्ने अपने पिता दीर्घतमाको अर्पण कर दिया ॥ — सायणाचार्यने यहाँ यह कथा लिखी है । स्वनय राजाका दान हो इस सूक्त देवता है अर्थात् उस दातके सम्बन्धमें ही यह सूक्त रचा गया है ।

सुगुणस्तु सुहिरण्यः स्वर्णो बृहदस्मै यय इन्द्रो दधानि ।  
 यस्तथायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिवुत्सिनानि ॥ २ ॥  
 आशमद सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टः पुनरुत्सुमता रथेन ।  
 अंगोः सुतं पायय मत्स्यस्य ह्ययदीरं जय सुनुताभिः ॥ ३ ॥  
 उवाच त्वि सिन्धवो मशोभुव ई तानं तयक्षयमाण न एतयः ।  
 पृथग्येव पदुर्गि न शक्यते वृत्तस्य धाम उपयन्ति शिष्वतः ॥ ४ ॥  
 तावस्य गृष्टे आश्रितिच्छन्ति विप्रो यः पृथानि सवदेषु गच्छन्ति ।  
 तस्मा आपो वृत्तमर्पन्ति सिन्धु वस्तुमा इयं दक्षिणा पिबन्ते सदा ॥ ५ ॥  
 दक्षिणावतादिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिव्य सूर्यासः ।  
 दक्षिणावतो अमृत भावन्ते दक्षिणावताः प्रतिवन्त आयुः ॥ ६ ॥  
 सा पुणःतो दुर्मितेन तावता यः कश्चिदुः शयः सुवतासः ।  
 अनामदेपां पारं प्रोक्तुं न शक्यते प्रवृत्तमोः स्वयन्तु शोकाः ॥ ७ ॥



२ उन राजाके पास बहुत गोधन था। उनके पास बहुत सोना और बहुत घोड़े भी। उन्हे बहुत बहुत अन्न दे।  
 जैसे लोग रस्सीसे पशु, पक्षी जानवरों को बांध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रा. राजा पर एक ही आकर आगमनकारीको  
 धन द्वारा आबद्ध किया।

३ मैं बहुत प्राता शोक। क्योंकि देखनेकी इच्छा करी। इसलिये यय बृहदस्म, आज उपस्थित हुआ। हो। दोस्ति-  
 शाली मादृश सोमके अभिषुत रक्ता पाव करो। प्रभु-सोमको द्वा. पतिवृत्तों गिन जा। मय वाक्य द्वारा समृद्ध करो।

४ दुग्धवती और कल्याण-दायिनी गायें, यज्ञभवन और गङ्गा-नदीगंगादि प्राय प्रावर, दुग्ध प्रदान करती हैं।  
 समृद्धिके कारणभूत वृत्तधार, सर्पणकारी और हितकारी पुष्पां प्रा. वसो केने उपस्थित होती है।

५ जो व्यक्ति देवोंको प्रसन्न करता है, वह स्वर्गके पददेणमें अस्थान बरता तथा देवोंके बीच यमन करता  
 है। प्रवहमान जल, उसके पाम, तेजोविशिष्ट साग प्रदान करता है। द्वा. इसी शक्य जादो रक्त होकर उसे सन्तोष प्रदान  
 करती है।

६ जो व्यक्ति दक्षिणा प्रदान करता है, उसीकी ये सारी सति-मुक्तादि वस्तुएं होती हैं। दक्षिणा दाताके लिये पु-  
 लोकमें शुभ रहते हैं। दक्षिणा-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं। दक्षिणा देनेवाले द्वा. आयु प्राप्त करते हैं।

७ जो देवोंको प्रसन्न करता है, उसे दुग्ध और साग प्राप्त मिलते, जो कल्याणकी स्तोता भी जरायुस्त नहीं  
 होते। देवोंके प्रोक्ष-प्रदत्ता और समृद्धिजनने भिन्न प्रवृत्तों पर आश्रित। जो देवोंको प्रसन्न नहीं करते, उन्हें  
 शोक प्राप्त हो।

१२६ सूक्त । १ से १ मंत्र राजा भावयश्यके लिये हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं । ६ठा मंत्र राजाकी स्त्रीके लिये है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं । ७ वाँ मंत्र लोमशाके पुत्रिके लिये है और इसके ऋषि लोमशा हैं । १ से ५ तक त्रिष्टुप् और अन्तके दो अनुष्टुप्में हैं ।

अमन्दान् स्तोमान् प्रमरे मनीषा सिन्धवधिक्षियतो भाव्यस्य ।

यो मे सहस्रममिमीत सधानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

शतं राक्षोनाधमानस्य निष्काञ्छामश्वान् प्रयतान्त सद्य आदम् ।

शतं कक्षीर्वा असुरस्य गांतां दिवि श्रवो जग्मातनान् ॥ २ ॥

उप मा शशावाः स्वनयेन दन्ता बध्मन्तो दशधासां अस्थुः ।

पष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात् रुनन् कक्षीर्वा अभिपित्वे अहाम् ॥ ३ ॥

चत्वारिंशद्दशथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्त ।

मदच्युतः कृशनागता अन्यन् कक्षीरन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥

पूर्वामनुप्रयतिमाददे वल्लीन्पुक्तां अष्टाविधायसां गाः ।

सुबन्धो ये विश्वा इव प्राः अनसन्तः श्रव ण्यन्त पज्राः ॥ ५ ॥

आगधिता परिगधिता या कक्षीरेव जङ्गहे ।

ददाति महां यादुनी याशूतां भोग्या शता ॥ ६ ॥

१ सिन्धुनिवासी भावयज्य-पुत्र रुनन् के लिये, अर्थात् बुझाने, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रशयन) करता है । इति-विरहित राजाने कीर्त्ति-प्राप्तिकी इच्छामें मेरे लिये हजार राक्ष-यशोंका अनुष्ठान किया है ।

२ अष्ट-राजाके ग्रहणके लिये मुझसे याचना करनेपर मैं (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (आभूषण या स्वर्णमाप), १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये । स्वर्ग-लोकमें राजा नित्य कीर्त्ति-विरुद्ध करेगा ।

३ स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, तिनपर बहुएँ आरुढ़ थीं । १०१० गाँव भी पोछेसे आयीं । मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब अग्नि पित्तको दे दिया ।

४ हजार गाँवोंके सामने, दसों रथोंमें चालीस (१-१३ ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने लगे । कक्षीवान्के अनुचर उनके लिये घास आदि जुटाकर भक्ष्य और स्वर्णभरण-परिधि एवं ससत गमनशील अश्वोंको मलने लगे ।

५ बध्मगण, पहलेके दानका स्मरण करके तुम्हारे लिये तीन और आठ—सब रथारह रथ मैंने ग्रहण किये हैं । बहुमुख्य गाँवोंको लिया है । प्रजाओंकी तरह परस्पर-अनुराग-समान होकर संकटापन्न अङ्गिरा लोग कीर्त्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करें ।

६ यह सम्भोग-योग रमणी (लोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होकर, सूतजस्तः तकुलीकी तरह, चिर कालतक रमण करती है । बहुतेतयुक्ता होकर रमणी मुझे (स्वनय राजाको) बहु बार भोग प्रदान करती है ।

उपां प मे परासृशमामेदन्नाणि मन्यथा ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामशानिका ॥ ७ ॥



५ अनुवाक । १२७ सूक्त । अग्नि दे ता । यहाँसे १२६ सूक्तों तकके ऋषि दियोदासके पुत्र परचन्द हैं । छन्द अनिष्टुति ।

अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सनं सहस्रो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वया स्वध्वगे देवा देवाचया कृपा ।

घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिष जुहानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्रं मन्मभिर्विज्रेभिः शुक्रं मन्मभिः

परिजमानमिव द्यां होतारं सर्पणीनाम् ।

शोचिष्केशं वृषणं यमिमाविशः प्राचन्तु जनये विशः ॥ २ ॥

स हि पुरुषिदोऽसौ विश्वमता दीद्यानां भवति द्रुहन्तरः परशुने द्रुहन्तरः ।

वीलुचिद्यस्य समृन्तौ श्रुवदनेव यत् स्थिरम् ।

निष्पहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

७ (स्वनय राजाके लिये बचन—) मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो । यह नहीं जानना कि, मेरे शरीरमें कम लोम हैं । मैं गान्धारी तीषी या गर्भधारिणी रमणीकी तरह लोमपूर्ण और पूर्णावयवा हूँ ।

१ विद्वान् विप्र या ब्राह्मणकी तरह प्रज्ञावान्, बलके पुत्र-स्वरूप, सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील अग्निको मैं होता कहकर सम्मान-युक्त करता हूँ । यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उत्कृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली हुई घृतकी दीप्तिका अनुसरण करके अपनी शिखा द्वारा उस घृतको स्वीकृत करते हैं ।

२ मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, हम यजमान हैं । हम मनुष्योंके उपकारके लिये मननशील और अत्यन्त प्रसन्नता-दायक मन्त्र द्वारा अङ्गिरा लोगोंमें महान् तुम्हें बुझाने हैं । सर्वतोपगामी सूर्यकी तरह तुम यजमानोंके लिये देवोंको बुलाते हो । केशकी तरह विस्मृत ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी हो । यजमान लोग अभिमत फल पानेके लिये तुम्हें प्रसन्न करें ।

३ अग्निदेव अतीव दीप्तिते संयुक्त ज्वाला द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं । वह विद्रोहियोंके श्रेयार्थ परशुकी तरह विनाशमें अमूल्य हैं । उनके साथ मिलनेपर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जलकी तरह शीघ्र हो जाती है । शत्रुओंका विनाश करनेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वैसे ही अग्नि भी शत्रुओंको परास्त करनेसे बाज नहीं आते ।

हृत्वाचद मा अनुकुर्याथा विदे तेजिष्ठावजराणां मर्दाण्डवसेमये दाण्डवसे ।

अथ पुत्राणि गच्छन्ते तक्षकनेव शोचिषा ।

स्थिरां चिदन्ना भिरणात्वांस्त नि स्थिराण विदोजस्ता ॥ ४ ॥

तस्य पृक्षमुपगसु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातगद्वायुणे दिवातरात् ।

अदस्माद्युग्रं भणवद्भुवस्तु शर्म न सूतवे ।

भक्तमभक्तमवोव्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्ता अजरा ॥ ५ ॥

य हि शर्धो न माकन न भवन्ति प्रतीपार्थक्यिष्ठानि शर्तनास्विष्टनि ।

आदह्व्यान्यदाद्रीदस्व केतुगणः ।

अधस्माद्य हर्षतां हर्षीवतो रीष्वे जुपन्त पन्थां नभः शुभेन पन्थाम् ॥ ६ ॥

हिता यदीं कीर्तासा अग्निघ्नीं नमरयन्त उपवोचन्त भृगवां मथनन्ता दाशा भृगवः

अग्निरीशे नूनं शुचिर्यो धर्णिरेपाय ।

द्वियां अपिधीर्वीनपीष्ट मेधिर आधनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

४ जैसे विद्वान् पुरुषों द्वारा दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्निको स्वागतान् हव्य, मन्त्रानुक्रमसे, प्रदान किया जाता है। तेजोविशिष्ट अजरादि द्वारा अग्नि, हमारी रक्षण के लिये स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ, अग्निको हव्य देते हैं। यजमानों द्वारा प्रदान हव्यमें प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिर्मत्तवा द्वारा, उसे बलकी तरह जला डालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति द्वारा अन्नदिष्टा की पाक करने और तेजो द्वारा वह द्रव्यको विनष्ट करते हैं।

५ रातमें अग्निदेव दिनमें भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिनमें अग्नि पूरी आयु या तेजस्वितासे शून्य रहते हैं। हम अग्निके उद्देश्यसे वेदोंके पास हव्य दान करते हैं। उसे पिताके पास पुत्र हर्ष और सुखकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। यक्ष और अन्नकष्टों सम्भक्त भी अग्नि वेदोंकी रक्षा करते हैं। हव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६ मरुतके बलकी तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट हव्यसे युक्त है। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् ओष्ठ भूमिपर अग्निके यज्ञ करना उचित है। सेवा-विजय करनेके लिये अग्निके योग करना उचित है। अग्नि हव्य भक्षण करते हैं। वह सर्वत्र दानशील और यज्ञकी पताका है। वह सर्वत्र पूजनीय है। यजमानोंके लिये हर्षदत्ता और प्रवन्न अग्निके मार्गकी, निर्भय राजपथकी तरह, सुख-लाभके लिये, सब लोग सेवा करते हैं।

७ औषध और स्मात्त—उभय प्रकारके अग्निका गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और हव्यवाला भृगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देनेके लिये, अर्पण द्वारा अग्निके मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रवीण अग्नि सारे घनोंके अधीश्वर है। अग्नि यज्ञवाले हैं और सबों की प्रिय हव्य भागनेवाले हैं। अग्नि मेधावी है और वह अन्य देवताओं भी भाग देते हैं।

विश्वासां स्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पति भुजे सख्यगिर्वाहसं भुजे ।

अतिभिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।

अमी च विश्वे अमृतास आवथी हव्या देवेष्वधय ॥ ८ ॥

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मन्तमो जायसे देवतानये रश्मिर्न देवतानये

शुष्मन्तमो नि ते मदो यः सन्तम उत क्रतुः ।

अधस्माते परिवर्गस्यजर श्रुतांशानो नाजर ॥ ९ ॥

प्र तो महे सहसा सहस्वत उपवृधे पशुषे नाम्नये स्तामो वभूवमये ।

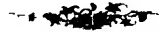
अति यदीं हविष्मात्विश्वामु आसु जोगुधे ।

अग्र रेणो न जरत ऋपृणां ज्णिर्होत ऋपृणाम ॥ १० ॥

स्तोत्रेणोऽष्टं दृष्टान आभगाग्ने देवेभिः रुक्माः सुचैतनः महो रायः सुचैतुमा ।

महि शविष्ठ न स्काधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।

महि स्तोतृभ्यो मघनस्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ १ ॥



८ सारे यजमानोंके रक्षक, सारे मनुष्योंके एकल गृह-पालक, सर्व-सम्पन्न-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदिके लिये अतिथिकी तरह पूज्य अग्निका, भोगके लिये, हम बुलाते हैं । जैसे पुत्र लोग पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हृदयके लिये ये सारे देवता अग्निसे पास जाते हैं । श्रुतिक लोग भी देवोंके यज्ञ-कालमें, अग्निसे हृदय प्रदान करते हैं ।

९ जैसे देवोंके यजनके लिये धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवोंके यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो । अपने बलसे तुम शत्रुओंके अभिभवकर्ता और अतीव तेजस्वी हो । तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है । तुम्हारा यज्ञ अत्यन्त फल-प्रद है । हे अजर और हे भक्तोंके जरा-निवारक अग्नि, इसीलिये यजमान लोग, दृढ़ताके तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं ।

१० हे स्तोता लोग, चूँकि हविष्यासे यजमान दान अग्निके लिये सारी वेदी-भूमिपर बार-बार गमन करते हैं; इस लिये तुम्हारा स्तोत्र इस पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्राप्तिकालमें जागरणशील और पशु-दाता अग्निकी प्रीति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो । धनवान्ने पास जैसे बन्दी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवोंमें श्रेष्ठ, अग्निकी स्तुति करते हैं ।

११ हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पासमें ही हम प्रदीप्त देखते हैं; तथापि तुम देवोंके साथ आहार करते हो । तुम अपने शोभन अन्तःकरणसे अपने अधीनके लिये अनुग्रह करके पूजनीय धन लाते हो । बलवान् अग्निदेव, हमारे लिये यथेष्ट अन्न प्रदान करो, जिससे हम पृथिवीको देख और भोग सकें । सबवन् अग्नि, स्तोताओंके लिये वीर्यशाली धन प्रदान करो । घरेष्टे हल-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रुका विनाश करो ।



१२८ सूक्त । अतिधृति छन्द ।

अयं जायत मनुषा धर्मीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनुव्रतमग्निः स्वमनुव्रतम् ।  
 विश्वश्रुष्टिः सखीयते गयिरित् श्रवस्यते ।  
 अदब्धो होता निपदिद्विस्पदे परिवात इडस्पदे ॥ १ ॥  
 तं यज्ञसाधर्मणि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।  
 स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।  
 यं मातरिश्वा मनषे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥  
 एवेन सद्यः पर्येति पाथिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिकवद्वध्रेतः कनिकवत् ।  
 शतं नश्राणो अश्रभिर्देवो वनेषु तुर्वाणिः ।  
 सद्यो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥  
 स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेप्रियज्ञस्याध्वरम्य चैतति क्रत्वा यज्ञस्थ्य चैतनि  
 क्रत्वा वेध्रा इपूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।  
 यतो धुनध्रीरतिथिरजायत वह्निर्वध्रा अजायत ॥ ४ ॥

१ देवोंको बुलानेवाले और अतीव यज्ञशील यह अग्नि फल-प्राप्तियोंके और अपने मत या हविर्भोजनके उद्देश्यसे मनुष्यसे ही उत्पन्न होते हैं । सारे विश्वमें कर्त्ता अग्निदेव बन्धुत्वान्ता और अन्नाभिलाषी यज्ञमानके घन-स्थानीय हैं । वृषिबीमें सार-भूत वेदोपर, यज्ञ-स्थानमें, आहिमत्, होम-निष्पादक तथा ऋत्विग्वेष्टित अग्नि बेटे हैं ।

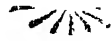
२ हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदिसे युक्त तथा नम्रतासे सम्पन्न स्तोत्र द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञमें साधक अग्निकी, परितोषके साथ, सेवा करते हैं । वह अग्नि हमारे हव्यरूप अन्नको लेनेमें समर्थ होकर नाशको नहीं प्राप्त होगा । मनुके लिये मातरिश्वाने अग्निको, दूरसे लाकर, पदोत्त किया था । हमी प्रकार, वृत्ते, हमारी यज्ञशालामें अग्नि आवे । \*

३ सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविः-सम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द कनेक जाते हुए तुरत पाथिव वेदोंकी चारों ओर शब्द करके आते हैं । अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अयस्थानीय शिखा द्वारा चारों ओर प्रकाशित हो रहे हैं । उच्च-स्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञमें तुरत आते हैं ।

४ होमनकर्मों और पुरोहित अग्नि हर एक यज्ञमानके घरमें नाश-रहित यज्ञको जान सकते हैं । अग्नि कर्म द्वारा यज्ञ जान सकते हैं । वह कर्मोंके विविध फलदाता बनकर यज्ञमानके लिये अन्नको इच्छा करते हैं । अग्नि हव्य आदिको ग्रहण करते हैं; क्योंकि वह घृत-भक्षी आतिथिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं । अग्निके प्रवृद्ध होनेपर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं ।

॥ १ मन्त्रक, ६० सूक्त, १ मंत्रसे विहित होता है कि, भूगुके लिये भी मातरिश्वा ही अग्निको लाये थे ।

कृत्वा यदस्य तविषीषु पृथक्तेऽग्नेरग्रेण मरुतां न भोज्येविषाय न भोज्या ।  
 सहिष्मादानमिन्वति वसूतां च मज्जता ।  
 स नस्त्रासते दुग्तिनादभिहृतः शंसाद्घादभिहृतः ॥ ५ ॥  
 विश्वो विहाया अरतिथंसुर्दधे हस्ते दक्षिण तर्णिन शिश्रथञ्ज्वस्यया न शिश्रथत् ।  
 निश्चरमा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।  
 विश्वस्मा इत् सुकृते वाग्मृणवत्यग्निर्हारा व्यृणवति ॥ ६ ॥  
 स मानुषे वृजने शन्तमो हिनोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विशपतिः प्रियो यज्ञेषु विशपतिः ।  
 स हव्या मानुषाणापिडाकृतानि पत्यते ।  
 स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महादेवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥  
 अग्निं होतारं मीडते वसुधितिं त्रियं ज्येष्ठमग्निं न्येगिरे हव्यवाहं न्येगिरे ।  
 विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।  
 देवास्तो रणमवसे वसूयवो भीमिग्वं वसूयवः ॥ ८ ॥



५ जैसे मरुत लोग भक्षणीय द्रव्यको एकमें मिलाने इन अग्नि को जैसे भक्ष्य द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यज्ञ-मान लोग कर्म द्वारा अग्निकी प्रबल शिखारमें, तृणिके लिये, भक्षणीय द्रव्य मिलाने हैं। अपने धनके अनुसार यजमान हव्य दान करता है। जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पापसे अग्नि हमें बचावे।

६ विष्वात्मक, महान् और विरामरहित अग्नि सूर्यकी तरह दक्षिण हाथमें धन रखते हैं। उनका दह हाथ यज्ञ-कारीके लिये श्लथ होता है, खुला रहता है। केवल हवि पानेकी आशासे अग्नि उसे नहीं छोड़ते। अग्निदेव, सारे हवि-कामी देवोंके लिये तुम हवि वहन करते हो। सब सुकृत पुरुषोंके लिये अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्गका द्वार उन्मुक्त करते हैं।

७ मनुष्यके पाप-निमित्तक यज्ञमें अग्नि विशेष हितकारी है। वितथी राजाकी तरह यज्ञ-स्थलमें अग्नि मनुष्यके पाकक और प्रिय है। यजमानोंकी यज्ञवेदीमें रखे हव्यके लिये अग्नि आते हैं। हिंसक यज्ञ-वाघकके भयसे और उन महान् पापदेवकी हिंसासे अग्निदेव हमारा उद्धार करें।

८ धनधारक, सर्व-प्रिय, सुखद्विदाता और विगमरहित अग्निकी, ऋत्विक् लोग, स्तुति करते और उन्हें भली-भांति प्राप्त किये हुए हैं। हव्यवाही, प्राणियोंके प्राण-रूप, सर्वप्रज्ञा-समान्वत, देवोंके बुलानेवाले, यज्ञीय और मेधावी अग्निको ऋत्विक्ोंने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। अग्न्याभिलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्निको हव्य-रूप अन्न देनेकी इच्छा करते हुए, आभय-प्राप्तिके लिये, रमणीय और शब्दकारी अग्निको प्राप्त हुए हैं।

## १२६ सूक्त । इन्द्र देवता ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेघसातये पाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।  
 सद्यश्चित्तमभिष्टये करोवशश्च वाजिनम् ।  
 सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसोमिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥  
 सः श्रुधि यः रमा पृतनासु कासुचिदक्षय्य इन्द्र भग्द्वनयं नृभिर्गसि प्रवृत्ते नृभिः ।  
 यः शूरेः स्वः सनिता यो विप्रैर्वीजं तरता ।  
 तमीशानास्व इवधन्त वाजिनं पृक्षमयं न वाजिनम् ॥ २ ॥  
 दम्भा हि प्मानुषणं पिब्वसि त्वयं कश्चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।  
 इन्द्रोतं तुभ्यं तद्विवेद्रुद्राय स्वयशसं ।  
 मित्राय वीनं नरुणाय सप्रथः सुमृलीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥  
 अस्माकं य इन्द्रमुश्मसीपत्ये सत्पायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।  
 अस्माकं ब्रह्मोनये वा पृतसुषु कासुचिन् ।  
 नहि तथा शत्रुः स्तुतो स्तृणोपि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥  
 निष्पूनयान्तमन्ति तयस्यान्तस्य जपुषेऽमर्याणां नानातमिकतामिह प्रतितिभिः ।  
 नेविणो यथा पुगनेनाः शूरा मन्यन्ते ।  
 निश्वाति पूरापरापि ब्रह्मिणासाः अहिर्नो अच्यु ॥ ५ ॥

१ इन्द्र-सम्पन्न यजमान इन्द्र, यज्ञ-लाभक लिये यज्ञ पर चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमानके पास जाते हो और जिसे धन और विद्या में वृद्धि करने में, और तुम्हें सकल-अनोरथ और इन्द्रशालो कर दो । इन्द्र-युग्म इन्द्र, हम पुरु-हितोंमें भी पुरोहित हैं; हमारे स्वयं करनेपर तुम शीघ्रतासे हमारी स्तुति और इन्द्र्य ग्रहण करते हो ।

२ इन्द्र, तुम युद्धके नेता हो । तुम अस्त्रोंके साथ प्रधान-प्रधान युद्धोंमें अपद्रोह साथ शत्रु-संहारमें समर्थ हो । बीरोंके साथ तुम स्वयं संग्राम छल अनुभव करते हो । श्रुतिवर्कोंकी स्तुति करनेपर तुम उन्हें अन्न दो । हमारी स्तुति सुनो । प्रार्थनापरायण श्रुतिवक लोग गमनशील अन्नवान् इन्द्रकी, अन्नकी तरह, सेवा करते हैं ।

३ इन्द्र, तुम शत्रुओंका नाश करनेवाले हो । वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघका भेदन करके जड़ गिराते हो और मर्त्यकी तरह गमनशील मेघको पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित करके छोड़ देते हो । इन्द्र, तुम्हारे इस कार्यको हम तुमसे और बु, यशोयुक्त इन्द्र, प्रजाओंके सुखदायी मित्र तथा वरुणसे कहेंगे ।

४ श्रुतिवको, अपने यज्ञमें हम इन्द्रको चाहते हैं । इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञनामी, शत्रुओंके अभिभवकारी और हमारे सहायक हैं । वह यज्ञ-धर्मकारियोंको पराभूत करते और मर्त्योंमें सम्मिलित हैं । इन्द्र, तुम हमारे पालनके लिये हमारी रक्षा करो । लड़ाईके क्षेत्रमें तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता । तुम्हीं सारे शत्रुओंका निवारण करते हो ।

५ उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमानके विश्वाचारीको, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायोसे, अवगत कर देते हो । जैसे तुम पहले हमारे पूर्वजोंको मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे ही हमें भी ले जाओ । तुम्हें संसार निष्पाप जानता है । इन्द्र, तुम अगत्पाकक होकर मनुष्यके सारे पापोंको दूर करते हो । हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टोंका विनाश करो ।

प्रतद्वोच्चैर्य भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्मरेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।

स्वयं सो अस्मदानिदो वर्धेरजेत दुर्मन्त्रिम् ।

अवस्ववेदघशंसोऽवतममथ शुद्रमिन् स्वयेत् ॥ ६ ॥

घनेम तज्जोत्रया चित्तन्त्या घनेम रथि रथिणः सुवैर्यं रणवं सन्तं सुवीर्यम् ।

दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृन्नीमाह ।

आसत्याभिरिन्द्रं युस्रह्रातमिर्यजत्रं युस्रह्रतिभिः ॥ ७ ॥

प्रप्रावो अस्मे स्वयशोभिरूनी परिवर्ग इन्द्रो दुर्धतोनां श्रीमन्दुर्मतीनाम् ।

स्वयं सारिपयध्वै यान उपेपे अत्रीः । हतेमपन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथो अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।

सचस्व नः पराक आसन्नस्वास्तमोक आ ।

याहि नो दूरादारामिष्टिभिः सदा रात्रामिष्टिभिः ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्र राया तरूणसोमं मित्वा मयिमा सश्रद्धयः महे मित्रं नाचमे ।

ओजिष्ठ त्रैतरयिता रथं कश्चिदमनः ।

अन्यमस्मद्विनिः कश्चिद्विशो रजिश्चन्ने निद्विवः ॥ १० ॥

६ भवनशील चन्द्रके लिये हम इस स्तोत्रका पढ़ेंगे । चन्द्र, आग्रह के साथ, हमारे कर्मके सहेजते, राक्षस-विनाशी और बुलाने योग्य इन्द्रकी तरह आते हैं । वह स्वयं हमारे निन्दक दुर्बुद्धिके वधका उपाय उद्भूत करके उसे दूर कर देगे । चोर, चूड़ जलकी तरह, अतीव निकृष्टगते, अपायीन हो ।

७ इन्द्र, हम स्तोत्र द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्ति कार्य-सुख भजने में । धनवान् इन्द्र, हम सारथ्यवान्, रमणीय, सदा वर्तमान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धनका उपयोग कर सकें, तुम्हारी महिमा अद्वेय है । हम उत्तम स्तोत्र और अन्न प्राप्त करें । हम यज्ञ निष्पादक इन्द्रको यज्ञाधिकार्य का प्रदेवार्थ और यज्ञावर्द्धक अन्नदान द्वारा प्राप्त हों ।

८ क्षत्रिको, तुम्हारे और हमारे लिये हम स्तोत्रका पढ़ेंगे । अश्वमेध द्वारा दुर्बुद्ध लोगोंके विनाशक संग्राममें प्रवृत्त हों और उन्हें विदीर्ण करें । हमारे भक्षक शत्रुओंके हानि निवृत्त, हमारे वाक्षके लिये, जो वेगवती सेना भेजी थी, वह सेना स्वयं हत हो गयी है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओंके पाँव को नहीं लौटी ।

९ इन्द्र, राक्षस-शूण्य और पाप-रहित मार्गमें प्रचुर धन लेकर हमारे पास आओ । इन्द्र, तुम दूर देश और निकटसे आकर हमारे साथ मिलो । तुम दूर और निकट प्रदेशों, यज्ञ-विद्योक्त विधि, हमारी रक्षा करो । यज्ञ-निर्वाह करके सदा हमें पालित करो ।

१० इन्द्र, जिस धनमें हमारी आपदाका उद्धार हो सकता है, उसी धनमें हमारा उद्धार करो । तुम उग्र-रूप हो । जैसी मित्रकी महिमा है, हमारी रक्षाके लिये तुम्हारे भी रथों की संख्या हो । हे बलवत्तम, हमारे रक्षक, प्राता और अमर इन्द्र, किसी भी स्थान चढ़कर आओ । शत्रु-भक्षक इन्द्र, मैं तुम्हारे मित्रका यात्रा दो । शत्रु-भक्षक, अतीव कुस्मी शत्रुको बाधा दो ।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत विधोऽवयाता सवमिदं मुतीनां देवः सन्बुर्मतीनाम् ।

इन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।

अधाहि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोऽदणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥



११० सूक्त । इन्द्र-देवता । त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द ।

एन्द्रयाह्नु प नः परावतो नायमच्छा विद्वथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।

पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥

पिबा सोममन्द्रं सुवानमद्रिभिः कोशेन सिद्धमवतं न वंसगस्तृपाणो न वंसगः ।

महाय इयंताय ते तुविष्टमाय धायसे ।

आ त्वा वच्छन्तु हरितो न सूर्यमहाविश्वेव सूर्यम् ॥२॥

अविश्वद्विषो निहतं गुहानिधिं वेन गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।

व्रजं वज्रो गवामव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।

अपावृणोदिय इन्द्रः परीवृताद्वार इयः परीवृताः ॥३॥

११ शोभन स्तुतिसे युक्त इन्द्र, दुःखसे हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टोंको नीचा दिखाते हो । हमारी स्तुतिसे ब्रह्मण होकर यज्ञ-विप्रकारियोंको दमन करो । तुम पाप-राक्षसके इन्ता और हमारे समान बुद्धिमानोंके रक्षक हो । जग-निवास इन्द्र, इसीलिये परमेश्वरने तुम्हें उत्पन्न किया है । निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसोंके विनाशके लिये तुम्हारे उत्पत्ति हुई है ।

१ जैसे वज्रशालामें श्रुत्विकोंके पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रोंके पति चन्द्र अस्ताचल जाते हैं, वैसे ही तुम भी, पुरोवर्ती सोमकी तरह, स्वर्गसे हमारे पास आओ । जैसे पुत्र लोग, अन्न-भक्षणके लिये पिताको बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें हम सोमाभिषवमें बुलाते हैं । श्रुत्विकोंके साथ इष्ट्य ग्रहणके लिये महान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जलका पान करता है, हे' रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही तृप्ति, पराक्रम, महत्त्व और आनन्दोत्पत्तिके लिये प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा वृषापवित्र द्वारा शोचित सोमरस पान करो । जैसे हरि नामक अश्व सूर्यको लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें ले आवें ।

३ जैसे चिड़िया दुर्गम स्थानमें अपने बच्चोंकी रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती वा बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही इन्द्रने भी अत्यन्त गोपनीय स्थानमें स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर-राशिमें परिवेष्टित सोमरसको स्वर्गसे प्राप्त किया । अङ्गिरा लोगोंमें अप्रगण्य वज्रधारी इन्द्रने जैसे पहले, सोमपानकी इच्छासे, गोशालाको प्राप्त किया था, वैसे ही सोमरसको भी पाया । इन्द्रने चारो ओर मेघावृत और अन्नके कारण जलके द्वारोंको खोलते हुए पृथिवीमें चारो ओर अन्न बिस्तार किया ।

दादूहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षत्रेव तिग्ममसनाय संश्रयदद्विहत्याय संश्रयत् ।  
 संविध्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्जना ।  
 तष्टेव वृक्षं वनिनो निवृक्षसि परश्वेव निवृक्षसि ॥४॥  
 त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेच्छा समुद्रमसृजो रथां इव वाज्रवतो रथां इव ।  
 इत ऊतीरयुजत समानमर्थमक्षितम् ।  
 धेनूरिष मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥  
 इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीः स्वपा अतक्षिषुः सुज्ञाय त्वा मतक्षिषुः ।  
 शुभ्यन्तो जेभ्यं बधा वाजेष क्षिप्र वाजिनम् ।  
 अत्यमिष शवसे सातये धना विश्वाधनामि सातये ॥६॥  
 भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुपे नृतो वज्रेण दाशुपे नृतो ।  
 अतिथिवाच शम्बरं गिरैरग्नौ अवाभरत् ।  
 महो धनामि द्यमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

४ इन्द्र दोनों हाथोंमें अच्छी तरह वज्र धारण करके, शत्रु के प्रति फेंकने के लिये, वज्र के तीक्ष्ण होनेपर भी, जैसे मंत्रों द्वारा जलको तीक्ष्ण किया जाता है, वेने ही उने और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाशके लिये और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटनेवाले वृक्षको काटते हैं, वेने ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बलसे वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओंका वध करने हो, मानों फरसेसे काटते हो ।

५ इन्द्र, तुमने, समुद्रको ओर गमन करनेके लिये, रथकी तरह, नदियोंको अनायास बनाया है। जैसे बौद्धा रथको बनाते हैं, वेसे ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनुके लिये गाथें सर्वायुषाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्यके लिये गाथें सर्वदुःख-प्रद हैं, वेसे ही हमारी अभिमुखिनी नदियां एक ही प्रयोजनसे जल संग्रह करती हैं ।

६ जैसे कर्म-कृष्णक और धोर मनुष्य रथ बनाता है, वेसे ही धनाभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याणके लिये तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसारमें द्विग्विजयीकी प्रशंसा की जाती है, वेसे ही हे मेधावी और दुर्द्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राममें अश्वकी प्रशंसा होती है, वेसे ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलोंकी प्राप्तिके लिये तुम्हारी प्रशंसा होती है।

७ संग्राम-कालमें नृत्यकर्ता इन्द्र, तुमने इविःप्रद और अमोघ-दाता दिवोदास राजाके लिये नग्ने नगरोंको गच्छ किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिथिसेवक दिवोदास राजाके लिये पर्वतसे शम्बर अश्वको नीचे पटक था और दिवोदास राजाके लिये अपनी शक्तिसे अगाध धन दिया था—और क्या, सारा धन दिया था ।

इन्द्रः समस्तु यजमानमार्थं प्रोक्षिष्युः । स्मृतवर्जिषु स्वर्मीहृष्याजिषु ।  
 मनस्ये शासद्व्रतान् स्वचं कृष्णमवन्ध्यन् ।  
 दक्षन्निष्त्वं तत्प्राणशोषात् व्यसन्नमपार्थ ॥८॥  
 सूश्चक्रं प्रवृहज्जात ओजसा प्रापते । तस्मिन्ना मुपायनीशान् आमुषार्यान्  
 उशनायन् परावता जगन्मृतये क्रतुः ।  
 सुस्रानि विश्वा मनुष्येव तुषाणग्रहः । अश्वान् तुषाणि ॥९॥  
 स नो नव्योभिवृषकर्मन्तुक्थः पुरां दतः प्रायुभिः पाहि शर्मैः ।  
 दिवोदासंभिरिन्द्रस्तवानां वावृधोश्च अयोमोय्य द्यौः ॥१०॥

१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्याष्ट छन्दः ।

इन्द्राय हि द्यौरसुगो अनस्रतेन्द्राय मन्त्रं वृषिणा वरणीममिच्छन्सनाता वरीमसि ।  
 इन्द्रं विश्वे सजापसा देवासां दधिर्गं पुर ।  
 इन्द्राय विश्वा सवतान् मानुषा रतानि । अन्तु मानुषा ॥१॥

८- सुद्धमें इन्द्र आर्थ यजमानकी रक्षा करने हैं । मनुष्य या वृद्धा को अपने इन्द्र मन्त्र युद्धमें उसकी रक्षा करते हैं । छलकारी युद्धमें उसकी रक्षा करते हैं । इन्द्र मनुष्यों के लिये वर-शुभ वर्यक्तियोंका प्राप्त करने हैं । इन्द्रने कृष्ण नामके अश्वरकी काली त्वचा उखाड़कर उसका (अंशुमती नदीके किनारे) नष्ट किया । इन्द्रने उसे जला डाला । इन्द्रने सारे हिसकोको जला डाला । उन्होंने समस्त निष्पूर व्यक्तियोंको मरानेका प्रयत्न किया ।

९- सूर्यका रथ-वक्र ग्रहण करनेपर इन्द्रने शनारसे उसकी रक्षा की । इन्द्रने उन चक्रों को फँसा और अरुणवर्ण-रूप धारण करके, शत्रुओंके पास जाते हुए उनके कर्कश-हृत् को लज्जित करने के लिये समस्तियारके इन्द्रने उनके वाक्यका हरण कर लिया । वीरकर्म इन्द्र, उशनाकी रक्षा के लिये तत्प्राणशोषात् व्यसन्नमपार्थ थे, वैसे ही हमारे समस्त छल-साधन धनके साथ हमारे पास शीघ्र आओ । दूधर्षिक मनुष्य इन्द्रने रक्षा करने लगे । हमारे पास प्रतिदिन आते हो ।

१०- जल-वर्षक और नगर-निर्माता इन्द्र, इन्द्रने नगर-वस्तु-आका विशिष्ट प्रकारकी रक्षा और छल देते हुए हमें प्रतिपालित करो । इन्द्रदिवोदासके वाक्त्र है, अमृतार-मृत्यु-अपार्थ । सुम । १३१में, सूर्यका सरह, प्रवृद्ध हो जाओ ।

१ विशाल ध्रुलोक स्वयं इन्द्रके पास नष्ट हुआ है । विवृता पृथिवी वरणीय या स्वीकृणीय स्तुति द्वारा इन्द्रके पास नष्ट हुई है । अन्नके लिये यजमान लोग वरणीय इन्द्र द्वारा नष्ट हुए हैं । सारे देवोंने एक मतसे इन्द्रको अपनी किया है । मनुष्योंके सारे यज्ञ और मनुष्योंके सारे दान आदि इन्द्रके छलके निमित्त हैं ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।  
 तं त्वा नायं नपर्षणिं शृषस्य धुरि धीमहि ।  
 इन्द्रं न यज्ञैश्चिन्त्यन्त आयवः एतोमेभिर्गिन्द्रमायवः ॥२॥  
 वि त्वा ततस्त्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सश्रन्त इन्द्र निःसृजः ।  
 यद्गव्यन्ता ह्य जना स्वर्यन्ता समूहसि ।  
 आविष्करिकद्रूपणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सन्नाभुवम् ॥३॥  
 विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः साव्यहानो अवातिरः ।  
 शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवस्वरूपे ।  
 महोममुष्णाः पृथिवामिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥  
 आदिते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सवीयनां यदाविथ ।  
 चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रचन्तव ।  
 ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णतः श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५॥

२ इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत फलकी प्राप्तिके आशाय प्रत्येक यज्ञमें यज्ञमान लाया तुम्हें इव्य प्रदान करते हैं । तुम सबके लिये समान हा । स्वर्ग-प्राप्तिके लिये केवल तुम्हें ही इव्य दिया जाता है । जिनने नती पत्र होनेके समय नौका खड़ी की जाती है, वैसे ही हम सेवाके आगे तुम्हें खड़ा करत हैं । यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्रका ही चिन्ता करते हैं । मनुष्य स्तुति द्वारा इन्द्रकी चिन्ता करता है ।

३ इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यत्नमान स्त्री-पुरुष, तुम्हारे वृत्तिके इच्छामें, बहुसंख्यक गोधनकी प्राप्तिके लिये, बहुत इव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्यमें यज्ञ-विस्तार करते हैं । वे गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमनके लिये उत्सुक हैं । तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो । इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो । तुमने अपने सहजन्मा और चर-सहचर वज्रका आविष्कार किया है ।

४ इन्द्र, मनुष्य तुम्हारे महिमा जानते हैं । तुमने जन यादू आका संवत्सर पर्यन्त गार्ह या परिखा आदिके इड़ीकृत नगरियोंको नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—बहु कथा अनुष्य जानते हैं । तुलपति इन्द्र, तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्यका शासन किया था । तुमने यज्ञान पृथ्वा और जलराशि का जीता था । तुमने आनन्दसे जल निकाल लिया था ।

५ इन्द्र, सोमपान कर अमन्न होनेपर मनोरथ-पूना बना । चूँकि तुम यज्ञमानोंको रक्षा किया करते हो; अपने वन्धुताकामी यज्ञमानोंको रक्षा किया करते हो; इसलिये य, तुम्हारी वृद्धिके निमित्त, बार-बार इव्य प्रदान करते हैं । बुद्ध-सुखके भोगके लिये तुमने सिंहवाद किया था । यज्ञमान लोग तुमने नाना प्रकारकी भोग्य वस्तु पाते हैं; अन्नाधी होकर तुम्हारे पास प्राप्त होते हैं ।



उतो नो अस्वा उपसो जुपेतह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।  
 यदिन्द्र हन्तव्ये मृधो वृषा घञ्जिञ्जिकेतसि ।  
 आ मे अस्य वेधसो नवोयसो मन्म श्रुषि नवीयसः ॥ ६ ॥  
 त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूरमर्त्यम् ।  
 जहि यो नो अन्धायनि शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।  
 रिष्टं नयामन्तपभूतु दुर्मनिर्विश्वापभूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥



१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टाष्टि छन्द ।

स्वया वयं मघवन पूर्य धन इन्द्रतोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।  
 नेष्टिष्ठे अस्मिन्नहस्यधियोवानु सुन्वते ।  
 अस्मिन् यज्ञे विजयेमामरेकृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥  
 सवर्जये भर आपस्य वक्रमरुषवधः स्वस्मिन्नुसि क्राणस्य स्वस्मिन्नुसि ।  
 अहन्निन्द्रो यथा विदे शीष्णा शोष्णोपवाध्यः ।  
 अस्मन्नाने सध्र्यक् सन्तु रानयो भद्राभद्रस्य रतयः ॥ २ ॥

६ इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालीन यज्ञका आश्रित करोगे क्या ? इन्द्र, आह्वान-मंत्र द्वारा प्रदत्त, पूजाके लिये, हव्यको जानो । आह्वान मंत्र द्वारा आहुत होकर छत्र-भोगक स्थानपर उपस्थित हो जाओ । वज्रयुक्त इन्द्र, निम्नकोके विनाशके लिये अमोघवर्षा होकर जागो । इन्द्र, मैं मेधावी और नया मनुष्य हूँ; मैं स्तुतिवाला हूँ; मेरा मनोहर स्तोत्र सुनो ।

७ अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुतिमें वृद्धि पायी है और हमारे प्रति सन्तुष्ट हो । जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुताका आचरण करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र द्वारा बिलेट करो । हे सुननेके लिये उत्कृष्ट इन्द्र, सुनो । इन्द्र, मार्गमें अन्त-मर्दे वस्तुतः जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकारके सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पासमें दूर हो जायें ।

१ हे छल-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वारः रक्षित होकर हम प्रबल वृद्धियोंके सम्मुख शत्रुओंको परास्त करेंगे । प्रहारके लिये प्रस्तुत शस्त्रपर प्रहार करेंगे । इन्द्र, पूर्व-धन-संयुक्त यह यज्ञ निष्कटवर्ती है; इसलिये आज हविर्वाता यजमानके उत्साहके लिये कथा कहो । इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो । तुम्हारे उद्देश्यमें हम हव्य लाते हैं । तुम युद्ध-विजेता हो ।

२ शत्रु-वधके लिये इधर-उधर दौड़नेवाले चोर पुरुषोंके स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संघामके आगे इन्द्र, प्रातःकालमें जागे हुए याज्ञिकोंके, शत्रुओंका नाश करते हैं । सर्वशक्ती तरह इन्द्रकी अवनत-मस्तक होकर स्तुति करना सबका कर्तव्य है । इन्द्र, तुम्हारा विद्या धन केवल हमारे ही लिये हो । तुम भद्र हो, तुम्हारा विद्या धन स्थिर हो ।

तत्तु प्रथः प्रकथा ते शुशुकनं यस्मिन् यक्षे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारस क्षयम् ।

वितद्वोक्षेरध्वितान्तः पश्यन्ति राक्षसिभिः ।

सद्य विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिप्त्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

नु इत्या ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योवृणोरपव्रजमिन्द्र शिक्षन्पव्रजम् ।

पभ्यः समान्यादिह्यास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।

सुम्बद्व्योरन्धया कष्णिद्वतं हृणायन्तं चिद्वतम् ॥ ४ ॥

सं यजनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयदने हिते तरुषन्त श्रवस्यधः प्रयक्षन्त श्रवस्यधः

तस्मा आयुः प्रजावद्विद्वार्धे अचन्त्योजसा ।

इन्द्र ओवयं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ ५ ॥

युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपतन्तिमदुतं वज्रेण तं तमिद्वतम् ।

दूरे चत्तावच्छन्तसद्रहनं वदिनक्षत्

अस्माकं शत्रून् परि शूर विद्वतो दमदिर्पोष्ट विद्वतः ॥ ६ ॥



३ इन्द्र, पूर्वकी तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध दृश्य-रूप अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञके निवास-स्थान-स्वरूप हो। जिस अन्न द्वारा श्रुत्विक् लोग स्थान सुशोभित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञकी कथा कहो। ऐसा होनेपर संसार आकाश और पृथिवीके बीच सूर्य-किरण द्वारा देख सकेगा। इन्द्र जलकी गवेषणामें तत्पर हैं। वह अपने बन्धु यजमानोंके लिये गौ होजते हैं। वह उन क्रममें सारी कथाएँ जानते हैं।

४ इन्द्र, पूर्व कालकी तरह तुम्हारा बर्म इस समय भी सबकी इशारेके योग्य है। तुमने अज्ञात लोगोके लिये मेघका उदघाटन किया था। तुमने उपहत गो-घनका उद्धार करके उन लोगोंको दिया था। इन्द्र, तुम उक्त ऋषियोंकी तरह आयोंके लिये युद्ध करते और विजयी बनते हो। जो अभिषव करते हैं, उनके लिये यज्ञ-विघ्नकारियोंको अवगत करते हो। जो बन्ध-विघ्नकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवगत करो।

५ चूँकि शूर इन्द्र, कर्म द्वारा मनुष्योंके विषयमें यथार्थ विचार करते हैं; इसलिये अन्नाभिलाषी यजमानगण अभिमत्त घन प्राप्त करके शत्रुओंका विनाश करते हैं। वे अन्नाभिलाषी होकर विशिष्ट रूपमें यज्ञ करते हैं। इन्द्रके उद्देश्यसे प्रदत्त अन्न पुत्रादि प्राप्तिका कारण है। अपनी शक्तिमें शत्रुके निवागणके लिये लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं। यज्ञकारी लोग इन्द्रके पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवोंके पास ही रहते हैं।

६ हे इन्द्र और पर्वत या मेघके अभिमानी देव, तुम दोनों अगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोधमें सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो। वज्र-प्रहार द्वारा उन सबको विनष्ट करो। यह वज्र अन्यन्त दूरगामी शत्रुका भी विनाश करनेकी इच्छा करता और अति गहन स्थानपर भी व्याप्त होता है। शूर इन्द्र, तुम हमारे साथे शत्रुओंको त्राविध उपायों द्वारा विधीर्ण करते हो। शत्रु-विधारक वज्र विविध उपायोंसे विधीर्ण करता है।

१३३ सूक्त । इन्द्र देवता । छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गद्यत्री, धृति और आयष्टि ।

उभं शुनानाम् भोदसो ऋतेन द्रुहो दहामि संमही निन्द्राः ।

आमङ्गल्य यत्र तन। समित्रा वेलस्थानं पणितृहा अशेग्न ॥ १॥

अभिलक्ष्याचिद्विनाः शीघ्रं यातु मनीषाम् ।

छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

अवासां मभवज्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।

त्रैलोक्यान्तर्गतं सर्वं महाधैर्यं त्वत्तु ॥ ३ ॥

ग्राम्यां तिस्रः पञ्चाशतोभित्तङ्गः स पात्रपः ।

तत् सुते मनायति तदस्य ते मनायति ॥ ४ ॥

पिशुनभृष्टमभृष्टं पिशाचिमिन्द्र संसृणु । सर्वं भक्ष्यं निवर्हय ॥ ५ ॥

अथमह इन्द्रः काहूतिः अर्था नः शुशोभति त्र्योः आनन्दं पाँ अद्विषो वृष्णां न भीषाँ अद्विषः ।

शक्तिमन्तमो हि शुष्मभित्थंरग्रे विरियमे ।

अपूराग्रो अ तीत शू सतभिस्त्रिस्त्रैः शू सतभिः ॥ ६ ॥

१ में आकाश और पृथिवी, दोनोंका, यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ । मैं इन्द्र-शुक्ला और विद्रोहिणी पृथिवीको अच्छी तरह दग्ध करता हूँ । जिस-किसी स्थानपर शत्रुगण एकत्र हुए, वहीं मारे गये । अच्छी तरह दिनष्ट होकर वे शमशानकी चारों ओर पड़े गये ।

२ शत्रु-भक्षक हस्त्र, हिंसावली संकाश स्त्रि एतत्तु त्वं नृप उमे विशाल पद्म द्वारा भक्षण करो । तुम्हारा पद महाविस्तीर्ण है ।

३. मसखन् इन्द्र, दण्ड दिसानती मेराया कल नुपुं कर म्पुं उरौ पुत्तिरा अम्पुं महान् प्रशानमे फेक दो ।

४ इन्द्र, इस तरह तुमने विगुणित पञ्चांग गेनाओंका नाश किया है। तुम्हारे इस कार्यके लोग बहुत पसन्द करते हैं। तमसारे लिये यह कार्य स्यान्न है।

४ इन्द्र, कुल, शक्तवर्ण, अग्नि भयंकर और शब्दकारी पिशाच य अनायास विनाश करो और समस्त राक्षसों वा अनार्यों को समाप्त करो ।

६ इन्द्र, तुम विशाल मेघको, निम्न मुख करके, विदीर्ण करो। इसारी बात सुनो ! मेघ-युक्त इन्द्र, जैसे धान्य न होनेसे ढरके माँगे पृथ्वी शोक करती है, वैसे ही स्वर्ग भी शोक करता है। मेघ-संपन्न इन्द्र, पृथ्वी और स्वर्गका मध्य दीप्त अग्नि की मूर्ति की तरह है। इन्द्र, अपने बलसे तुम महावृषी हो; इसलिए तुम अत्यन्त क्रूर वधोपायका आश्रय करते आ रहे हो। यशमन्ता का विश्वास नहीं कर सकते। तुम शुभ से जोरदार तृप्ताने उपर आक्रमण नहीं कर सकते। तुम इकोस अनुचरोंसे युक्त हो। १९

❖ कदाचित् ये इकीस अनुचर मरुद्गण हैं।

वनोति हि सुन्वान् क्षयं परीणसः सुन्वानो हिष्मा यजत्यवद्विषो देवानामवद्विषः ।

सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।

सुन्वानयेन्द्रो ददात्याभुवः यि ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥



२० अनुवाक । १३४ सूक्त । वायु देवता ।

आ त्वा जुवो शरदाणा अभिप्रथो वायो ब्रह्मन्विनः पूर्वपोतये सोमस्य पूर्वपीतये ।

ऊर्ध्वानि अनु सूनृता मनस्विष्ठनु जानतो ।

नियुत्वता रथेनाधाहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविवोस्मन् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।

यज्ञ क्राणा इरध्यै दक्षे सन्नन्त ऊतयः ।

सधीर्चीना नियुतो दावने धिय उपब्रूवत ईन्धियः ॥२॥

वायुर्युक्ते रोहिता वायुररुणः वायू रथे अजिरा धुरिवोहवे वहिष्ठा धुरिवोहवे ।

प्रबोधदः पुरन्धि जा आससतीमिव ।

प्रचक्षरोदसी वासयोपसः श्रवसे वासयोपसः ॥३॥

७ इन्द्र, अभिषव करनेवाला यजमान गृह प्राप्त करता है । सोमयज्ञ करनेवाला चारों ओरके शत्रुओंका विनाश करता है । देव-शत्रुओंका भी विनाश करता है । जन्मवाला और शत्रुके आक्रमणसे शून्य अभिषवकर्ता अपरिमित धन प्राप्त करता है । इन्द्र सोमयाजक यजमान चतुर्दिक् उत्पन्न और अति समृद्ध धन प्रदान करता है ।

१ वायुदेव, शीघ्रगामी और बलवान् अश्व तुम्हें, अन्नके उद्देश्यसे और देवोंके बीच प्रथम, सोमपानके लिये, इस यज्ञमें ले आवे । हमारी प्रिय, सत्य और उच्च स्तुति अच्छी तरह तुम्हारे गुणकी व्याख्या करती है । वह तुम्हें अभिमत हो । यज्ञके इन्धनकी स्वीकृति और हमें अभीष्ट देवके लिये नियुत नामक अश्वोंमें युक्त रथपर आओ ।

२ वायु, मादकतोत्पादक, हर्षजनक, सम्यक् प्रस्तुत, उज्ज्वल और मन्त्र द्वारा हृष्टमान सोमविन्दु तुम्हारे सामने आकर हर्ष उत्पन्न करे; क्योंकि कर्म-कुशल, प्रीतियुक्त, निरन्तर सहगामी नियुत, तुम्हारा उत्साह देखकर, इन्धन ग्रहणके लिये, तुम्हें यज्ञभूमिमें लानेके लिये मिलते हैं; बुद्धिमान् यजमान लोग तुम्हारे पास आकर रथोपगत भाव व्यक्त करते हैं ।

३ भारवहनके लिये वायु लोहितवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु अरुणवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु अजिर-वर्ण या रामनशील अश्व योजित करते हैं; क्योंकि, ये भारवहनमें अत्यन्त समर्थ हैं । जैसे थोड़ी निद्रामें आयी स्त्रीको उसका आसक्त जगा देता है, उसी तरह तुम भी बहुयज्ञ-प्रबोधित यजमानको जगाते हो । तुम अश्वोंके और पृथिवीको प्रकाशित करने हो । उषाको स्थापित करते हो । इन्धन ग्रहणके लिये उषाको स्थापित करते हो ।

तुभ्यमुवाचः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते वंसुराश्मपु चित्रा नन्येषु रश्मिषु ।  
 तुभ्यं घेनुः सवर्षुषा विश्वा वसूनि दोहते ।  
 अजनपो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आवक्षणाभ्यः ॥४॥  
 तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इपणन्त भुवण्यपामिपन्तु भुवर्षणि ।  
 त्वात्सारी दसमानो भगमीदृ वक्रवीये ।  
 त्वं विश्वस्माद्भवनात् पांसि धर्मणा सूर्यात् पांसि धर्मणा ॥५॥  
 त्वं नो वायवेपामपूर्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।  
 उतो विह्वलमतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।  
 विश्वा इत्ते धमवां दुह आशिरं घृतं दुहत आशिरम् ॥६॥



१३५ सूक्त । वायु देवता । अत्यष्टि छन्द ।

स्तीर्णं बहिरूप नो याहि वीतये सहस्रण नियुता नियुत्वते शस्तिनीभिर्नियुत्वते ।  
 तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय योमरे ।  
 प्र ते सुतासो मधुमन्ता अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

४ होतियुक्त उवाच, दूर देशमें, तुम्हारे ही लिये, घाँकों टकनेवाला किरणोंसे कल्याणकर वस्त्रका विस्तार करती हैं; नवी किरणोंसे विचित्र वस्त्रका विस्तार करती हैं । अमृत बरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिये समस्त धन दान करती हैं । तुमने वर्षा और नदियोंके उत्पादनके लिये अन्तरीक्षसे मरुतोंको उत्पादित किया है ।

५ बीस, शुद्ध, उग्र और प्रवाहशाली सोम, तुम्हारे आनन्दके लिये आह्वनीय अग्निके पास जाता है और जलभार-बाहक मेघकी आर्काक्ष करता है । वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चारोंके हृदयके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं । हमारे धार्मिक होनेसे हमें सारे भूतोंसे रक्षा करो । हमें, धर्म-संयुक्त होनेके कारण, अश्वोंसे रक्षा करो ।

६ वायु, तुमसे पहले किसीने सोमपान नहीं किया है । तुम्हीं पहले हमारे इस सोमपानको करनेके योग्य हो; अभिपूत सोमपान करने योग्य हो । तुम इवनकर्ता और निष्पाप लोगोंका हव्य स्वीकार करते हो । सारी गायें तुम्हारे लिये दूध देती हैं और तुम्हारे लिये घी भी देती हैं ।

१ नियुत् अन्वयात्ते वायु, तुम कितने ही नियुतापर चढ़कर, अपने लिये प्रस्तुत हव्यके भक्षणके लिये, हमारे निजाये कुशोंपर आओ । असंख्य नियुतापर चढ़कर आओ । तुम नियुतवाले हो । तुम्हारे पहले पान करनेके लिये अन्व देवता हुए हैं । अभिपूत मधुर सोम तुम्हारे आनन्दके लिये है, यज्ञ-सिद्धिके लिये है ।

तुभ्यार्य सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पर्हावसानः परिक्रीशमर्षति शुक्रावसानो अर्पति ।  
 तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।  
 वह वायो नियुतो याहास्मयुर्जुषाणो याहास्मयुः ॥ २ ॥  
 आ नो नियुजिः क्षतिनोभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।  
 तवायं भाग अतिवहः सरश्मिः सूर्य सचा ।  
 अध्वर्यमिर्मरमाणा अयं सत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥  
 आवां रयो नियुत्वान्वक्षद्वसेभि प्रयांसि सुचिनानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।  
 पिबतं मध्वो अश्वसः पूर्वपेयं हि वीहितम् ।  
 घायवा चन्द्रेण राधसागतमिन्द्रश्च राधसागतम् ॥ ४ ॥  
 आ वां श्रियो ववृत्युरध्वरा उपेमिन्दं ममृजन्त वाजिनमाशुमर्त्यं न वाजिनम् ।  
 तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।  
 इन्द्रवायू सुतानामद्रिमिर्यं वं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥  
 इमे वां सोमा अपस्वा सुता इहाध्वर्यमिर्मरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।  
 एते वामन्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।  
 युवायवोति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

२ वायु, तुम्हारे लिये, पत्थरसे परिशोधित और आर्काक्षणीय तथा तेजः-सम्पन्न सोम अपने पात्रमें जाता है; शुक्र तेजसे संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवोंके मध्य तुम्हारे लिये यही छन्दर सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिये नियुक्त अश्वोंको जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुग्रह कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

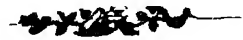
३ वायु, तुम सैकड़ों और हजारों नियुक्तोंपर सवार होकर अभिमत-सिद्धि और इष्ट भक्षणके किये हमारे यज्ञ-में उपस्थित हो। यही तुम्हारा लेने योग्य हिंसा है; यह सूर्यके तेजसे तेजस्वी है। अतिवहके हाथका सोम लेणर है। वायु, पवित्र सोम लेणर है।

४ हमारी रक्षाके लिये, हमारे सुगृहीत अन्न-भक्षणके निमित्त और हमारे इष्टकी सेवाके लिये, हे वायु, नियुक्ते युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आवे। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करना हो तुम लोगोंके लिये ठीक है। वायु, मनोहर घनके साथ आओ। इन्द्र भी घनके साथ आव।

५ हे इन्द्र और वायु, हमारे मन्त्र आदि तुम कावार्क यज्ञमें आनेके लिये प्रेरित करते हैं। जैसे शीतलामी अरवको परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही कड़वने लिये हुए सोमको अतिवहका परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओंका सोमपान करो। हमारी रक्षाके लिये यज्ञमें आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिये हमारे प्रति प्रपन्न होकर, आनन्दके लिये, पत्थरके टुकड़ेसे अभिवृत्त सोम पान करो।

६ हमारे इस यज्ञ-कार्यमें अभिवृत्त और अध्वर्युओं द्वारा गृहीत सोम निश्चय ही तुम्हीं दोनोंका है। यह वीत सोम निश्चय ही तुम लोगोंका है। यह यथेष्ट सोम निश्चय ही तुम्हारे लिये देव सोमाधार कुशमें परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अश्विन्व लोगोंको काँचकर प्रचुर परिमाणमें जाता है।

अत वायो ससता याहि शश्वतो यत्र प्रवा वदति सत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।  
 विष्मन्ता दृष्टे रीयते घृतमापूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥  
 अत्राह तद्दृष्टे मध्व आहुतिं यमश्वत्यमुपतिप्रन्त जायवोस्मेते सन्तु जायवा ।  
 साकं गावः सुवतं पच्यते यजानते वाय उपदस्यन्ति धेनवोः नापदस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥  
 इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसाः तनूदा न पतयन्त्युक्ष्णो महि बाधन्त उक्ष्णः ।  
 धन्वश्चिषो अनाशवो जाराश्चदागरीकसः ।  
 सूर्यस्येव यश्मयां दुनियन्तवो हस्तयादुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥



१३६ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अत्यष्टि और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रसुज्येष्ठं निचिगम्यां बृहन्मा हव्यं मतिं भरता मृडयद्भ्यां स्वादिष्टं मृडयद्भ्याम् ।  
 ता सघ्राजा घृतासुती यज्ञं यज्ञ उपस्तुता ।  
 अथैनाः क्षत्रं न कुतश्चनाधृपं देवत्वं नूचिदाधृपं ॥ १ ॥

७ वायु, तुम निद्रा में यजमानोंको अतिक्रम करके उस गृहमें जाओ, जिस गृहमें प्रस्तरका शब्द होता है । इन्द्र भी उसी गृहमें जायें । जिस गृहमें प्रिय और सत्य स्तुतिका उच्चारण होता है, जिस घरमें घृत जाता है, उसी यज्ञस्थानमें मोटे नियुत घाड़ोंके साथ जाओ । इन्द्र, वहाँ जाओ ।

८ हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञमें मधुके समान उस आहुतिको धारण करो, जिसके लिये विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशमें जाते हैं । हमारे विजेता लोग यज्ञके निर्वाहके लिये समर्थ हैं । इन्द्र और वायु, गायें एक साथ वृष देसी हैं और यवले बनाया द्रव्य तैयार होता है । ये गायें न तो कम हाँगा, न नष्ट होंगी ।

९ वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, नौजवान बलके समान और अत्यन्त दृढ़-पुष्ट वाद हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथिवीमें ले जाते हैं; ये अन्तरिक्षमें भी देर नहीं करते; ये बहुत यात्रागामी हैं; कौटसे भी इनकी गति नहीं रकती । सूर्य-किरणोंकी तरह इनकी गतिको रोकना दुःसाध्य है । हाथोंसे इनकी गतिको रोकना कठिन है ।

१ ऋत्विक्कृण, चिरन्तन मित्रावरुणको लक्ष्य कर प्रशंसनीय और प्रबुद्ध सेवा करो । उन्हें हव्य देनेमें कृत-निश्चय बनो । मित्रावरुण यजमानोंको सुख देनेमें कारण हैं । वे स्वादिष्ट द्रव्यका भक्षण करते हैं । वे सज्जात हैं । उनके लिये घृत गृहीत होता है । प्रतिपक्षमें इनकी स्तुति होती है । इनकी क्रिका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता । उनके देवत्वमें किसीको सन्देह नहीं होता ।

अदशि धातुर्गवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयन्त रश्मिभिश्चर्भर्गस्य रश्मिभिः ।  
 धुक्षं मित्रस्य साद्वनमयेष्णो वरुणस्य च ।  
 अथा दधाते बृहदुक्थ्यम् वय उपस्तुष्यं बृहद्रथः ॥ १ ॥  
 ज्योतिष्मतीमदिति धारयत्क्षिति स्वर्धनीमासन्नेने दिवेदिवे जायुवांसा दिवेदिवे ।  
 ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदिक्षा वानुनस्पती ।  
 मित्रस्तयोवर्णो यावयज्जनायमा यातयज्जनः ॥ २ ॥  
 अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः मामो भूत्ववपानेष्वाभगां देवा देवेष्वाभगः ।  
 तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।  
 तथा राजाना करथो यदोमह ऋतावाना यदोमहे ॥ ३ ॥  
 यो मित्राय वरुणायविप्रज्जनानवर्णं तं परिपातो अंहसा दाश्वंसं मर्तमंहसः ।  
 तमर्यमामिरक्षस्यजून्तमनुम्रतम् ।  
 ऊर्ध्वैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमेराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥  
 नमो दिवे बृहते रादसोभ्यां मित्राय वोवं वरुणाय मोदन्तुषु सुवृत्रोक्ताय मोदन्तुषु ।  
 इन्द्रमग्निमुपस्तुहि चक्षुर्मर्यमणं भगम् ।  
 ज्योर्जीवन्तः प्रजया सन्नेमहि सामभ्योती सन्नेमहि ॥ ६ ॥

२ अष्ट उषा विस्तृत यज्ञकी और जाती है—देखा देखा गया । शीघ्रगामा सूर्यका पथ व्याप्त हुआ । सूर्य-किरणोंमें मनुष्यकी आँखें खुलीं । मित्र, अयमा और वरुणक उज्ज्वल गृह प्रकाशमें परपूर्ण हुए; हम लिये तुम दोनों प्रकाशनीय और बहुत अन्न धारण करा । प्रकाशनीय और प्रभूत अन्न धारण करो ।

३ यजमानने ज्योतिष्मता, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-वर्धयिता वेदों सेवार को । तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तज और बल प्राप्त करा । तुम लोग अदितिक पुत्र और सर्व-प्रकार दानके कर्ता हो । मित्र और वरुण लोगोंका अच्छे व्यापारमें लगाते हैं । अयमा भी ऐसा करते हैं ।

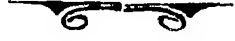
४ मित्र और वरुणक लिये यह साम प्रमन्नता-दायक हो । वे दोनों नीचे मुँह करके हमें पान करें । दीप्यमान सोम देवोंकी सेवाक उपयुक्त हैं । सारे देवगण अश्व प्रसन्न होकर हमें पियें । प्रकाशशाली मित्र और वरुण, हम कंसी प्रार्थना करते हैं; वेमा हो करा । तुम लोग सन्ध्यादाश हो; हम जिसके किये प्रार्थना करते हैं, उसे करो ।

५ जो व्यक्ति मित्र और वरुणकी सेवा करता है, उसे तुम पापमें बचाओ । दुष्ट-सूच्य और दुष्प्रदाता मनुष्यको सारे पापोंसे बचाओ । उस वरुण-धर्मात्मा के कियो, उसका वरुण अश्वर, अयमा रक्षा करने हैं । वह वरुणाम मंत्र द्वारा मित्रावरुणका व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र द्वारा उसकी रक्षा करता है ।

६ मैं प्रकाशशाली और महान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ । पृथिवी, आकाश, मित्र, वरुण और स्वर्गको भी नमस्कार करता हूँ । ये सब अमोघ फल और सुखके दाना हैं । इन्द्र, अग्नि, दोसिमान् अयमा और अगकी स्तुति करो । हम बहुत दिनों जोर निश्चयात्मिका बुद्धिसे बिरे रहेंगे । इसी प्रकार सोम द्वारा हम रक्षित होंगे ।



ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो ऋद्धिः ।  
अग्निमित्रो वरुणः शमेयसन्तदश्याम मघवानो त्रयं च ॥ ७ ॥



• हमने इन्द्रको प्राप्त किया है । हमारे ऊपर ऋद्धिगण कृपा करते हैं । देवता लोग हमें बचावें । इन्द्र, अग्नि मित्र और वरुण हमारे लिये सख्ताता हो । हम अन्नमे संयुक्त होकर इसी सख्ता भोग करें ।

### प्रथम अध्याय समाप्त



## २ अध्याय



१३० सूक्त । मित्रावरुण देवता । अतिशक्ती छन्द ।

सुषुमायातमाद्रिमर्गाश्राता मत्सरा इमे सामासां मत्सरा इमे ।

आ राजाना दिविरुपृशाः मित्रा गन्तमुप नः ।

इमे वां मित्रावरुणा गवांशिरः सोमाः शुक्रा गवांशिरः ॥ १ ॥

इम आयातमिन्द्रवः सोमासां दध्यः शिरः सुतासो दध्यः शिरः ।

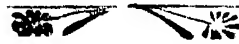
उत वामुपसां बुधिसाकं सूयस्य राशमाभिः ।

सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

तां वां धेनुं नवास्सीमंशुं दुहन्त्याद्रिभिः सोमं दुहन्त्याद्रिभिः ।

अस्मन्ना गन्तमुप नोर्वाश्वा सोमपीतये ।

अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आपातये सुतः ॥ ३ ॥



१३८ सूक्त । पूषा देवता । अत्याष्ट छन्द ।

प्र प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते मांहत्वमस्य तवसां न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।

अर्चामि सुस्रयन्नहमन्त्युति मयोभुवम् ।

विश्वस्य यां मन आयुयुवे मखां देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१ हम पत्थरके टुकड़ोंसे सोम चुभाते हैं । मित्रावरुण, आओ । दूध-मिला और तृप्ति करनेवाला सोम यही सामन है । यह सोम तृप्त देनेवाला है । तुम राजा, स्वगवासा और हमारे रक्षक हो । हमारे यज्ञमें आओ । तुम्हारे ही लिये यह सोम वृषके साथ मिलाया गया है । दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है ।

२ मित्रावरुण, आओ । यह तरक सोमरस दहीके साथ मिलाया हुआ है । अभिषुत सोमरस दहीके साथ मिलाया गया है । उषाके उदय-कालमें हो हो अथवा सूर्य-किरणोंके साथ हो हो—तुम्हारे लिये सोम अभिषुत है । यह छन्दर सोम-रस । मित्र और वरुणके पानके लिये है—यज्ञ-स्थलमें उनके पीनेके लिये है ।

३ तुम्हारे लिये बहुत रसवाली सोमकलाका, दुग्धवती गायकी तरह, पत्थरके टुकड़ोंसे बँट रहे हैं । वे प्रस्तर-कवच द्वारा सोमको ढूँढ़ते हैं । तुम हमारे रक्षक हो । सोम पानके लिये हमारे सामने हमारे पास तुम आओ । मित्र और वरुण, नेताओंने तुम्हारे लिये सोम चुभाया है—अच्छी तरह पीनेके लिये अभिषव किया है ।

१ अनेक मनुष्यों द्वारा पूजित पूषा ( सूर्य ) देवकी शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है । कोई उसे आरना नहीं चाहता । पूषाके स्तोत्रकी विश्रान्ति नहीं है । मैं सुख पीनेकी इच्छासे पूषाकी पूजा करता हूँ । वह सुरत छहारा देते और उत्पन्न करते हैं । पूषा यज्ञवाज है । वह सारे मनुष्योंके मनके साथ मिला जाते हैं ।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृष्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।  
 बुधे यस्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मत्पेः ।  
 अस्माकमांगूपान्यु स्निनस्कृधि वाजेषु यु स्निनस्कृधि ॥ २ ॥  
 यस्य ते पूषन्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तावसा बुभुजिर इति क्रत्वा बुभुजिरे ।  
 तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।  
 अहेलमान उरुशंस सरीभघ वाजेवाजे सरीभव ॥ ३ ॥  
 अस्या ऋपुण उप सातये भुवोहेलमानो रविर्वा अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।  
 ओषुत्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।  
 नहि त्वा पूषन्तिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह वे ॥ ४ ॥



॥३१ सूक्त। विश्वेदेवगण देवता। त्रिष्टुप्, वृहती, अस्पष्टि आदि छन्द।

अस्तु श्रोष्ट पुंगे अग्नि धिया दध आनुतच्छर्धो दिव्यं वृणामहे इन्द्रवायू वृणीमहे ।  
 यज्ञक्राणा विवस्वसि नाभा सन्दायि नव्यसी ।  
 अथ प्रसून उपयन्तु धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ १ ॥

२ जैसे शीघ्रगामी घोड़ों की प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। युद्धमें जानेके लिये तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। ऊँट ही तरह तुम हमें युद्धमें पार करते हो। तुम सब उत्पन्न करनेवाले देवता हो और मैं मनुष्य हूँ; ऐश्वरीयानेके लिये मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे बलानेको शक्तिमान् करो और संग्राममें मुझे विजयी बनाओ।

३ पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर नाना प्रकारके भोग भोगते हैं। नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असख्य धन चाहते हैं। बहुतेक द्वारा स्ववनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-कालमें हमारे अग्रगामी बनो।

४ अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभके सम्बन्धमें अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ। अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं। हमारे पास आओ। शत्रु-हन्ता पूषा, शत्रु-पाठ करते हुए हम तुम्हारे चारों ओर रहें। वृष्टिदाता पूषा, हम कभी न तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रताका कभी अपलाप करते हैं।

१ मैंने, अग्निके साथ, सामने अग्निकी स्थापना की है। अग्निकी स्वर्गीय शक्तिकी मैं प्रशंसा करता हूँ। इन्द्र और वायुकी प्रशंसा करता हूँ। चौक पृथिवीकी शक्तिमान् नाभि या यज्ञस्थानको लक्ष्य कर नयी अर्धकरी स्तुति बनानी गयी है; इसलिये अग्नि उभे चुन। पश्चात् जैसे हमारे क्रिया-क्रम अन्धान् देवोंके पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र और वायुके पास भी जायें।

यज्ञस्थन्मित्रावरुणावृतादध्याददाधे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्थ स्वेन मन्युना ।  
 युवोरित्याधि सद्यस्वपश्याम हिरण्ययम् ।  
 श्रीभिश्चन मनसास्देभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥  
 युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ध्रानयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्ययवः ।  
 युवोर्विश्वा अधिध्रियः पृथश्च विश्ववेदसा ।  
 प्रपायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दक्षा हिरण्यये ॥ ३ ॥  
 अस्वेति दक्षाव्यु नाकमृण्वथो युजते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।  
 अधिवांस्थाम बन्धुरे रथे दक्षा हिरण्यये ।  
 पथेव यन्तवानुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥  
 शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।  
 मा वां रातिरुदसत् कदाचनारुमद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥  
 वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्द्रव इमे सुता अद्रिषुतास उद्दिदस्तुभ्यं सुतास उद्दिदः ।  
 ते त्वामन्दन्तु दाधने महे चित्राय राधसे ।  
 गीर्मिर्गिर्वाहः स्तवमान आगहि सुमृङ्गीको न आगहि ॥ ६ ॥

२ कर्म-कुशल मित्र और वरुण, अपनी शक्ति द्वारा सूर्यके पासमे जो विनाशी जल पाते हो, वह हमे यथेष्ट परिमाणमे देते हो; इसलिये हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमसमे आसक्त इन्द्रियोंकी सहायतासे, यज्ञकाकारमे, तुम लोगोका ज्योतिर्मय रूप देखें।

३ अश्विनोक्तुमारो, स्तुति द्वारा तुम्हें अपना देवता बनानेकी इच्छा से यजमान लोग श्लोक सुनाते तथा द्रव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं। सर्वधन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग, तुम्हारी कृपासे, सब तरहके धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं। तुम्हारे सोनेके रथकी नेमियां मधु गिराती हैं। उसी रथपर हव्य ग्रहण करो।

४ दक्षद्वय, तुम्हारे मनकी बात सब जानते हैं। तुम स्वर्गमे जाना चाहते हो। तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथमे रथ योजित करते हैं। निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथको नष्ट नहीं करते। अश्विद्वय, धन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तुसे युक्त हिरण्ययमय रथपर हम तुम्हें बैठाते हैं। तुम लोग सरल मार्गसे स्वर्गको जाते हो। तुम लोग राज ओंको परास्त करते और विशेष रूपसे वृष्टिकी व्यवस्था करते हो।

५ हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं। हमारे क्रिया-कर्मके लिये दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो। न तो तुम्हारा धन बन्द हो और न हमारा।

६ अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षाके पानके लिये यह सोम अभिषुत हुआ है। यह प्रस्तर-सखट द्वारा अभिषुत हुआ है। सोम पर्वतपर उत्पन्न हुआ है। वह तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। विदिध विदिध्र लाभके लिये यथास्थान प्रक्षुप्त सोम तुम्हारी कृतिका साधन करो। स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ।

ओषूणो अग्ने ऋणुहि त्वमीडितो देवेभ्यो वासि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।  
 यद्वत्यामाङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।  
 बितां दुहं अयमा कर्तरी सचाँ एपतां वेद मे सदा ॥ ७ ॥  
 मो पु वो अस्मदस्मितानि पौल्यासना भुवं द्युधानि मोतजारिपुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।  
 यद्वश्चित्रं युगे युगे नव्यं घोपादमर्त्यम्  
 अस्मासुतन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥  
 दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेघः कण्वो अत्रिमनुर्विदुस्ते मे पूर्वं मनुर्विदुः ।  
 तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।  
 तेषां पदेन महानमे गिरिन्द्राग्नी आनमे गिरा ॥ ९ ॥  
 होता यशन्ननिना वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति चेन उश्रभिः पुरुवारिभिरुश्रभिः ।  
 जगृभ्मादूर आदिशं श्लोकमद्रं वधन्मना ।  
 अधार्यद्वरग्नानि सुक्रतुः पुरुसधानि सुक्रतुः ॥ १० ॥  
 ये देवास्तो दिल्येकादश स्थ पृथिव्यामध्यैकादश स्थ ।  
 अप्सुक्षिन्तो महिनैकादश स्थ ते देवास्तो यज्ञमिमं जुपध्वम ॥ ११ ॥

७ अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । हमारी स्तुति सुना । दीप्यमान और यज्ञ-योग्य देवों के पास यजमानकी बात कहना; क्योंकि देवोंने अङ्गिरा लोगोंको प्रसिद्ध धेनु दी थी । अयमा देवों के साथ स्वर्गोत्पादक अग्निके लिये, उस धेनुका दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारा साथ सम्बन्ध है ।

८ हे मरुतो, तुम्हारा नियम और प्रसिद्ध बल हमें प्राप्त नहीं करे । हमारा धनकम न हो । हमारा नगर क्षीण न हो । तुम्हारा जो कुछ नूतन, चिचिन्न, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युगमें हमारा हो । जो धन शत्रु लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो । तुम जो दुर्लभ धनको धारण करते हो, वह हमारा हो । जिस धनको शत्रु नहीं नष्ट कर पाते, वह हमारा ही हो ।

९ प्राचीन ऋषिचि, अङ्गिरा, प्रियमेघ कण्व, अश्वि और मनु मेरे जन्मकी बात जानते हैं । ये पूर्व कालके ऋषि और मनु मेरे पूर्व-पुरुषोंको जानते हैं; क्योंकि, महर्षियोंमें वह दीर्घायु हैं और मेरे जीवनके साथ उनका सम्बन्ध है । वे महान् हैं; इसलिये उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ ।

१० होता लोग यज्ञ करें, द्रव्यकी इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें । स्वयं इच्छा करके गृहस्पति प्रभूत और रमणीय सोम द्वारा याग करते हैं । हमने सूर्य देशमें प्रस्तर-खण्डकी ध्वनि सुनी । सक्रतु यजमान स्वयं जल-धारण करते हैं । वह बहुत निवास-योग्य घर धारण करते हैं ।

११ जो देवता स्वर्गमें ११ हैं, पृथिवीके ऊपर ११ हैं—जब अन्तरीक्षमें रहते हैं, तब भी ११ रहते हैं, वे अपनी महिमाले, बलकी सेवा करते हैं ।

२१ अनुवाक । १४० सूक्त । अग्नि देवता । योंसे १२४ सूक्तोंके उत्पत्तिके पुत्र दार्ढतमा रूपि हैं । त्रिष्टुप छन्द ।

वेदिपदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभगायानिमग्नये ।

वस्त्रेणैव वासया ममसा शुचि ज्योतीरथं शुक्वर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमो पुनः ।

अन्यस्यासा जिह्वा जेत्या वृषान्नन्येन वनिनो मृष्टवारणः ॥ २ ॥

कृष्णप्रतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तगेने अभिमातरा शिशुम् ।

प्राचाजिह्वं धवसयन्तं तृपुच्छुतमाभ्याक्ष्यं कुपयं वरुनं पितुः ॥ ३ ॥

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसातास ऊजुवः ।

असमना अजिरासो रघुष्यदो वानजृता उपयुज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥

आदस्यते धवसयन्ता वृथेगते कृष्णमर्ध्वं महिवर्षः क्ररिफ्रतः ।

यस्सीं महीमवनि प्राप्ति ममृशदभिश्चसन् स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥

भूपन्न योधियभ्रू प नभ्रते वृषेव पत्नीरभ्येति रोखन् ।

ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न श्रद्धा दधिधाघ वुर्गमिः ॥ ६ ॥

१ अष्टवयु, वेदोपर बड़े हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदोपर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्निके लिये तुम अन्नवान् स्थान या वेदी तैयार करो । उ० पाँच ज्वातते संयुक्त, दीप्त वर्ण और अन्धकार-विनाशो स्थानके ऊपर, वस्त्रकी तरह, मनोहर कुशको बिछाओ ।

२ द्विजन्मा या दा काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि आज्य, पुरोडाश और सोम नामके तीन अन्नोको सम्मुख लाकर खाते हैं । अग्निके द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सरके बीच, फिर बढ़ जाते हैं । अभोष्टवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वाकी सहायतासे, बढ़ते हैं । अग्नि दूसरे प्रकारका रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षोंको जलाते हैं ।

३ अग्निके दोनों काष्ठ चलते हैं । कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्निको प्राप्त होते हैं । शिशुको शिखारूपणो जिह्वा पृथ्वीमुखिनी है । यह अन्धकारको दूर करते हैं । शीघ्र उत्पन्न होते हैं । धीरे-धीरे काष्ठ-चूर्णोंमें मिलते हैं । बहुत प्रयत्नसे इनकी रक्षा करना होती है । यह रक्षकोंको समृद्धि देते हैं ।

४ अग्निकी शिखाएँ लघुगति, कृष्णमांसों या शीघ्रकारिणी, अस्तिरवित्ता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुवाहिका, व्यासि-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यज्ञमानकी उपयोगिनी हैं ।

५ जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विरुर्जी, पृथिवीको छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्निके सारे स्फुलिङ्ग, एक साथ, चारों ओर जाते हैं । वे अन्धकारका विनाश कर चारों ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्गमें उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं ।

६ अग्नि, पीले औषधोंको भूषित करके, उनके बीच, चरते हैं । जैसे वृषभ गायोंकी ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं । क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको प्रकाशित करते हैं । दुर्द्धव रूप धारण करके अथर्व ऋषीकी तरह सींग घुमाते हैं ।

स संस्तिरो विष्टिरः सङ्गृभायति जानन्नेव जानतीनिष्य आशये ।  
 पुनर्वर्द्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्षः पित्राः वृण्वते सचा ॥ ७ ॥  
 तमप्रुषः केशिनाः संहिरेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुमेघ्रपीः प्रायवे पुनः ।  
 तासां जरां प्रमुञ्चन्तेति नानददसुम्परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥  
 अधोवासं परिमातृरहन्नहतुचिप्रैभिः सत्वमिर्याति विज्ञयः ।  
 वयो दधत् पङ्कते रेरिहत् सदानु श्येनी सत्तते वर्तनीरह ॥ ९ ॥  
 अस्माकमग्ने मघवन्सु दीदिह्यध इवसीवान् वृषभो दमूनाः ।  
 अवास्या शिशुमतीग्दीर्घर्मैव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥  
 इदमग्ने सुभितं दुर्धितादधि प्रियादुन्निन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।  
 यस्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुत्रितेनास्मभ्यं वनसे रत्नमात्वम् ॥ ११ ॥  
 रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पङ्कतीं रास्यग्ने ।  
 अस्माकं वीरां उत नो मघो नो जनैश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥

● अग्नि कभी द्विरकर, कभी विराट् होकर औषधाँका व्याप्त करते हैं, मानों यजमानका अभिप्राय जानकर ही जानी अभिप्राय जाननेवाली शिलाको आश्रित करते हैं। शिवाएँ, किं बड़कर, याग-योग्य अग्निको व्याप्त करती हैं एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्गका अपूर्व रूप विसृजित करती हैं।

८ शीघ्रस्थानीय और आगे स्थित शिलाएँ अग्नि का आलिङ्गन करती हैं; मृतप्राय होनेपर भी अग्नि का आगमन जानकर ऊर्ध्वमुख होकर, ऊपर उठती हैं। अग्नि, शिलाओंका लुटापा लुटाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखण्ड जीवन प्रदान करते हुए, गर्जन करते आते हैं।

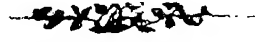
९ पृथिवी माताके ऊपरके ढङ्गन या नृग-गुलम आदिकाँ वायु-वाटने अग्नि प्रभूत शब्द-कर्ता प्राणियोंके साथ वेगसे गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओंको आहार देते हैं। अग्नि सदा चाहते हैं और क्रमशः जिस मार्गसे जाते हैं, उसे काटा करते जाते हैं।

१० अग्नि, तुम अभोष्टवर्षों और दानशोक हाकर स्वास फेंकते हुए हमारे घनाव्य गृहमें सीस हो। विशुद्धि जोड़कर, पुनः-समयमें बर्मकी तरह, बार-बार शत्रुओंको दूर करके जल उठो।

११ अग्नि, यह जो काठके ऊपर सावधानीसे इव्य रखा गया है, वह दुम्हारो मनोनुकूल प्रिय वस्तुसे भी प्रिय हो। दुम्हारो शरीरकी शिलासे जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो।

१२ अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथके लिये सहृद डाँढ़ या ऋत्विक् और पाद या मंत्रसे संयुक्त नौका या वह प्रदान करो। वह हमारे बोरों, घनवाहकों और अन्य लोगोंकी रक्षा करेगा और हमें सुखसे रखेगा।

अभीना अग्न उक्थमिज्जुगुर्या यावाभामा । तन्ध्रश्च स्वगूताः ।  
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहिं घर्मरुण्या वरन्त ॥ १३ ॥



१४१ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वडित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहस्रां यतां जनि ।  
यदोमुपहरते साधते मतिर्ऋतस्य धना अनयन्त सस्रतः ॥ १ ॥  
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आशये द्वितीयमासमशिशवासु मातृपु ।  
तृतीयमस्य वृषमस्य दोहमे दशप्रमति जनयन्त यापजः ॥ २ ॥  
निर्यदो बुध्नान्महिषस्य वर्षस ईशानासः शवसा क्रन्तमूरयः ।  
यदोमनु प्रदावो मध्व आधवे गुहासन्तं मानरिश्वा भथायति ॥ ३ ॥  
प्र यत् पितुः परमान्तायने पथेपृक्षुषो वीरुषो दंसुरातति ।  
उभा यवस्य जनुषं यद्विन्वत आदिशविषो अमवक्षुणा शुचिः ॥ ४ ॥

१३ अग्नि, हमारे ऋद्धमंत्रोंके लिये उत्साह बढ़ाओ । यावापृथगो और स्वयं गामिनी नदियाँ हमें गौ और शस्य प्रदान करके उत्साह वर्धित करें । अहगवो उवाएँ सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें ।

१ प्रकाशमान अग्निका दर्शनीय तेज, सवपुव, इसी प्रकार लोग, शरीरके लिये, धारण करते हैं । वह तेज शरीर बल या अग्नि-मन्थनमे उत्पन्न हुआ है । अग्निके तेजका आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अमोघ-सिद्धि कर सकता है; इसलिये अग्निके लिये स्तुति और इष्ट्य अर्पण किया जाता है ।

२ प्रथम अन्न-साधक शरीरों और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कल्याणवाहिनो सप्त-मातृकाओंमें रहते हैं, तृतीय इस अमोघवर्षीके दोहनके लिये रहते हैं । परस्पर संश्लिष्ट दशदिशाएँ दश दिशाओंमें पुत्रनीय अग्निको उत्पन्न करती हैं । x

३ चूँकि महायज्ञके मूलसे सिद्ध करनेवाले अतिवृद्ध बल-प्रयोग या अग्नि-मन्थन द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं, अनादि कालसे अच्छी तरह फेला देनेके लिये गुहास्थित अग्निको वायु चाकन करते हैं,—

४ अग्निकी उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये अग्निका निर्माण किया जाता है, आहारके लिये वाञ्छित कटाएँ अग्निकी शिखाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अन्नवर्ष तथा यजमान दानों ही अग्निकी उत्पत्तिके लिये चेष्टा करते हैं; इसलिये पवित्र अग्निदेव, यजमानोंके लिये अनुग्रह करते हुए, युवा हुए ।

x प्रथम अग्निका स्थान पृथिवी और द्वितीयका अन्तरीक्ष है, जहाँ मातृस्थानीय वृष्टि हाती है । यहाँ विधुदग्नि और अमोघवर्षी हैं । इन्हें बृहन्नके लिये सूर्यमन्त्ररूप स्थानमें जा अग्नि रहते हैं, वह तृतीयअग्नि हैं—इस मन्त्रका यही तात्पर्य है ।



आदिन्मातृगर्भाशयः ॥ १ ॥ शुभं च विष्णुमान उचिया विवावृधे ।  
 अनु यन् पूर्वा अरुन् सन्तु ॥ २ ॥ नि नव्यसीषवरासु धावते ॥ ५ ॥  
 आदिदातार वृणते दिविष्टु भगमिः पपृचानास ऋजते ।  
 दवान् यत् कृता मज्जना पुरुषानां मत्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥  
 विषदस्थान्तो वातकोदना हारी न धक्का जरणा अनाकृतः ।  
 तस्य पद्मन्दक्षुपः कृष्णजितः ॥ ७ ॥ शुचिजमनो रज आव्यध्वनः ॥ ७ ॥  
 रथा न यतः शिकमिः कृता यामङ्ग भिरुपाभरीयते ।  
 आदस्यते कृष्णासो दास सूरयः शृषस्येव त्वपथदोदते वयः ॥ ८ ॥  
 त्वया ह्यग्रे वरुणो धृतवतो मित्रः शाशत्रं अयमा सुदानवः ।  
 यन्सीमनु कतुना विश्वधा विभुरान्नतोमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥  
 त्वमग्रे शशमानाय सुन्यते रत्नं यविष्ठ दवतातिमन्वसि ।  
 तं त्वा नु नव्यं सहस्रं शुभं नय भगं त्वकारे मरिज्ज धामदि ॥ १० ॥

५ मातृर्गर्भाशयः दिशाओंक बायु आग्न, दिश्वारकत हवा, वह है; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हींके मध्य बैठते हैं । स्थापन-समयमें, पहिले, जो सब औषध प्रोक्षित हुए थे, उनके ऊपर आग्न चढ़ गये थे । इस समय अभिनव और निकृष्ट औषधोंके प्रति दौड़ने हैं ।

६ इविका सम्पर्क करनेवाले यजमान, धृत्वाकानिवासियोंकी प्रसन्नताके लिए, होम-सम्पादक अग्निका वरण करते और राजाकी तरह उनका आराधन करते हैं । अग्नियज्ञोंकी स्तुति-वाक्य और विश्व-रूप हैं । वह यज्ञ-सम्पन्न और बलशाली हैं । वह देवा और स्तुति-वाक्य अपने प्रजापति — देवोंके लिये अन्नकी कामना करते हैं ।

७ जैसे ब्रह्मवादी विद्वत् आदि बड़ा समझते हैं, वैसे ही वायु द्वारा परिचालित यज्ञनीय अग्नि चारों ओर व्याप्त होते हैं । अग्नियज्ञ-जनों के उनका जन्म पवित्र है, उनका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्गमें कुछ भी स्थिरता नहीं है । इसीलिये उनके मार्गमें अन्तरीक्ष स्थित है ।

८ रस्सीमें धंधे रखी तरह अपने ऊपर उठनेकी सहायतामें अग्नि रुध्रीको जाते हैं । उनका मार्ग एकबारगी ही कुम्भवर्ण है, वह काष्ठ जलाने हैं । ओरकी तरह अग्नि के उद्गम में जड़ सामनेमें चिड़ियां भाग जाती हैं ।

९ अग्निदेव तुम्हारी सहायतामें धरण भयना पराभवा करतें, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्थमा हानशील होते हैं । जैसे रथका पहिया डोंड़ोंका व्यास करके चलता है, उसी प्रकार अग्निने यज्ञ-कार्य द्वारा विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबके पराभवकारी होकर जन्म ग्रहण किया है ।

१० युवा अग्न, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिये अभिषेक करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य लेकर देवोंके पास विस्तार करते हो । हे गरुण, महाधन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो । स्तुति-कालमें इस राजाकी तरह तुम्हें स्थापित करते हैं ।

मस्मे रयिं न स्वर्थं दमनसं भगं नक्षं न पपुनसि भर्णसिम् ।  
 रश्मीं रिव यो यमति जन्मनी तमे देवानां शंससत आ न सुकनुः ॥११॥  
 उत तः सुद्योन्माजीगश्चो तोता मन्दः शुणवकाद्रथः ।  
 स नो नेपन्नेपतमैरसुरेभिर्दाम सु चेतं वस्यो अन्ध ॥१२॥  
 अस्ताव्यग्निः शिमोवद्विरकः आम्रज्याय प्रवरं दधानः ।  
 अग्नी च ये मधवानो धयं च मिहं न सूर्यो अतिनिष्ठतन्युः ॥१३॥

—\*—\*—\*—

॥१२ सूक्त । आसी देवता ॥\* श्रुतुपु और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्न आवह देवाँ अद्य यतस्तु च ।  
 तन्तुं तनुष्व पृथ्वीं सुतस्मोऽग्नय दाशणे ॥१॥  
 घृतवन्तसृष्टमासि भधूमन्तो तन्नपात ।  
 यज्ञं हि प्रय सावतः शशमानस्य दाशणः ॥२॥

११ अग्नि, तुम जैसे हमें अत्यन्त पयाजनीय और प्रिय । जो देवता, जैसे ही उत्साही, जन-प्रिय और विद्या-व्ययनमें चतुर पुत्र दो । जैसे अग्नि अस्त्र कि जगत् (विस्तृत जगत्) वर ही जगत् (आकाश और पृथिवी) का विस्तार करते हैं । हमारे यतमें यज्ञ-कर्ता अग्नि देवों की स्तुति का विस्तार करते हैं ।

१२ अग्निदेव प्रकाशहीन, दूतमात्रे उपासे अयुक्त, गीत, आनन्दमय, संदेह रहित, अप्रतिशतशक्ति और प्रगल्भ-स्वभाव हैं । क्या वह हमारा वृत्त न सुने ? क्या वह न पृथ्वी का कर्माकार अवायस लम्प और अभिर्वाञ्छित स्वर्गकी ओर ले जाये ?

१३ हव्य-प्रदान आदि कर्मा और पुत्र-व्यापक पन्त्र द्वारा हमने अग्नि की स्तुति की है । अग्नि अच्छी तरह दीसिमे युक्त हुए हैं । साथे उपस्थित योग और हम जो मूर्ख भेदक अज्ञ उत्पन्न हैं । वैसे ही अग्नि को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं ।

—\*—\*—\*—

१ हे समिद्ध नामके अग्नि, जो यजमान स्तुति करता चले हुए है, उसके लिये आज तुम देवों को बुलाओ । जिस हव्यदाता यजमानने होमका अभिषेक किया है उसकी आज्ञा से अपने पण्डितों को यज्ञ विस्तार करो ।

२ तनुपात नामके अग्नि, मेरे समान जो जन शक्ति । जो मेरा अस्त्र न सृष्टारी स्तुति करता है, उसके वृत्त और मधुसे सयुक्त यज्ञमें आकर यज्ञ-समाप्ति पर्यन्त हो ।

॥ आसी शब्दका अर्थ आग का रूप । इन्द्रादि एक तन्त्रों इस सूक्त देवता सा आग ही हैं ।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वः यज्ञं मिमिक्षति ।  
 नाराशंसस्त्रिगदिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३॥  
 इन्द्रो अग्न आबहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।  
 इयं हित्वा मतिर्माच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४॥  
 स्तृणानासो यतस्त्रुचो बहिर्यज्ञो स्वध्वरे ।  
 वृक्षं देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥  
 विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै दधेभ्यो महीः ।  
 पावकासः पुरुषृहो ह्यगो देवो रसश्चतः ॥ ६ ॥  
 आभन्दमाने उपाके नकोपासा सुपेशसा ।  
 यज्ञो क्रतुरय मातरा सीदतां बहिरासुमन् ॥ ७ ॥  
 मन्द्रजिह्वा जुगुर्गुणी होतारादैव्या कवी ।  
 यज्ञं नो यक्षताममं सिद्धमद्य दिविस्पृशाम ॥ ८ ॥  
 शुचिर्देव्यर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।  
 इत्या ऊरुरक्षती महो बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

३ देवोंमें स्वच्छ, पावक, अद्भुत यतिमान और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि यज्ञोक्ते आकर हमारे यज्ञको मधुसे मिश्रित करें।

४ अग्नि, दुःशारा नाम इन्द्र है। तुम चित्र और प्रिय इन्द्रको यहाँ ले आओ। सुजिह्व, तुम्हारे लिये मैं स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५ एक धारण करनेवाले क्रान्ति-लोग इस यज्ञमें अग्नि-रूप कुशको फेलाते हुए इन्द्रके लिये विस्तारण और सुख-साधक गृह बनाते हैं। इस घरमें देवता लोग रुदा रामदागमन करेंगे।

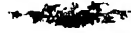
६ अग्निरूप यज्ञका दरवाजा खोल दो। देवोंके आनेके लिये यज्ञ-द्वार खोल दो। ये दरवाजे यज्ञ-वर्द्धक, यज्ञ-सोचक बहुत लोगोंके लिये श्लाघ्य और परस्पर कस्तुरज हैं।

७ सबके स्तुति पात्र, परस्पर स्निहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आकर विस्तृत कुशोंके ऊपर बैठें।

८ देवोंकी उन्मादक शिक्षामे रुद्र, रुदा स्तुतिशील यज्ञमानोंके मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सिद्धि-प्रद और स्वर्गरूपी यज्ञका अनुष्ठान करें।

९ शुद्ध, देवोंकी मध्यस्थ, होम-स्थापिका भारती (स्वर्गरथ वाक्), इला (पृथिवीस्थ वाक्) और सरस्वती (अन्तरिक्षस्थ वाक्) — ये अग्निकी तीनों मूर्तियाँ यज्ञके उपयुक्त होकर कुशोंपर बैठें।

तन्नस्तुरीपमद्गु 'पुरुवार' पुरुत्मनः । त्वष्टा पोषाय विष्यन्तु गये नामा नो अस्मयुः ॥ १० ॥  
 अथसृजन्नुपत्मना देवान यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुपूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥  
 पूषणवने मरुत्वने विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेणसे हव्यमिन्द्राय कहेन ॥ १२ ॥  
 स्वाहाकृताव्यागश्च प हव्यानि वोतये । इन्द्रागहि श्रुवा हवं त्वां हवन्ते अवचरे ॥ १३ ॥



१४३ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्रतव्यसीं नव्यसीं च तिमग्नेये वाचो मतिं सहस्रः सूनवे भरे ।  
 अपान्नपाद्यो वसुभिः सद्प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥  
 सजायमानः परमे व्योमन्याविराग्निरभदन्मातृश्वने ।  
 अस्य कृत्वा समिधानस्य मज्जना प्र यावा शोचिः पृथिवी अरोचयन् ॥ २ ॥  
 अस्य त्वेवा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।  
 मातृक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोभने रेजन्ते अमलन्तो अजराः ॥ ३ ॥

१० त्वष्टा हमारा मित्र है । वह स्वयं अरुहो तरु, हमारे पुष्ट और मृदुलके लिये, मेघके नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियोंकी भलाई करनेवाला जल बरमावे ।

११ हे अग्निरूप वनस्पति, इन्द्रानुसार श्रुतिवर्कोंकी भजकर, गव्य देवोंका यज्ञ करो । पृथिव्यान् और मेघावान् अग्नि देवोंके बीच हव्य भेजे ।

१२ स्वाहा और मरुतांसे युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्रको लव्यवर, हव्य देवोंके लिये, अग्निरूप स्वाहा त्वष्टा उच्चारण करो ।

१३ इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य त्वा के लिये आया । श्रुतिवत् लोग यज्ञमें तुम्हें बलाते हैं ।

१ अग्नि बलके पुत्र, जलके नसा, यज्ञमानके प्रियतम और होमके सम्पादक है । वह, यथासमय, घनके साथ वेदीपर बैठने है । उनके लिये मैं यह नया और शुभफल वस्त्र के यज्ञ आरम्भ करण और स्तुति-पाठ करता हूँ ।

२ परम आकाश-देशमें उत्पन्न होकर अग्नि मध्यमे पहले मातरिण्या या वायुके पास प्रकट हुए । अनन्तर इन्धन द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म द्वारा उनकी दोहिले यावत् पृथिवी प्रदीप्त हुई ।

३ अग्निकी दोहिले सबका नाश नहीं होता । सहज अग्निके साथ स्फूर्ति-का चारों ओर प्रकाशमान और विलक्षण बलवाली है । रात्रिका अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत और अज्ञान-शिरसाएँ कभी नहीं काँपती ।

यमेगिरे भृगवो विश्ववै सं नामा पृथ्व्या भुवनस्य रज्ज्वना ।  
 अग्निं तं गीर्माणि नृाह स्तः आदमं य एकोवसोः करुणा न राजति ॥ ४ ॥  
 न यो वीर्यं कृतामिदं मनः सेनेव स्फुट्टा दिव्या यथाशनिः ।  
 अग्निर्जम्भोऽस्तीति तेरति मर्वाति योधा न शत्रून् तस्य वनान् दृष्ट्वेति ॥ ५ ॥  
 कुक्षिन्वो अग्निरुक्षस्य वीरस्तद्वसुधुविद्वसुभिः काममावत ।  
 चोदः कुक्षिन्तुज्यात् सानये धियः शुक्लप्रतीकं तावत्तथा वृणो ॥ ६ ॥  
 घृतप्रतीकं न ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न सविध न ऋज्वते ।  
 इन्धानो अको विद्वेषु दीद्वल्लुक् णां सुदुनो यं नो धियम् ॥ ७ ॥  
 अप्रपुच्छन्तस्तुच्छाग्निर्गने पायार्जनं दातुनिः पाह जग्मः ।  
 अदकः अग्निरुपतिभिः स्तेनैर्नापि पाहः पतिपाहि नारा ॥ ८ ॥



१८४ सूक्त । अग्नि देवता । अग्नौ छन्दः ।

एतत् प्रहोता वनमग्नं मायया चार्वा इन्धानः शुक्लपेशं धियम् ।

अग्निं सूचः क्रमं दातुणां वृणो यथा नो धियं पाह जग्मः पतिपाहि नारा ॥ ८ ॥

४ भृगुवंशोत्पन्न यजमानाग्निं अरुणं स्यात्तस्य, जोशह, वीर्यं दिव्य, उच्च दिग्गज जिन स्वधनधरा आरुणक स्वरूप विद्या है, उन्हें अपने वरमें ले करके मर्त्य कर्मों को अरुण प्रभाव से वीर वरुणका तरह पागं धनोक्त हेतुपर है ।

५ जम्भे वायुके शब्द, पराक्रमी राजाका मना का प्रचलन, वीर्य का अङ्ग अङ्ग प्रत्ययण लक्ष्मी कर सकता, उसी प्रकार जिन अग्निका कोई निवारण नहीं कर सकता, वही अरुण वीर्यका तरह, तीन दिग्गज शत्रुओंका भक्षण और विनाश तथा वनोंका दहन करते हैं ।

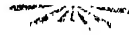
६ अग्निदेव बार-बार हमारे उक्त स्मार्तकों सुननेका इच्छा करे । धनशाला अरुण, धन द्वारा बार-बार हमारा इच्छा पूरे करे । यज्ञ-प्रवक्तक आरुण, यज्ञ-लाभके लक्ष्य, हमें बार-बार प्रार्थित करे—मैं ऐसा स्तुति द्वारा सुदृग्य अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

७ तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्निका, मित्रको तरह, जाकर अभूषित किया जाता है । अच्छी तरह समकक्षी ज्वालावाले अग्नि, यज्ञ स्थलमें, प्रदीप्त होकर हमारा विशुद्ध यज्ञ-वश्यक बुद्धिको प्रबुद्ध करते है ।

८ अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अर्वाहृत, माङ्गलिक और सुखकर आश्रय देकर, हमारा रक्षा करो । सर्वश्रेष्ठयाचनोय अग्नि, उत्पन्न होकर तुम हिंसा-रहित अनेक और परानिष्ट भावों हमारा रक्षा, भली भाँति, करो ।

१ बहुदशी होता, अपने उच्च और शोभन बुद्धिके बल, अग्निको सेवा करनेके लिये, जा रहे हैं और प्रवक्षिणा करके सुक कारण कर रहे हैं । ये सुक अग्निमें प्रथम आहुति देते हैं ।

अमोघतस्तु दाहना अनूपत योनौ तेष्वस्य सदाने परीक्षिताः ।  
 अपामुपस्थे विभृता यदावसदधस्वधा अध्यय्याभिगीयते ॥ २ ॥  
 युयुपतः सवयसा नविद्वपुः समानमर्थं चित्तचिन्ता मिथः ।  
 आदौ भगो न हव्यः समस्मदावोहर्तुं र मीनस्मदंस्तु सार्धः ॥ ३ ॥  
 यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोक्षसा ।  
 दिवाननकं पालतो युवाजनि पुरुवरन्नजरोमा नृपायुभा ॥ ४ ॥  
 तमा हिन्वात घातयो दशविशो देवं मर्तास उतये हवामहे ।  
 धनोर्गधि प्रयेत आस ऋतवत्यन्विज्जिद्विर्वेयुना नवाधित ॥ ५ ॥  
 त्वं ह्यने दिव्यस्य राज्ञोऽस्म त्वं पाथिवस्य पशुपा इव तमना ।  
 एनीत एते बृहता अभिधिया हिरण्ययो वक्त्रो बहिर्गशाने ॥ ६ ॥  
 अग्ने जुषस्व प्रतिहयतद्वचा मन्द स्वभाव ऋतजात सुकता ।  
 यो विश्वतः प्रत्यङ्मुखा दशता रत्नैः सन्दृष्टौ पितुर्मा इव क्षयः ॥ ७ ॥



२. सूर्योत्पत्तिमें जल और आग दोनों जल और आग के पदार्थों के स्थान सूर्य-लोकमें, फिर नहीं होकर, उत्पन्न होते हैं। जिस समय जिसकी गोदमें, आदित्य जाय, तब रहते हैं, उसी समय लोग अमृतमय जल पीते एवं अग्नि, विद्युत्, अग्निके रूपमें, मिलते हैं।

३. सरान अवस्थावाले हीना और लज्जित, एक ही पुरुषजनकी सिद्धिके लिये, परम्परको सहायता देकर अग्नि के शरीरमें अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अन्तर्गत में सूर्य अपनी किरणें फैलाते हैं अथवा सारथि लगाए, ग्रहण करता है, वैसे ही आदित्यकी अग्नि प्रजाली दी हुई घृणधारण ग्रहण करते हैं।

४. समान अवस्थावाले, एक दूजमें दूसरेमाने जो पुरुष कार्यमें नियुक्त हैं नों मनुष्य जिन अग्निकी, वित-रात, प्रजा करते हैं, वह अग्नि चाहे दूध, दही, तह, गुण, धन, दानों मनुष्योंका द्रव्य संक्षण करते हुए, अजर हुए हैं।

५. दसों अंगुलियों, आपसमें अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्निको प्रसन्न करती हैं। इस मनुष्य हैं, अपनी रक्षाके लिये अग्निका बुलाते हैं। जिन मनुष्यने वाज निकरता है, वैसे ही अग्नि भी स्फूर्तिपूर्ण भोजते हैं। चारों ओर अवस्थित यजमानोंको नयी स्तुतिको अग्निदेव धारण करते हैं।

६. अग्नि, पशु-रक्षकोंकी तरह, पशु, अपनी रक्षाके, स्वर्गीय और पृथिवीय लोगोंके ईश्वर हो; इसलिये महती पंचययवती, हिरण्यमयी मंगल-क्षय-कारिणी पूजनणी और प्रसन्ना छायापृथिवी तुम्हारे यजम आती हैं।

७. अग्नि, हम द्रव्यका उपभोग करो; अपना स्वभाव सुनकर ही इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञके लिये उत्पन्न तथा यज्ञशाली अग्नि, तुम सारे जगत्के अनुकूल, सर्वत्र दर्शनाय, आनन्दोत्पादक और यद्यपि-अन्न-शाली धर्मिकी तरह सबके आश्रय-स्थानक हो।

१४५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तं पृच्छतास जगामासवेदस चिक्षित्वा ईयते सान्वीयते ।

तस्मिन्सन्ति प्रक्षिपतस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

तमिष्टृच्छति न सिमो विपृच्छति स्वेनेव धीरो मनसः यदग्रभीत् ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचांस्य कन्वा सन्तते अप्रद्वपितः ॥ २ ॥

तमिष्टृच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीविश्वान्येकः शृणवद्रचांसि मे ।

पुरुषैस्ततुरियंशसध्नोच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त संगमः ॥ ३ ॥

उपस्थायं नरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।

अभिश्चान्तं मृशते नान्यो मुदे यदी गच्छन्त्युशतीरपिष्ठिवम् ॥ ४ ॥

स ई मृगो अप्योवनगुरुपत्वच्युपमस्यां निधायि ।

व्यववीद्वयुना मर्याभ्यामिर्विद्वां ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥



१ अग्निसे पूछो । वही जाता है, वही गय है, उन्हींका पालन है, वही याग है, वही शीघ्रगन्ता है, उन्हींके पास शासन-प्राप्तता है, अभीष्ट वस्तु भी उन्हींके पास है । वही अन्न, बल और बलवान्के पालक है ।

२ अग्निको ही सारा संसार जानना चाहता है; वह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है । अपने मनमें धीर व्यक्ति जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और परकी वान नहीं सह सकता । इसीलिये इम-विहीन मनुष्य अग्निका आश्रय प्राप्त करता है ।

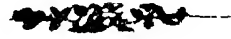
३ सब जुहू अग्निको लक्ष्य कर जाते हैं । मनुष्यों जो अग्निको पूज्य हैं । एक अग्नि मेरी समस्त स्तुतियां सुनते हैं । वह बहुतेके प्रवक्तेक, सारथिता और यज्ञके स्यान्ता है । इनकी रक्षा-शक्ति अद्वितीय है । वह शिशुकी तरह शान्त और यज्ञके अनुष्ठाना है ।

४ जभी यजमान अग्निको उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं । उत्पन्न होकर ही दूरत योजनीय वस्तुके साथ मिल जाते हैं । अग्निका आनन्द-वर्द्धक कर्म शान्त यजमानके समतोषके लिये अभीष्ट फल देता है ।

५ अन्वेषण-परायण और प्राप्त्य वनके गामी अग्नि, त्वचाकी तरह, इन्धनके बीच स्थापित हुए हैं । विद्वान्, यज्ञ-ज्ञाता और यथार्थवादी अग्निने मनुष्योंको विशेष करके, यज्ञानुष्ठानके समय, ज्ञान प्रदान किया है ।

४६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्रिमूर्जानं समरग्निं गृणीषेन्नमग्निं पित्रोरुपस्थे ।  
 निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचना परिवांसम् ॥ १ ॥  
 उक्षामहौ अभिववक्ष एने अजरस्तस्याधित ऊर्तिर्हृष्वः ।  
 कन्याः पदो निदधाति सानौ रिहन्त्यूधो वरुपासा अस्य ॥ २ ॥  
 समानं वत्समभिसञ्चान्तां विष्वग्धनू चिचरनः सुमेके ।  
 मनपवृज्यां अध्वनो मिमाने विश्वान्केतौ अधि महो दध्नाने ॥ ३ ॥  
 धीरासः पद कवयो नयन्ति नानाहृदा रक्षमाणा अजुर्यम ।  
 सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाः रेभ्यो अभवन् सूर्यो ननु ॥ ४ ॥  
 विद्वक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्य ईडेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।  
 पुरुत्रा यदभवन् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥



१ पिता-माताका गोदमें अवस्थित, सवन त्रय-रूप मस्तक-त्रयमे युक्त, सप्त छन्दोरूप सप्त रश्मियोंसे युक्त और विकलता-शून्य अग्निही स्तुति करो । सर्वत्र गामी, अविचलित, प्रकाशमान और अभीष्टवचक अग्निका तेज चारो ओर व्याप्त हो रहा है ।

२ फल-दाता अग्नि, अपनी महिमामे, छावा-पृथिवीको व्याप्त किये हुए हैं । अजर और पूज्य अग्निदेव हमारी रक्षा करके अवस्थित हैं । वह व्यापक पृथिवीके सानु प्रदेश या वेदीपर अपने पैर फैलाये हैं । उनकी उज्ज्वल ज्योति अन्तरीक्षको चाटती है ।

३ सेवा-कार्यमें चतुर दो ( यजमान और उसकी पत्नीके स्वरूप ) गाय एक बछड़े ( अग्नि ) के सामने जाते हैं । वह निन्दनीय विषयमे शून्य मार्गका निर्माण और सब तरहका बुद्धि या प्रज्ञा, अधिक मात्रामें, धारण करती हैं ।

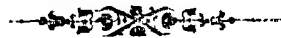
४ विद्वान् और मेधावी लोग अज्येय अग्निको अपने स्थानपर स्थापित करने हैं, बुद्धि-बलसे, नाना उपायोंसे, उनकी रक्षा करते हैं । यज्ञ-फलका भोग करनेको इच्छामे कन्दरावः अग्निको शुश्रूषा करते हैं । उनके पास, सूर्यरूपमें, अग्नि प्रकट होते हैं ।

५ अग्नि चाहते हैं कि, उन्हें इसी दिशाएँ देख सकें । वह सदा ज्योतील और स्तुति-योग्य हैं । वह सुद्ध और महान्—सबके जीवन-स्वरूप हैं । घनवात् और सबके दर्शनीय अग्नि, अनेक स्थानोंमें, विशुद्ध-समान वज्रमानोंके चित्तुपुष्प हैं ।



१४७ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कथा ने अग्ने शुचयन्त आयं देवाशुर्वाजेभिराशुपाणाः ।  
 तमे यत्तांके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ॥ १ ॥  
 बोधामे अस्य वचसो यन्निष्ठ मेहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।  
 पीर्यति त्वो अनुत्वा गृणाति वन्दारुसने तन्वं धन्दे अग्ने ॥ २ ॥  
 ये पायवो भामतेयग्ने अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।  
 ररन्न तन्मस्वक्तो विश्ववेदादिप्सन्त इन्द्रिणवो नाहवेभुः ॥ ३ ॥  
 यो नो अग्ने अरिर्ना अघायुररातोवा मर्त्यति ह्येन ।  
 मन्त्रो गुरुः पुनरन्तु त्वो अस्मा अनुमन्त्रोऽहं तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥  
 उतवागः स्पहस्त प्रविदामर्तोमर्तं मर्त्यति ह्येन ।  
 अतः पाति स्तवमान स्तवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय घायोः ॥ ५ ॥



१ अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शेषक शिवाणें देते अन्तके साथ आयु प्रदान करती हैं, जिसमे पुत्र, पौत्र आदिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर सतमान लोग याज्ञिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२ हे युवा और अन्नवान अग्नि, मेरी सम्पत्ति पुत्र और अन्न तरत पदार्थदिन स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारी हिंसा करता और कोई तुम्हारा पुत्र हारा है। मैं ना तुम्हारा वाचक हूँ। मैं तुम्हारी अर्पिकी पूजा करता हूँ।

३ अग्नि, तुम्हारी जित प्रभु और पास्क रजिदपति समयाके पुत्र और अन्धे दीर्घतमाको अन्धत्वसे बचाया था, इन सुखकर शिवाओंकी सम्पत्तिका रूप रक्षा करो। विवादकृ शत्रुण हिंसा न करने पावें x

४ अग्निदेव, जो हमारे लिये पात चाहते हैं, अन्धत्वान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक, दो प्रकारके मन्त्रों द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें पत साधन और शुक्रभाषणों और दुर्गाण्य द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५ बलके पुत्र अग्नि, जो अनुपयुक्त नान-वृद्धर क्षीर अन्न मन्त्रोंनि अनुपयुक्त निन्दा करता है, मैं विनय करता हूँ, हे स्तुयमान अग्नि, उसके हाथों मेरी रक्षा करो। हमें पापों से बच पावें।

x सायणके मतसे दीर्घतमाको माया से माया से प्रवृत्तमानने उर समर रण किया, जित समय दीर्घतमा गर्भमें थे। दीर्घतमाने वृद्धमर्तिको, वृद्धमर्तिके भयसे, मर गया। वृद्धमर्तिके दीर्घतमाको अन्धा होनेका शाप दिया और अग्निने स्तुति करनेपर दीर्घतमाका अन्धत्व दूर किया।

१४८ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मयीघदीं विष्टो मातृश्रिता लोतां विशाप्सं लिङ् देवम् ।  
 नि यं दधुर्मनुष्यास्तु विश्वमर्णं चित्रं नृपुं वि सावाम् ॥ १ ॥  
 ददानमिन्न ददमन्नं मन्म मिर्क्ष्यं मम तस्य चाकन ।  
 जुषन्त विश्वान्यस्य वर्मोपरुति प्रमाणस्य कारोः ॥ २ ॥  
 नित्येकिः नृपुं सदेने जगृध्र प्रजागतादिधिरे यशियासः ।  
 प्रसूनयन्तगृ भयन्त इष्टा श्वासा न रथो रथः शरणः ॥ ३ ॥  
 पुष्पाण दस्मा न रण नि जग्मे । निन्ने वन आर्ति भावा ।  
 आदस्य वाता अनुवाति शोचरभूर्न शयमिन्न गनु नृ ॥ ४ ॥  
 न यं रिपवो न रिपण्यो रम सन्तं रेपणा रेपन्ति ।  
 अन्था अपश्यानदमन्नमिख्या भिर्याक इ प्रोताशो अगक्षन् ॥ ५ ॥

१४९ सूक्त । अग्नि देवता । धिराट् छन्द ।

महः सराय पृषते पतिर्दन्निन इतरुष लसुनः पद आ । उध्रन्तमद्रयो विधन्ति ॥ १ ॥

१ वायुने, काठके भीतर घुमकर, विविधरूपधाला, सारे देवाक कायम नपुण और देवाका बुलानवाले आग्निको बढ़ाया । पहले देवोंने आग्निका, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यको तरह, मनुष्यों और श्रुतिवक्ताको यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया था ।

२ आग्निका सन्तोषदायक द्रव्य देनेसे ही शत्रु लोग सुमे नष्ट नहीं कर सकेगे । अग्नि मेरे द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदिके अभिलाषी हैं । जिस समय स्तोता आग्निकी स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिव्य द्रुप द्रव्यका ग्रहण करते हैं ।

३ याज्ञिक लोग जिन आग्निको 'रथ' और 'नृ' कहते जाते और स्तुतिके साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं आग्निक श्रुतिवक्ता, शीघ्रगामी और रथ-निबद्ध अश्वकी तरह, यज्ञके लिये बनाया ।

४ विनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षाका अपनी शक्तियों या दक्षिण नष्ट करके विभिन्न विभिन्न शोभा प्राप्त करते हैं । इसके अनन्तर जैसे धनुर्धराक पासमें, वगैरे साथ, तौर जाता है, वैसे ही प्राप्तादन वायु शक्तिके अनुकूल होकर बढ़ते हैं ।

५ अरणिके गर्भमें अवस्थित जिन आग्निको शत्रु या अन्य हिंसक दुष्ट नहीं दे सकते, उन्हीं भी जिनका माहात्म्य ही नष्ट कर सकता, उन्हींकी, आविर्भाव भीक न यजमान, विशेष कृतज्ञता देकर, रक्षा करते हैं ।

१ महाघनके रूपामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करने, दुष्ट, वगैरे दम घुमाए सामने जा रहे हैं । प्रभुओं भी प्रभु अग्नि वेदका आश्रय करते हैं । प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्निको सेवा करते हैं ।

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः । प्रयः सस्त्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥  
 आ यः पुरं नः मिर्णामिर्मादेदत्यः कर्त्तिमन्यो नार्वः । सूर्यो न रुक्ताऽऽस्तात्मा ॥ ३ ॥  
 अभि द्विजन्मा श्रीरोचनानि विश्वा रजसि शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपांसधर्ये ॥ ४ ॥  
 अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वाद्ये वार्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

१५० सुक्त । अग्नि देवता । उष्णिक् छन्द ।

पुरुत्वा दाश्वान्वोच्चैरिररने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥  
 व्यनिनस्य धनिनः प्रतोपे चिदरुषः । कदाचन प्रजिभतो अदैवयोः ॥ २ ॥  
 स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो ब्राधन्तमो दिवि । प्रप्रत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

७३ मन्त्रः ।

२ मनुष्यों की तरह, जो अग्नि, यातापृथिवी की ओर उत्पादक है, वह यशःशाली होकर वर्त्तमान है एवं उन्हींसे जीव लाग सृष्टिका आस्वादन प्राप्त करते हैं । उन्होंने गर्भाशयमें बैठकर सारे जीवोंकी सृष्टि की है ।

३ अग्निदेव मेधावी है; वह अन्तरीक्षमेंवहारी वायुकी तरह विभिन्न स्थानोंमें जाने हैं । उन्होंने दस छप्पर वेदियोंकी प्रदोष किया है । नातारूप अग्नि, सूर्य की तरह, सृष्टोभित्वांति है ।

४ द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकप्रथका प्रकाश करने और सारे रज्जनाम्नक संसारका भी प्रकाश करते हैं । वह रोवकि आह्वान-वर्त्ता हैं । जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान है ।

५ जो अग्नि द्विजन्मा है, वही होता है; वही हव्य-प्राप्ति की अभिलाषामें सारा वरणीय घन धारण करते हैं । जो मनुष्य अग्निको हव्य देता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्त करता है ।

१ हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ; इसलिये तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनाएँ करता हूँ । अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ । अग्निदेव, महान् स्वर्गमें वरमें जैसे सेवक है, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ ।

२ अग्निदेव, जो घनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता वा उत्तमरूप हवनके लिये दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्यक्ति देवोंकी स्तुति नहीं करता, उन देवशुभ्य दोनों व्यक्तियोंका घन नहीं देना ।

३ हे मेधावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्गमें चन्द्रमाकी तरह सबका आभूषण होता है; प्रधानोंमें भी प्रधान होता है । इस लिये हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे ।

१५५ सूक्त । मित्रावरुण देवता । जगती छन्द ।

मित्रं न यं शिष्या गोषु गत्यवः स्वाध्यायो विदधे अप्सु जीजनन ।

अरेजेतां गोदसी पाजस्या गिरा प्रतिप्रियं यजतं जनुगामनः ॥ १ ॥

यज्ञस्यद्वां पुरुमीहस्य सोमिनः प्रमित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।

अध्रकृतं विदतं गातुमर्चन उत श्रुतं वृषणा पस्यावतः ॥ २ ॥

आ दां भूषन् क्षितयो जन्मगोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षमे महे ।

यदीमृताय भरथो यदर्वते प्रहोत्रया शिष्यावीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

प्र सा क्षिनिरसुरयामहिप्रिय ऋतावानावृतमाघोषयो बृहत् ।

युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युपयुञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥

महा अत्र महिनावारमृण्वथो रेणवस्तुज आसन्नन्धेनवः ।

स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमानिध्रुव उपसस्तकवीरिव ॥ ५ ॥

अ वामृताय केशिनीरनूपत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चयः ।

अव तमना सृजतं पिन्धनं धियो युवं विप्रस्य गन्मनामिदज्यथः ॥ ६ ॥

१ गो घनाभिलाषी और स्वाध्याय-सम्पन्न यजमानों गोघनकी प्राप्ति और मनुष्योंको रक्षाके लिये, मित्रकी तरह, प्रिय और यजनीय जिन अग्निको अन्तरीक्ष-भव जलके मध्यमें कर्म द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और बृद्धिसे छावा-पृथिवी कम्पित होती है ।

२ चूँकि मित्रवत् अन्विकर्त्ते तुम्हारे लिये अभीष्टशायी और अपने कर्ममें समर्थ सोमस पारग किया है, इसलिये पूजके घर आओ । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम गृहपतिका आह्वान सुनो ।

३ अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग, महाबलकी प्राप्तिके लिये, छावा-पृथिवीसे तुम्हारे प्रशंसनीय जन्मका कीर्त्तन करते हैं; क्योंकि तुम यजमानके यज्ञफलरूप मनोरथको देते हो तथा स्तुति और हव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो ।

४ हे पर्याप्त-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिये प्रियतम है, वह उत्तम रूपसे सजायी गयी है । हे सस्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञकी प्रशंसा करो । दुग्ध आदिके द्वारा शरीरमें बल-दानके लिये, समर्थ घेनुकी तरह, तुम दोनों क्षिप्राल स्रालोकके अग्रभागमें देवोंके आनन्दोत्सादनमें समर्थ हो और विविध स्थानोंमें आरम्भ किये कर्मका उपभोग करते हो ।

५ मित्रावरुण, तुम अपनी महिमासे जिन गायोंको वरणीय प्रदेशमें ले जाते हो, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता । वह दूध देती और गोशालामें लौट आती हैं । चौरधारी मनुष्योंकी तरह वह गायें प्रातःकाल और सायंकालकी उपरिस्थित सूर्यको ओर देखकर चीत्कार करती हैं ।

६ मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञमें यज्ञभूमिको सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केशकी तरह अग्निकी शिखा, यज्ञके लिये, तुम्हारी पूजा करती है । तुम निम्न मुखसे वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्मको सम्पन्न करो । तुम्हीं मेघावी वज्रमायकी मनोहर स्तुतिके स्वामी हो ।

यो वा यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।  
 उपाहतं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छागिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥  
 युवां यज्ञैः प्रयमाणो भिरञ्जत ऋतावाना मनसो न द्युकिषु ।  
 भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोदृष्यता मनसा रेवदाशः ॥ ८ ॥  
 रेवद्वदो दधाथे रेवदाशा ये नरा मायाभिरित ऊति माहिनम् ।  
 न वां द्यावो हभिर्नोति सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥



१५२ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युधं वस्त्राणि पीयसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।  
 अवातिरतमनुतानि विश्वरूतेन मित्रावरुणा सचेये ॥ १ ॥  
 एतच्चनत्वो बिचिकेत देवां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋधावान् ।  
 त्रिरश्रि हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदोऽ प्रथमाऽमजूर्धन् ॥ २ ॥

७ जो मेधावी, होयानिष्पादक और गताहर यज्ञिके साधनने संयुक्त यजमान, उन्नत लिये, तुम्हारे उद्देश्य स्तुति करते हुए, इव्य प्रदान करता है, उन्नी बुद्धिवाली यजमानके लिये गायन करा। यज्ञको कामना करो। हमारे ऊपर अनुग्रह करनेकी अभिलाषामें हमारी स्तुति स्वीकार करो।

८ हे सत्यवादी मित्रावरुण, वेम दृष्टिद्वारा प्रतीत करनेके लिये पहले दायका प्रयोग करता होता है, वेम ही तुम्हें यजमानलोग अन्य देवोंके पहले यज्ञ द्वारा पूजन करने हैं। अथवा चिकित्से यजमानलोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम मनमें दर्प न करके हमारे समुद्र कार्यमें उपस्थित होओ।

९ मित्रावरुण, तुम घन-विष्ट अन्न धारण करो, पूर्ण यजमान अन्न प्रदान करो। वह बहुत है और तुम्हारे बुद्धि-बलने रक्षित है। शिव वा राक्षसों तुम्हारा देवत्व नहीं रिकता है। न द्याव जो तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियों ही। पणियोंने तुम्हारा दूत भी नष्टा गया।

१ हे स्थूल मित्र और वरुण, तुम तेजोरूप अस्त्र धारण करो। तुम्हारी सृष्टि सुन्दर और दोषरूप्य है। तुम हमारे अद्वयका विनाश करो और सत्यके साथ युक्त होओ।

२ मित्र और वरुण—दोनों ही कर्मका अनुष्ठान करते हैं। दोनों सत्यवादी मन्त्रिय-निपुण, कवियोंके स्तवनीय और शत्रु-हंसक हैं। वह प्रवण्ड करते, चतुर्गुण अस्त्रोंसे सयुक्त होकर, त्रिगुण अस्त्रोंसे युक्तोंका विनाश करते हैं। इनके प्रभावसे देव-निष्ठक पहले ही जोर्ण हो जाते हैं।

अपादेति प्रथमापदतीनां कस्तदा मित्रावरुणादिकेत ।  
 गभोभारं भरत्यान्विदस्य श्रुतपिपत्यं नृत्तं नितारीत् ॥ ३ ॥  
 प्रयन्तमित् परिजारङ्गुनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।  
 अनवपृग्णा वितता वसानं प्रिय मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥  
 अनश्नो जातो अनशोशुर्वा कनिकदन् पतपदूर्ध्वसानुः ।  
 अचित्तं द्रह्मजुषं युधानः प्रमित्रे धाम वरुणं गृणन्तः ॥५॥  
 अ धन्तो मामनेयमवन्वीत्रं ह्यप्रियं पीत्यन्तस्मिपदूधन् ।  
 पितृवो भिक्षेत वयनानि विद्वानासाध्वासन्नदितिपुरुषेभ्यः ॥६॥  
 आ वां मित्रावरुणा दत्यजृष्टि नमसा देवाववसा ववृत्यां ।  
 अरमाक व्रह्म पृतनासु मत्ता अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥

१५३ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजामहे वां महः सजोषा इव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।  
 घृतैर्घृतस्मृ अधयद्रामस्ये अधवयवो न धीनिभिर्भरन्ति ॥१॥

३ मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्योंके आगे पदधन्या उषा आती है—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, यह कौन जानता है ? तुम्हारे या शिवारात्रिके पुत्र सूर्य सत्यकी प्रति और असत्यका विनाश करके सारे संसारका रक्षक बन करते हैं ।

४ हम देखते हैं कि, कन्या या उषाके जार सूर्य क्रमागत चलते हो हैं—कभी भी बैठते नहीं । विस्तृत तेजसे आच्छादित सूर्य मित्रावरुणके प्रियपात्र हैं ।

५ आदित्यके न तो अश्व हैं, न लगाम; पगन्तु वह शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्ता हैं । वह क्रमशः ही ऊपर चढ़ते हैं । संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मोंको मित्र और वरुणके मानकर उनकी स्तुति और सेवा करता है ।

६ प्रीति-प्रदायक गायं विशाल कर्म-प्रिय समताके पुत्रको (मुझे) अपने स्तनसे उत्पन्न दूधसे प्रसन्न करे । वह यज्ञानुष्ठानों जानकर यज्ञमें बचे अन्नको, सुव द्वारा खानेके लिये, मांस और मित्रावरुणकी सेवा करके यज्ञको अर्पणरूपसे सम्पूर्ण करे ।

७ देव मित्रावरुण, मैं, रक्षाके लिये, नमस्कार और स्तोत्र करते हुए, तुम्हारे इव्य-सेवनके लिये उद्योग करूंगा । हमारा महान् कर्म, युद्धके समय, शत्रुओंको परास्त कर सके । स्वर्गीय वृष्टि हमारा रक्षक करे ।

१ हे वृत्स्नाधी और महान् मित्रावरुण, चूंकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्योंसे तुम्हारा पोषण करते हैं; इसलिये हम समान-प्रीति-युक्त होकर इव्य, घृत और नमस्कार द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।

प्रस्तुतिर्वा धाम न प्रयुक्तिर्यामि मित्रावरुणाः सुवृत्तिः ।  
 अनक्ति यद्वा विषयेषु होता सुन्नं वां सुरिष्टृषणावियक्षन् ॥२॥  
 पीपाय धेनुरदितिर्ज्ञाताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।  
 हिनोति यद्वा विद्ये सपर्यन्त रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥  
 उतवां विश्वमवास्वंधो गाव आपश्च पीपश्चत देवीः ।  
 उलोतो अस्य पूव्यः पतिर्वन्वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः ॥४॥

१५४ सूक्त । विष्णु देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

विष्णोर्नुकं वीर्वाणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।  
 यो अस्क भायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रधोरुगायः ॥१॥  
 प्र तद्दृष्टुः स्तवते धीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।  
 यत्पोरुपु त्रिपु विक्रमणेष्वधक्षियंति भुवनानि विश्वा ॥२॥

२ हे मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्यसे केवल यज्ञका प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा तेज प्राप्त करता हूँ । जिस समय सुधी होता तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ करनेके लिये आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वह सुख प्राप्त करते हैं ।

३ मित्रावरुण, रातहव्य नामके राजाके मनुष्य यजमानके होताकी तरह, यज्ञमें सेवा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करनेपर राजाकी धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही, तुम्हारे यज्ञमें जो यजमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दूधवाली होकर आनन्द बढ़ावें ।

४ मित्र और वरुण, दिव्य धेनुर्पु, अग्नि और जल तुम्हारे भक्त यजमानोंके लिये तुम्हें प्रसन्न करें । हमारे यजमानके पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनुका दूध पीओ ।

१ मैं वष्णुके वीर-कार्यका वीर ही कीर्तन करूँगा । उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था । उन्होंने उपरके सत्यलोकको स्तम्भित किया था । उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था । संसार उनकी बहुत स्तुति करता है ।

२ चूंकि विष्णुके तीनों पाद-क्षेपमें सारा संसार रहता है; इसलिये भयंकर, हिंस्र, गिरिशायो और वन्य जानवरकी तरह, संसार विष्णुके विक्रमकी प्रशंसा करता है ।

प्रविष्णवे शूषमेतु मग्म गिरिक्षित अ उरुगायाय वृष्णे ।  
 य इव दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥  
 यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति ।  
 य च त्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥  
 तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देव्यवो मदन्ति ।  
 उरुक्रमस्य स हि बंधुरित्या विष्णोः ण्दे परमे मध्न उन्मः ॥५॥  
 ता वां वास्तून्पुत्रमसि गमध्वै यत्र गानां भूरिशृगाः अयःसः ।  
 अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥६॥



१५५ सूक्त । इन्द्र और विष्णु देवता । जगती छन्द ।

प्रथः पान्तमंधसो धियायने महे शूराय विष्णवे चार्चता ।

या सानुनि पधेतानामदाभ्यामहस्तस्थतुरधतेष साधुना ॥१॥

३ उन्मत्त प्रदेशमें रहनेवाले, अमोघवर्षक और सब लोकार्थ प्रदायित विष्णुको महाबल और स्त्रोत्र आश्रित करें । उन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण नियत लोक-त्रयको तीन बारके पद-क्रमण द्वारा मापा था ।

४ ( जिन ) विष्णुका हास-हान, अमृतपूर्ण और त्रिसंख्यक पद-लोप अन्न द्वारा मनुष्योंको हर्ष देता है, ( जिन्होंने ) विष्णुने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी, अथ लोक और समस्त भुवनोंको धारण कर रखा है । ५

५ देवार्क्षी मनुष्य जिस प्रिय मागको प्राप्त करके दृष्ट होते हैं, मैं भी उसीको प्राप्त करूँ । उस पराक्रमी विष्णुके परम पदमें मधुर ( अमृत आदिका ) क्षरण है । विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं ।

६ जिन सब स्थानोंमें उन्मत्त शृङ्गवाली और शोघ्रगामी गायें हैं, उन्होंने सब स्थानोंमें तुम दोनोंके जानेके लिये मैं विष्णुकी प्रार्थना करता हूँ । इन सब स्थानोंमें बहुत लोगोंके स्तवनाय और अमीष्टवर्षक विष्णुका परम पद यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है ।

१ अथर्वपुंगव, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णुके लिये पीने योग्य सोमरस तैयार करो । वे दोनों दुर्धर्ष और महिमावान् हैं । वे मेवके ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों छर्छिन्नत अश्वके ऊपर भ्रमण करते हैं ।

५ धातुत्रयके कालत्रय अथवा गुण-त्रयका भी ग्रहण किया जा सकता है ।



त्वेषामस्था समरणं शिर्मावतीरिन्द्राविष्णू सुतपावामुच्यते ।  
 या मन्याय प्रतिध्रयमानमिन् कृशानोरस्तुरसत मुख्ययः ॥२॥  
 ता इ वर्धति महस्य पौंस्यं निमातरा नयति रेतसे भुजे ।  
 दधाति पुत्रं वरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोवने दिवः ॥३॥  
 तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य तानुरवृकस्य मीढपा ।  
 यः पार्थिवानि त्रिमितिद्रिणाममिरुहकमिष्टोक्तयाय जीवसे ॥४॥  
 द्व इदस्य क्रमणे स्वर्गशामिषाय मन्यो भुमपति ।  
 तृतीयस्य न करदधयति वयश्चत पतरन्तः पतविगः ॥५॥  
 चतुर्मिः साक्षं न गति न नापमिश्चकं न वृत्तं व्यती रवीरिपत् ।  
 वृहच्छरोते विमिमान ऋकमिर्षुवाकृशरः प्रयेन्याहव ॥६॥



२ इन्द्र और विष्णु, तुम लोग वृष्ट-पद हो; इमलिये यज्ञमें बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दोषिण आगमनको प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्यों के लिये, शत्रु-विनशक अग्निसे प्रदानव्य अन्न पद, प्रेरित करते हो।

३ सारे प्रसिद्ध आहुतियों इन्द्रके महान् पौरुषको बढ़ाती हैं। इन्द्र, सबकी मातृभूता छावापृथवोंके रेत और तेज और उपभोगके लिये, वही धनि प्रदान करते हैं। पुत्रका नाम निकृष्ट या निम्न है और पिताका नाम उत्कृष्ट या उच्च है। शुलोकके दोसिमान प्रदेशमें तृतीय नाम या पौशका नाम है अथवा वह शुलोकमें रहनेवाले इन्द्र और विष्णुके अधीन है।

४ हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तक्षण विष्णुके पौरुषकी स्तुति करते हैं। विष्णुने, प्रशंसनीय लोककी रक्षाके लिये, तीन बार पाद-विज्ञाप द्वारा सारे पार्थिव लोकोंकी, विष्णु रूपसे, प्रदक्षिणा की है।

५ मनुष्यगण, कीर्तन करते हुए स्वर्गदर्श विष्णुके द्वा पाद-ज्ञाप प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-ज्ञापको मनुष्य नहीं पा सकते; आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या मत्स्य भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६ विष्णुने, गति-विशेष द्वारा, विविध स्वभाववाली कालके ६४ अंशोंको, एककी तरह वृत्ताकार, परिवर्तित कर रखा है। विष्णु विशाल स्तुतिसे युक्त और स्तुति द्वारा जानने योग्य हैं। वह नित्य, तक्षण और अकुमार हैं। वह युद्धमें या आह्वानपर जाते हैं।

१५६ सूक्त । विष्णु देवता । जगती छन्द ।

भवामित्रो न शंख्यो घृतासुताभिभूतघुस्र पत्या उरुप्रथाः ।

अघाते विष्णो विदुषा चिदर्घ्यः स्ताभो यक्षश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

यः पूर्वार्थं वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे वदाशात ।

यो जातमस्य महता महिषवत् सेदु श्रवोर्भर्यज्यं चिदन्यसत् ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाघिद ऋतस्य गर्भं अनुषा पिपर्तन ।

आस्य जानन्तो नामर्षिद्विषकन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।

दाधार दक्षमुत्तममहर्षिदं वज्रं च विष्णुः सखिर्वा अपोणुते ॥ ४ ॥

आ द्यो निवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।

वेधा अजिन्वत्त्रिपथस्य आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥



२२ अनुवाक । १५७ सूक्त । अग्निद्वय देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यामिज्जं वदेति सूर्यो व्युपाञ्चन्द्रमद्यापो अर्चिपा ।

आयुक्षातामश्निना यातवः पथं प्रारः । इन्द्रोः सारिता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

१ विष्णुदेव, मिश्रको सरस्वतृम हस्ते उल्लास । २ दुःत म जन, प्रकृत अन्नवन्, रक्ष शील और पृथुव्यापी बनो । विद्वान् यजमान द्वारा हुम्कारों स्तात्र बर बर वदने था य ३; और, तुम्हारे यज्ञ हविषसे यजमानका आराधनीय है ।

४ जो व्यक्ति प्रवीण, मेधावी, अत्यन्त नीति और स्वयं उत्पन्न या जगन्मातृगीत स्त्रीवाले विष्णुको प्रव्य प्रदान करता है; जो मह तुम्हारे विष्णु की पूजनीय आद वथा कहते हैं; वही समीप स्थान पत हैं ।

५ स्तोताओ, प्राचीन राजा गर्भभूत विष्णु का नाम जानते हो, वसे हो स्तात्र आशिके द्वारा उनको प्रसन्न करो । विष्णु का नाम जानकर कीर्ति करो । विष्णु तुम मडातुमान हो, तुम्हारे बुद्धि को हय उभारना करते हैं ।

६ राजा वरुण और अग्निदेवोत्तमर का विव्युक्त यजमानके यज्ञरूप विष्णु को सेवा करते हैं, अश्विनाकुमार और विष्णु, मित्र होकर, उत्तम और दिग्ग बल धरण करते और मेवला आच्छदन होता है ।

७ जो स्वर्गीय और अतिशय शोभनकर्मी विष्णु शोभनकर्मी इन्द्र के साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेधावी तानों कोबोमें पराक्रमशाली विष्णु ने आनेवाले यजमानको प्रसन्न किया है और यजमानको यज्ञ-भाग दिया है ।

१ भूमिके ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे । विराट् उषा तेज द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकारको दूर करती है । हे अश्विनाकुमारो, आनेके लिये अपना रथ तैयार करो । सारे संसारको अपने-अपने कर्मोंमें सज्जता देवता नियुक्त कर ।

यद्युज्जाये वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतं ।  
 अस्माकं ब्रह्म घृतनासु चिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥  
 अर्वाङ्गं त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।  
 त्रिवन्धुरो मधना विश्वसौ भगः श न आवक्षद्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥  
 आ न ऊर्जं ब्रह्ममश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतं ।  
 प्रायुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सत्वाभुवा ॥ ४ ॥  
 युवं ह गर्भं जगतीषु धृत्यो युघं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।  
 युवमग्निं च वृषणावपक्ष वनस्पती रश्विनाधैरयेथाम् ॥ ५ ॥  
 युघं ह स्थो भिषजभेपजेभिरथो हस्थो रथ्या राथ्येभिः ।  
 अथो ह क्षत्रमधिधृत्य उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

२ अश्विद्वय, जिस समय तुमलोग वृष्टिदाता रथको तैयार करते हो, उस समय मधुर जल द्वारा हमारा घन बढ़ाओ । हमारे अदमियोंको अन्न द्वारा प्रसन्न करो । हम वीर संग्राममें मन प्राप्त करें ।

३ अश्वनीकुमारोंका तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ोंमें संयुक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला धन-पूर्ण और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आये और हमारे द्विपद (धुत्र आदि) तथा चतुष्पद (गौ आदि) को सुख ।

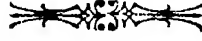
४ अश्वनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो । अपनी मधुमती कषा द्वारा हमें प्रसन्न करो । हमारा आयु बढ़ाओ, पाप दूर करो, दुर्बलियोंका विनाश करो और सारे कर्मोंमें हमारे साथी बनो ।

५ अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील गाँवों और सारे संसारके प्राणियोंमें अन्तःस्थित गर्भोंकी रक्षा करो । अभीष्टवर्षकद्वय, अग्नि, जल और वनस्पतियोंको प्रवर्धित करो ।

६ अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान द्वारा वेद्य और रथवाहक भगवों द्वारा रथवान् हुए हो । तुम्हारा बल बहुत अधिक है; इसलिए हे उग्र अश्विद्वय, तुम्हें जो, आसक्त चित्तसे, हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो ।

## द्वितीय अध्याय समाप्त

## तृतीय अध्याय ।



१५८ सूक्त । अश्विद्वय वेधता । त्रिष्टप् और अनुष्टप् छन्द ।  
 वरूद्रा पुरुमन्तु वृधन्ता वशस्यतं नो वृणतावमिष्टी ।  
 दस्त्रा ह यद्रेकण औन्नत्यो वां प्रय सस्ताये अकवामिरुती ॥१॥  
 को वां दाशत्सुमतये त्रिदस्यै वसू यद्रे नमसा पदे गोः ।  
 जिगृन्मस्मे रेवन्तो पुगन्धी काम्रे णेष तनसा चरन्ता ॥२॥  
 युक्तो हयद्रां तौग्याय पेरुर्दिमध्ये अर्णसो ध्यायि पञ्जः ।  
 उप वामयः शरण गमेसं ऽगो नान्न पनयद्भिरेः ॥३॥  
 उग्नन्तिरीच्छ मुग् येनामामिमे पनत्रिगो िदुग्धाप् ।  
 मामामेधो दगतयश्चिनो भक्त प्रयद्रां वद्वस्त्वनि स्वादति क्षाम ॥४॥  
 न मा गगन्नद्यो मातृत्मा दासायदी सुसमुद्रमवधुः ।  
 शिरो यदस्य त्रैतनो वितश्चन्मयं दास उगो अंसावपिग्ध ॥५॥

१ हे अभीष्टवक्त्र, निवासशता, पापहन्ता, बहुज्ञानी, स्तुति द्वारा वर्द्धमान और पूजित अश्विनीकुमारो, हमें अभीष्ट फल दो; क्योंकि उच्चपुत्र दीर्घतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रवासनीय रीतिसे आश्रय प्रदान करते हो ।

२ निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रहके सामने कौन तुम्हें इच्छा प्रदान कर सकता है ? अपने यक्षीय स्थानपर हमारी स्तुति सुनकर, उसके साथ, तुम लोग बहुत धन देना चाहते हो । वरीरपुष्टिकरी, शङ्कायमाना और बहुत दूधवाली गायें प्रदान करो । यज्ञमानोंकी अभिकाषा पूर्ण करनेके लिये तुम लोग कृत-संवत्स होकर विचारण करते हो ।

३ अश्विनीकुमारो, तुम्हारे बन्दार कुशल और अश्वयुक्त रखके, दूधपुत्र भक्ष्यके लिये, बल-प्रयोग द्वारा उत्पीर्ण होनेपर वह समुद्रमें स्थित हुआ था । अतएव जैसे युद्ध नेता वीर द्रुतगमो अश्व द्वारा अपने घामें जाता है, वैसे ही हम तुम्हारे आश्रयके लिये दृढगम हुए हैं ।

४ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दाघतमाकी रक्षा करो । प्रतिदिन घूमेवाले अहोरात्र हमें शीर्ण न करो । वरू बार प्रक्षालित आग्नि मुझे जला न सके, क्योंकि तुम्हारे आश्रित यह व्यक्ति, पद बढ़ होकर, पृथिवीपर लेट रहा है ।

५ मातृरूप नदी-जल मुझे दुबो न दे । रभंदरी या अनार्योंने इन स्कुलितान्न वृद्धको नीचे मुँह कर फेंक दिया है । त्रैतनने इनका सिर काटा था । दासने स्वयं हृदय-देश और अंध-द्वयपर आघात दिया था ।

दीर्घतमा मामतेयो जृज्वान्दशमे युगे ।

अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सार्गधिः ॥६॥

१५६ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृथा महीस्तुपे विदधेपु प्रचेतसा ।

देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्या धिया वार्याणि प्रभूपतः ॥१॥

उतमन्ये पितुर्द्रुहो मनो मातुर्महिस्वतवस्तद्वीमभीः ।

सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुह प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जङ्गुर्मातगा पूर्वचिन्तये ।

स्थानृश्च सत्यं जगतश्च धर्माणि पुत्रस्य पाथः पदमद्रयादिनः ॥३॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसा जामीसयांनी मिथुना समोकसा ।

नव्य नव्यं तन्तुमातन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवय सुदोतयः ॥४॥

६ ममताक पुत्र दीर्घतमा, दमवं कालके बोतने पर, जीर्ण दुष्ट थे । जो सब लाग कर्म-फल पानेकी इच्छा करते हैं; वे अपने नेता और सार्गधि हैं ।

१ यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्यमें चेतन्यकारी द्यावापृथिवीकी, मैं, विश्व रूपसे, स्तुति करता हूँ । यजमान उनके पुत्र-स्वरूप हैं । उनके कर्म सुन्दर हैं । अनुग्रह करते हुए वे यजमानोंको वरणीय धन प्रदान करते हैं ।

२ मैंने, आह्वान-मंत्र द्वारा, निर्दोष और पितृस्थानीय युलाकके उदार और सदाय मनको जाना है । मातृ-स्थानीय पृथिवीके मनको भी जाना है । पिता-माता (द्यावापृथिवी) अपनी शक्तसे, पुत्रोंकी, सली भाँति, रक्षा करते हुए बहुत और विस्तीर्ण असुत देते हैं । १

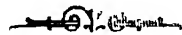
३ तुम्हारी सन्तान, सुकर्मा और सुदर्शन प्रजाएँ, तुम्हारे पहलेके अनुग्रहको स्मरण करके, तुम्हें महान् और माता कहकर आते हैं । पुत्र-स्वरूप स्थावर और जंगम पदार्थ द्यावा-पृथिवीके अतिशक्ति और किसीको नहीं जानते । तुम उनकी रक्षावा अबाध स्थान प्रदान करते हो ।

४ द्यावापृथिवी सहोदरा भगिनी और एक स्थान रहनेवासे जोड़ें हैं । वे प्रज्ञा-युक्त और चेतन्यकारी हैं । किरनें उनका विभाग करती हैं । अपने कार्यमें निरल और सुप्रकाशित रश्मियाँ द्योतमान अन्तरीक्षके बीच नये-नये सूत पेलाती हैं ।

१ अराजर्ज और जन्मान्ध दीर्घतमाके विनाशमें असमर्थ होकर अनार्यों या गर्भदासोंने उन्हें आगमें फेंक दिया था दीर्घतमाने स्तुति की और अश्वद्वयने उन्हें बचाया । फिर गर्भदासोंने उन्हें जलमें फेंका और कुमारों-ने रक्षा की । अश्वको श्रेष्ठन नामके दासने उनका मस्तक और सिर छेद दिया । तो भी कुमारोंने उनकी रक्षा की ।

तद्वाधो अद्य सावतुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतम्बितम् ॥ ५ ॥



१६० सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुन ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।

सुजन्मनी ध्रियणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

उरुव्यवसा महिनी असध्वता पितामाता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमेव पुण्ये न रोदसी पिता यत्सीमभिरूपैरवासायत् ॥ २ ॥

स वहिः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।

धेनुं च पृश्नि वृषं सुरेतरं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।

त्रि यो ममे रजसी सुकृत्यया तरेभिः स्कंभनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महिध्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनामि कुण्टीस्ततनाम विश्वहा पनाटपमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

५ आज हम सविता देवताकी अनुमतिके अनुसार उस वर्णीय धनको चाहते हैं । हमारे ऊपर द्यावापृथिवी, अनुग्रह करके, गृह आदि और शत-शत गौओंमें युक्त धन दें ।

१ द्यावापृथिवी संसारके लिये सुवर्षादिनी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करनेके लिये चेष्टा-सम्पन्ना, सजाता और अपने कार्यमें निपुणा हैं । सोतमान और शुचि सूर्य द्यावापृथिवीके बीच, अपने कार्यमें, सदा गमन करते हैं ।

२ विशाल, विस्तीर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता ( द्यावापृथिवी ) प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । शरीरोंके मंगलके लिये ही द्यावापृथिवी मानों सचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पदार्थोंको रूप प्रदान करते हैं ।

३ पिता-माता ( द्यावापृथिवी ) के पुत्र सूर्य हैं । वह धीर और फलदाता हैं । अपनी बुद्धिसे वह सारे भूतोंको प्रकाशित करते हैं । वह शुक्रवर्ण धेनु ( पृथिवी ) और मेघन-कार्यमें समर्थ वृष ( वायु ) को भी प्रकाशित करते हैं । वह वायुकोकसे निर्मल दूध दूहते हैं ।

४ वह देवोंमें देवतम और कर्मियोंमें कर्मश्रेष्ठ हैं । उन्होंने सर्व-सुखदाता द्यावापृथिवीको प्रकट किया है और प्राणियोंके सुखके लिये द्यावापृथिवीको विभक्त करते हैं । उन्होंने छट्ठ शत्रु या खूंटेंमें इन्हें स्थिर कर रखा है ।

५ द्यावापृथिवी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और बल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजाका विस्तार करें । हमारे शरीरमें प्रकासनीय बलकी वृद्धि कर दो ।

(६. सूक्त । ऋभु देवता । जा.ता छन्द ।

किमु श्रेष्ठः किं यद्विष्ठः न आजगन्निष्क्राम्यते द्रुत्यं वयदू चम ।  
 न निन्दम चमसं यो महाकुलोम्ने भ्रतर्द्राण इदुभूतिमूढम् ॥ १ ॥  
 एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अत्रुवन्तद्व आगमम् ।  
 साध्रन्वना यद्य वा काङ्क्ष्यथ साकं देवैर्योक्षयातो भविष्यथ ॥ २ ॥  
 अग्निं दूतं प्रात यद्वरीतनः ॥ कर्ता रथ उतेह कर्त्तव्यः ।  
 धेनुः कर्ता युवता कर्त्ता द्रुतांन भ्रातरणुः कृन्वेमसि ॥ ३ ॥  
 चकृर्वास ऋभवस्तदपृच्छत कदभूयः स्य दूतो न आजगन् ।  
 यदा वाख्यच्चमसां चतुः कृतानादित्वष्टाग्रास्वन्तर्नानजे ॥ ४ ॥  
 हनामैतां इति तेषा यद्वरीचमसं ये देवानमनिन्द्युः ।  
 अन्या नामानि कृण्वते सुते सचां अन्यैरेतान् कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१ जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जठ है या छटे ? ये क्या देवों के दूत-कार्य के लिय आये हैं ? इन्हें क्या कहना होगा ? इन्हें कैसे पहचानेंगे ? माता अग्नि, हम चमसको निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन्न है। उस काष्ठमय चमसकी स्मृति को हम व्याख्या करेंगे ॥

२ (अग्निने कहा) —सुधन्वाके पुत्र, एक चमसको चार बनाओ—देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है। मैं तुम्हें कहने आया हूँ। तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवों के साथ यज्ञीयाभागी बनोगे।

३ अग्निदेव, देवोंने अपने दून अग्निके प्रति जो-जो कार्य बताये हैं, उनसे भस्म बनाना होगा, स्थका निर्माण करना होगा, गौका सृजन करना होगा अथवा माता-पिताको फिर तरुण करना होगा। आत्तर, तुम्हारे इन सब कार्यों को करके अन्नको, कर्म फलके लिये, तुम्हारे पास आवेंगे।

४ ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने देखा कि, जो दून हमारे पास आया था, वह कहाँ गया ? जिस समय त्वष्टा या ब्रह्माने चमस ४ बार टुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियोंमें विलीन गया।

५ जिस समय त्वष्टाने कहा कि, जिन्होंने देवों के पानपात्र चमसका अपमान किया है, उनका बध करना होगा, उस समयसे ऋभुगणने, सोम तेगार होनेपर, दूधमा नाम व्रण किया और कन्या या उनकी माताने उसी नामसे पुधारकर उन्हें प्रसन्न किया।

॥ सुधन्वाके तीन पुत्रोंने देवत्वष्टा से किया था। एक बार वे स्वाम को रह गये कि, देवोंने वहाँ अग्निदेव को भोज दिया। अग्नि उन तीनों के समान रूपों को देखकर स्वयं भी वैसा ही रूप धारण करके सोम पीने लगे। अपने समान ही एक नये रूप को देखकर इस मन्त्रमें ऋभु स्थाग पूछ रहे हैं।

इन्द्रा हरी युयुजे अशना रथं वृहस्पतिरिन्द्रागुपाजत ।  
 ऋभुर्विष्वा वाजो दवाँ अगच्छन् स्वपसां यज्ञियं भागमैनन ॥ ६ ॥  
 निश्चमणो गमरेणीत धीःतमिषाजग्न्ता गुताशा कृणोतन ।  
 सौधन्वना अश्वदशमश्नन् युक्त्वा रथं मुरदवाँ अयातन ॥ ७ ॥  
 इममुदकं पिबतेत्यश्वीतनेदं वाघा पिबन्त मुञ्चने जनम् ।  
 सौधन्वना यदिन्नेर हर्षयन्ताये घानवने मादपाध्वै ॥ ८ ॥  
 आपो भूयेष्ठ इत्येको अत्रवीदग्निर्भू पिबेत् इत्यन्यो अत्रवीन् ।  
 वधयेन्तो बहुभ्यः प्रैका अत्रवीद्वतावदन्तश्चमना अपिशत ॥ ९ ॥  
 श्रोणामेक उदकं शामवाजति मांसमेकः पिशति सूतयाभृतम् ।  
 आनिमृचः शकुदेको अवाभरत्किंस्तितुत्रेभ्यः पिशति उपावतुः ॥ १० ॥  
 उद्वस्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वास्थ्या नरः ।  
 अगोहास्य यदसस्तता गृहेनद्वये दम्भवा नानुगच्छ ॥ ११ ॥

६ इन्द्रने अपने अश्वोंका सत्राया, अश्वनाकुमरोंने रथ तैयार किया, वृहस्पतिने । वगैररूपा गौको स्वीकार किया । इसालये हे श्वभु, दिभु और वाज, तुम देवोंके पास गमन करा । हे पुण्यकर्ता लोग, म यज्ञ-भाग ग्रहण करो ।

७ हे सुधन्वाके पुत्रो, तुमने आश्रयजनक कौणाली मृग घेनुके शरीरमें चमड़ा लेकर उसमें धनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बड़े थे, उन्हें फिर युवा किया, एक अश्वने अन्य अश्व उत्पन्न किया; हम लिये रथ तैयार करके देवोंके सामने जाओ ।

८ देवो, तुमने कहा था, 'हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग यही सोमरस पान करो अथवा मुञ्चन्-नृगसे शोचित सोमरस पान करो । यदि इन दोनोंमें तुम्हारी हृच्छा न हो, तो तीसरे (सायं) सवनमें सोमरस पीकर अत्यन्त मृत हो जाओ ।'

९ श्वभुओंमेंसे एकने कहा, "जल ही सबसे श्रेष्ठ है", एकने अग्नि को श्रेष्ठ बताया और तीसरेने वृष्वोको । सभी बात कहकर ही उन्होंने चारो चमसोंको तैयार किया ।

१० एक लोहितवर्ण जल या रक्त, बाहर, भूमिपर रखने हैं, दूसरे छुरेमें कटे मांसको रखते हैं, तीसरे मांससे मल आदि अलग करते हैं । किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (श्वभुओं) का उपकार कर सकते हैं ?

११ प्रभूत दीप्तिशाली श्वभुओ, तुम नेता हो । प्रायिकीं भलेके लिये तुम ऊँचे स्थानपर ब्रीहि, यव आदि मृग उत्पन्न करते और सप्तार्ध करने की इच्छामें नीचेके प्रदेशमें जल उत्पन्न करते हो । सूर्यमण्डलमें अवतक तुम निहित थे; इस समय बैसा नहीं करता । अपना कार्य सिद्ध करो ।



संमील्य यद्वचना पर्यसर्पत क स्वित्तात्या पितराव आसतुः ।  
 अशपतयः करस्त्रं च आददैयः प्रात्रवीन्प्रोतस्मा अब्रवीतन ॥१२॥  
 सुषुप्त्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अब्रूवुधत् ।  
 श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥१३॥  
 दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।  
 अद्विर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥



१६२ सूक्त । अश्व देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिरख्यन् ।  
 यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥  
 यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत्त स्यरानिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।  
 सुप्राडजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूर्वणः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥  
 एषच्छागः पुगे अश्वेन वाजिना पूर्णो भागो नीयते विश्वदैव्यः ।  
 अभिप्रियं यत्पुगेलाशमर्धता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

१२ ऋभुओ, जिस समय तुम जलधामें भूतोंको मिलाकर चारों ओर जाते हो, उस समय संसारके पिता-माता कहाँ रहते हैं ? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़ कर रोकेते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ । जो वचन द्वारा तुम्हें रोक्ता है, उसकी भर्त्सना करो ।

१३ ऋभुओ, तुम सूर्य-मण्डलमें सोकर सूर्यसे पूछते हो कि, “हे सूर्य, किसने हमारे कर्मको जगाया ।” सूर्य कहते हैं, “वायुने तुम्हें जगाया ।” वर्ष बीत चला, इस समय फिर तुम लोग संसारको प्रकाशित करो ।

१४ बलके नसा ऋभुओ, तुम्हारे दर्शनकी इच्छामें मरत छुलोकसे आ रहे हैं; अग्नि, पृथ्वीसे, आते हैं; वायु, आकाशसे, आते हैं; और, वरुण, समुद्र-जलके साथ, आते हैं ।

१ खूँकि हम यज्ञमें देवजात और द्रुतगति अश्वके वीर कर्मका कीर्त्तन करते हैं; इसलिये मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें ।

२ सुन्दर स्वर्णभरणसे विभूषित अश्वके सामने ऋत्विक् लोग, उत्सर्गके लिये, झाग पकड़कर ले जाते हैं । विविध वर्णके झाग, शब्द करते हुए, सामने जाते हैं । वह इन्द्र और पूषाका प्रिय भन्म हो ।

३ सब देवोंके लिये उपयुक्त झाग पूषाके ही अंशमें पड़ता है । उसे शीघ्रगामी अश्वके साथ सामने लाया जाता है । अतएव त्वष्टा देवताके सुन्दर भाजनके लिये, अश्वके साथ, इस झागसे सुखाद्य पुरोडास तैयार किया जाय ।

यद्विष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुपाः पर्यश्वं नयन्ति ।  
 अत्रा पूषणः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥४॥  
 होताध्वयुं रावया अग्निमिन्धो धावग्राभ उतशंस्ता सुविप्रः ।  
 तेन यज्ञं न स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वं ॥५॥  
 यूपवस्का उतये यूपवाहाश्चपालं ये अस्व यूपाय तक्षति ।  
 ये चावन्ते पचनं सं भग्न्युतो तेषामभिगूतिनं इन्वतु ॥६॥  
 उप प्रागात्सुमन्मेधायि मन्म देवा नामाशा उपवीतपृष्ठः ।  
 अन्वेनं विप्रा ऋपयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सूबन्धुम् ॥७॥  
 यद्वाजिनो दामसन्दानमर्चतो या शीर्षण्या रशना रज्जु रस्य ।  
 यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वातानि अपि देवेष्वस्तु ॥८॥  
 यदश्वस्य कविपा मक्षिकाश यद्वा स्वशौ स्वधितो रिप्तमस्ति ।  
 यद्वस्तयोः शमितुयन्नस्वपु सर्वातानि अपि देवेष्वस्तु ॥९॥  
 यदुवध्यमुदगस्यापवाति य आमस्य कदिपा गन्ध्रा अस्ति ।  
 सुकृतातच्छ्रमिदारः कृण्वन्तूत मेघं श्रुतपाकं पचन्तु ॥१०॥

४ जब श्रुतिवक् लोग देवोंके लिये प्राप्त करने योग्य अश्वका, समय-समयपर, तीन बार अग्निके पास ले जाते हैं, सब पूषाके प्रथम भगका ह्वाग देवोंके यज्ञकी बातका प्रचार करके आगे जाता है ।

५ होता ( देवोंका बुढानेवाले ), अध्वयुं ( यज्ञ-नेता ), रावया ( हव्यदाता ), अग्निमिन्ध ( अग्नि-प्रज्वलनकर्ता ), धावग्राभ ( प्रसारद्वारा सामरस निकालनेवाले ), शस्त्रा ( नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेवाले ) और मक्षिका ( सब यज्ञ-कार्योके प्रधान सम्पादक ) प्रसिद्ध, अलंकृत और सुन्दर यज्ञ द्वारा नादियोंको पूर्ण करें ।

६ जो यूपक योग्य वृक्ष काटने हैं, जो यूप वृक्ष ढोते हैं, जो अश्वको बाँधनेके रूपके लिये काष्ठ-मण्डप आदि तैयार करते हैं, जो अश्वके लिये पाक-पात्रका संप्रद करके हैं, हमारा संकल्प भी उन्हींका हो ।

७ हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो । मनोहर-पृष्ठ-विशिष्ट अश्व, देवोंकी आशा-पूर्तिके लिये, आवे । देवोंको पुष्टिके लिये हम उसे अच्छी तरह बाँधेंगे । मेघावी श्रुतिवक् लोग आनन्दित हों ।

८ जिस रस्सीसे घोड़ेकी गर्दन बाँधी जाती है, जिससे उसके पंर बाँधे जाते हैं, जिस रस्सीसे उसका सिर बाँधा जाता है, वह सब रस्सियाँ और अश्वके मुखमें डाली जानेवाली घातें देवोंके पास आवें ।

९ अश्वका जो कच्चा हो मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ करनेके समय हथियारमें जो लग जाता है और छेदकके हाथों तथा नखोंमें जो लग जाता है, वह सब देवोंके पास जाय ।

१० उदरका जो शजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक मांसका जो तेशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्बोध करे और पवित्र मांस, देवोंके लिये, उपयोगी करके पकावे ।

यत्ते गात्रादाग्रता पच्यमानादभिशूलं निहतस्याव धार्वति ।  
 मातङ्गम्यामाश्रिपामा तृणेषु देवस्यस्तदुशदभ्यो रातमस्तु ॥११॥  
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति एकं य ईमावुः सुरभिनिर्हरेति ।  
 ये चावतो मांसमिक्षामुप सत एतो तेषामभिगूतिनं हन्वतु ॥१२॥  
 यन्मीक्षणं मांसपचन्या उवाया या पात्राणि यूष्ण आसेवनानि ।  
 उष्ण्यापिधाना नरुणामंकाः सूनाः परिभूयन्त्यश्वम् ॥१३॥  
 निक्रमणं निपदनं विवर्तनं यच्च पद्वीशमवर्ततः ॥  
 यच्च पपी यच्च घासिं जघास सर्वातिं अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥  
 मासं वाग्निर्वचनीकृम्यन्धिर्मोखा भ्राजत्याभिविक्तजघ्रिः ।  
 इष्टं वीक्षमभिगर्तं वषट्कृतं तं देवास्तः इतिगृष्णन्त्यश्वम् ॥१५॥  
 ददश्याय वास उवायुषा पपीकासं या विरण्यान्यश्म ।  
 हन्तानमवर्तत पद्वीशमवर्तत देवता यामयस्तु ॥ १६ ॥  
 यत्तं स्यात् महती शूयन्त्या पाचय्या वा कशया वा तुतोद् ।  
 स्रुचेव ता हविषो अश्वरेषु सर्वानानि ब्रह्मणः सृदयामि ॥१७॥

११ अश्व, अगमे पकाते समय दूधहारे शरीरमे जो रस निकलता आर जो रस शूलमे आबद्ध रहता है, वह महीमें गिरकर तिनकांमें मिल न जाय । देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय ।

१२ जो लोग चारों ओरमें अश्वका पक्का देखते हैं, जो कहते हैं कि, गन्ध मनोहर है, देवोंको दो; तथा, जो मांस-मिक्षाकी अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो ।

१३ मांस-पाचनकी परीक्षाके लिये जो काष्ठभानु लगाया जाता है, जिन पात्रोंमें रस रक्षित होता है, जिन आच्छादनोंमें गभी रहती है, जिस पेनस-शाखामें अश्वका अवयव पतने चिन्हित किया जाता है और जिस छुरिकासे, चिह्न नुसार, अवयव काटे जाते हैं, सो मश अश्वका मांस प्राप्त करते हैं ।

१४ जहाँ अश्व गया था, जहाँ बँटा था, उहाँ लेटा था, जिससे उसके पेर बाँध गये थे, जो उसने पिया था तथा जो घस उसने खाया थी, सो सब देवोंके पास जाय ।

१५ अश्वगण, धूम्रगन्ध अथ तुलसी शब्दों के समके अथ अग्नि-संयोगमें इस सगन्धि मांस कम्पित न हो । यज्ञके लिये अभिप्रेत और हवनके लिये लाया हुआ, रस्मुधमें प्रक्षत और वषट्कार द्वारा द्योभित अश्व देवता ग्रहण करें ।

१६ जिस आच्छादन योग्य वस्तुमें अश्वको आच्छादित किया जाता है, उसको जो सोनेके गहने दिये जाते हैं, जिससे उसका सिर और पैर बाँध जाते हैं, सो सब देवोंके लिये प्रिय है । श्वविष् लोग देवोंको यह सब प्रदान करते हैं ।

१७ अश्व, जोरमें नासाध्वनि करते हुए गमन करनेपर चतुर्के अवात अथवा बगलके आघातसे जो व्यथा उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथाको, मैं, उसी प्रकार मन्त्र द्वारा आहुतिमें देता हूँ, जैसे स्रुक द्वारा हव्य दिया जाता है ।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्कीरश्वस्य स्वधितः समेति ।  
 आच्छद्वा गात्रा वयुना कृणोत परुष्पकनुधुष्या विशस्त ॥ १८ ॥  
 एकस्त्वष्टरश्वस्या विशस्ता ह्य यन्तारा भवतस्तथा ऋतुः ।  
 या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्री ॥ १९ ॥  
 मा त्वा तपत्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।  
 मा ते गृध्रविशस्तातिहाय छिद्रागात्राप्यसिना मिथुकः ॥ २० ॥  
 न वा उ एतन्मित्रसे नार्ण्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।  
 हरा ते युञ्जा पृपती अभूतामुपास्थाद्वाजी भुरि रासभस्य ॥ २१ ॥  
 सुगव्यं नो वाजोऽश्वस्य पंसः पुत्राँ उत विश्वापुर्न रयिम् ।  
 उनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु श्रवं ना श्रवो धनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

१६३ सूक्त । अश्व देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्तसमुद्रादुत वा पुगीपात ।  
 श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपतुत्यं माहजानं ते अर्चन ॥ १ ॥

१८ देवोंके बन्धु-स्वरूप अश्वको जो बगलको टेढ़ी चौतौस हड्डियाँ हैं, उन्हें काटनेके लिये खट्ग जाता है ।  
 हे अश्वस्तुष्टिक, ऐसा करना, जिसमें ठंग बिच्छन्न न हो जायँ । कण्ठ बरके और देख देखकर एक-एक हिस्सा काटो ।

१९ ऋतु ही तेजःपुञ्ज अश्वका एक मात्र विकाशक हैं । उन्हें दो, दिन-रात, धारण करते हैं । अश्व, तुम्हारे शरीरके जिन अवयवोंको, दयासमय, काटता हूँ, उनका पिराड बनाकर ४ गिनको प्रदान करता हूँ ।

२० अश्व, तुम जिस समय देवोंके पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें क्लेश न दे । तुम्हारे शरीरमें खट्ग अधिक क्षत न कर । माँस-लोहप और अर्धमज्जा हटाने, अस्त्र द्वारा, विभिन्न अंगोंको छाँटकर तुम्हारा गात्र कृषा न काटे ।

२१ अश्व, तुम न तो मरते हो और न रंजार तुम्हारी हिंसा करता है । तुम उसी मार्गमें, देवोंके पास, जाते हो । इन्द्रके हरि नामके दाना घोड़े और मरुतोके पृपती नामके दानो वाहन तुम्हारे रथमें जोते जायँगे । अश्विनी-कुमारोंके वाहन रासभके बत्ते, तुम्हारे रथों, कोई शोचगामी अश्व जोता जायगा ।

२२ यह अश्व, हमें, गी और अश्वसे युक्त तथा संसार-नशक धन प्रदान करे; हमें पुत्र प्रदान करे । तेजस्वी अश्व, हमें पापसे बचाओ । हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो ।

१ अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी तुम्हें याग्य है । अन्तरीक्ष या जलमें प्रथम उत्पन्न होकर, यज्ञमांसके अनुषङ्गके लिये, महान् शब्द करते हो । श्येन पक्षीके पक्षको तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिणके पदोंकी तरह तुम्हें पैर हैं ।

यमेन दत्तं त्रित पनमायुनगिन्द्र एजं प्रथमो अष्ट्यतिष्ठत् ।  
 गन्धर्वो अस्य रशनामगृष्णात्सुखं दश्वं वरुवा निरगच्छत् ॥ २ ॥  
 असि यमो अस्यादक्षो अर्धन्नास त्रितो गुह्येन व्रतेन ।  
 असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीण दिविबन्धनानि ॥ ३ ॥  
 त्रीणित आहुदिविबन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रं एयन्तः समुद्रं ।  
 एतेन मे वरुणश्छन्त्यर्धन्यत्रात आहुः पामं जनित्रम् ॥ ४ ॥  
 इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफाना सनिदुविधाना ।  
 अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥  
 आत्मानं ते मनसा राजानामवा दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।  
 शिरा अपश्यं पथिभः सुगोभिररेणुभिर्जहमान पतात्रि ॥ ६ ॥  
 अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमणाश्च आ पदे गाः ।  
 कदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिदृशसिष्ठ ओषधीरक्षोगः ॥ ७ ॥  
 अनुत्ता रणेः अनुमर्यो अवन्तनु सानेनुनयः वनाताम् ।  
 अनु तानावस्तवसख्यर्मायु नु देवा मामरे वार्यं ते ॥ ८ ॥

२ यम या अर्धन्न अष्टाद्वया आ, त्रित या मायुने उमे रशना आहुः । स्थवर पदस इन्द्र चर्द और गन्धर्वो या सोमोने इसकी लगामको धारण किया । वसुओंने सूर्यसे अवका बनाया ।

३ अथ, तुम यम, आदित्य और गोपनीय व्रतधारी हित हो । तुम स्वामक साथ मिलित हो । पुरोहित लोग कहते हैं कि, ब्रह्मलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं ।

४ अथ, ब्रह्मलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन ( वसुण, सूर्य और बुध्मान ) हैं । जल या पृथिवीमें तुम्हारे तीन बन्धन ( अन्न, स्थान और वीज ) हैं । अन्तरीक्षमें तुम्हारे तीन बन्धन ( मेघ, विद्युत् और स्तनित ) हैं । तुम्हीं वरुण हो । पुरतस्त्वविदोने जिन सब स्थानोंमें तुम्हारे परम जन्मका निर्देश किया है, वह तुम इमें वाते हो ।

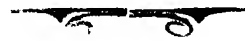
५ अथ, मैंने देखा है, ये सब स्थान तुम्हारे अंग-शायक हैं जिस समय तुम यज्ञोंका भोजन करते हो, उस समय तुम्हारा पद-चिह्न यहाँ पड़ता है । तुम्हारी जो कण्ठ-वल्या ( लगाम ) सत्यभूत दक्षका रक्षा करती है, उसे भी यहाँ देखा है ।

६ अथ, दूसरे ही, मनके द्वारा, मैंने तुम्हारे शरीरको पहचाना है । तुम नीचेने, अन्तरीक्ष-मार्गमें, सूर्यमें, जाते हो । मैंने देखा है, तुम्हारा निर घूर्ति-शुभ्र, सुवकर, मागसे शीघ्र गर्भमें, कमल; ऊपर उठता है ।

७ मैं देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवीपर, चारों ओर, अन्न के लिये आता है । अथ, जिस समय मनुष्य भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम घ्रास-योग्य वृण आदिका भक्षण करते हो ।

८ अथ, तुम्हारे पीछे-पीछे अथ जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, त्रिवर्गोंका सौभाग्य तुम्हारे पीछे जाता है । दूसरे अर्थोंने तुम्हारा अनुगमन करके मंत्रों प्राप्त की है । देव लोग तुम्हारे धीर-कर्मकी प्रशंसा करते हैं ।

विरण्यशृङ्गो यो अस्य पादः मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।  
 देवा इदं च विरयमाश्रयो वर्जितं प्रथमो अच्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥  
 ईर्मांतामः विलिकमश्रमायः सं शृण्णामो दिशामो अत्याः ।  
 हंसा इव श्रेणिशा यतन्ते यदाक्षिपद्दिव्यमजममश्राः ॥ १० ॥  
 तव शरीरं पतयिष्यत्वर्धन्तव चित्तं वात इव ध्रजोमान् ।  
 तव शृङ्गाणि विण्डिता पुङ्गवाण्येषु जर्भुराणां चरन्ति ॥ ११ ॥  
 उपप्रागान्धस्वनं वाज्यां दौद्रीणा मनसा दीध्यानाः ।  
 अजः पुनो नोयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्तिरेभाः ॥ १२ ॥  
 उपप्रागान् पन्मं यन् सधस्थमर्षीं अच्छापितरं मानरं च ।  
 अद्या देवाऽनुप्रतमो हि गम्या यथाशास्त्रे दाशुषे वार्याणि ॥ १४ ॥



१६४ सूक्त १२ से ४१ तकके विरदेवगण, ४२ के प्रथमाश्र के वाक् और द्वितीयाश्र के अप्, ४३ के प्रथमाश्र के शक्ररूप और द्वितीयाश्र के सोम, ४४ के अग्नि, मूय और वायु, ४५ के वाक्, ४६ से ४७ तक के सूर्य, ४८ के संवत्सररूप काष्ठ, ४९ के मरुत्वन्ती, ५० के साध्याय, ५१ के अग्नि और ५२ के सूर्य देवता हैं ।

अस्य नामस्य प लतस्य दानुस्तस्य भ्राता मध्यमो असुव्यश्रः ।

तुनीरो भ्राता घृतपुण्ड्रो अस्माश्चा पश्यं विशपति समपुत्रम् ॥ १ ॥

६ अश्वका सिर सोनेका है और उसके पर लाहेक तथा उगाव ली हैं । वेगके समन्वयमें तो इन्द्र भी निकट हैं । देवगण अश्वके इव्य-मक्षणके लिये आगे । पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं ।

१० जिस समय अश्व स्वर्गाय पयने जाता है, उस समय वह निवद्ध-जघन-विशिष्ट होता है । पतली कमरवाले, विह्वलहाली और स्वर्गाय अश्वगण दलके-दल, हंसी-सी तरह, पंक्ति-बद्ध होकर, उनके साथ जाते हैं ।

११ अश्व, तुम्हारा शरीर दाग्रगामी है, तुम्हारा चित्त भी, पायुगी तरह, शीघ्रगम्य है । तुम्हारे केसर नामा स्थानोंमें, नाना भावोंमें, अवास्थान तथा उगममें, विविध स्थानोंमें, भ्रमण करते हैं ।

१२ वह द्रुतगामी अश्व, आत्मक चित्तमें, देवोंका उपास करने हुए, वध-स्थानमें जाता है । उसके मित्र जागको उसके आगे-आगे ले जाया जाता है । कवि स्तोत्रा पाह-पीछे जाते हैं ।

१३ द्रुतगामी अश्व, पिता और माताको प्राप्त करनेके लिये, उग्ररुष्ट और एक निवास-योग्य स्थानपर गमन करता है । अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवोंके पास जाओ, ताकि इव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करे ।

१ सबसे सेवनीय और जगत्पालक होना या सूर्यके मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं । उनके तीसरे भ्राता या अग्नि आहुति धारण करते हैं । भाइयोंके बीच सात किरणोंमें युक्त विशपतिको देखा गया ।

सप्त युञ्जन्तिरथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।  
 त्रिनाभिवक्रमजग्मनर्वं यत्रेमा विश्वामुवनाधितस्थुः ॥ २ ॥  
 इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वः ।  
 सप्त स्वसारो अभिमन्त्रवन्ते यत्र गतां निहिता सप्तनाम ॥ ३ ॥  
 को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।  
 भूम्या असुरसृगात्मा कस्वित् को विद्वांसमुपगान् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥  
 पाकः पृच्छामिमं नसाविज्ञानन्देवानामेना निहिता पदानि ।  
 वत्से बष्कयेधि सप्ततन्मून्वितन्त्रिरे कवय आतवा उ ॥ ५ ॥  
 अचिकित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्वाने न विद्वान् ।  
 वियस्तस्तम्भ पङ्क्तिमा रजांस्यजस्य रूपेऽकमपि स्वदेकम् ॥ ६ ॥  
 इह प्रबोतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वः ।  
 शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वत्रि त्रिलाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥  
 मातापितरमृत आ बभूजु धोत्यग्रं मनसा संहि जग्मे ।  
 सा बभूतसुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

२ सूर्यके एकचक्र रथमें सात घाड़ें जोते गये हैं । एक ही अश्व, सात नामाने, रथ होता है । चक्रकी तीन नाभियाँ हैं । वे न तो कभी शिथिल होंगी, न जोरें होंगी । सारा संसार उनका आश्रय करता है ।

३ जो सात, सप्त-चक्र रथका, अभिष्ठान करने हैं वे ही सात अश्व हैं; वे ही इस रथको 'जोते' हैं । सात भगिनिवाँ ( किरणें ) इस रथके सामने आती हैं । इसमें सात गायें ( किरणें या स्वर ) हैं ।

४ प्रथम उत्पन्नको किसने देखा था — जिस समय अग्नि रजिना ( पङ्क्ति ) ने अग्नि-युक्त ( संसार ) को धारण किया ? पृथिवीसे प्राण और रक्त उत्पन्न हुए, अन्तः आत्मा कहाँ से उत्पन्न हुई ? विद्वान्के पास कौन इस विषयकी जिज्ञासा करने जायगा ?

५ मैं अनादी हूँ, कुछ समयमें न आनेसे पूछ रहा हूँ । ये सब संदिग्ध बातें, देखोंके पास भी, रहस्यमयी हैं । एक वर्षके गोवत्स या सूर्यके वेष्टनके लिये मेरात्रियोंने जो मान मूँ या मात मोम-यज्ञ अस्तुन किये, वह क्या है ?

६ मैं अज्ञानी हूँ । कुछ न जानकर ही जानियोंके पास जाननेकी इच्छासे पूछना हूँ । जिन्होंने इन सब कोकोंको रोक रखा है, जो जन्म-रहित रूपसे निवास करते हैं, वह क्या एक हैं ?

७ गमनशील और सुन्दर आदित्यका स्वरूप अश्वो निगूढ़ है । वह सबके मस्तक-स्वरूप है । उनकी किरणें दृष्ट की जाती तथा अति विशाल तेजसे युक्त होकर उसी प्रकार पुराः जलपान करती हैं । जो यह सब कथाएँ जानते हैं, वे कहें ।

८ माता ( पृथिवी ), वृष्टिके लिये, पिता या द्युलोकमें स्थित आदित्यको अनुष्ठान द्वारा पूजती हैं । इसके पहले ही पिता, भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे । गर्भ-धारणकी इच्छासे माता गर्भरससे निविद्ध हुई थी । अनेक प्रकारके हस्त उत्पन्न करनेके लिये आपसमें बातचीत भी की थी ।

युक्ता मातःसाक्षरि दक्षिणाया अनिष्टद्वर्षो वृजनीष्वन्ता ।  
 अमोमेदत्सा अनुगामपश्याद्वश्वरूप्य त्रिषु लोकेषु ॥ ६ ॥  
 तिस्रो मातस्त्रोन् पितान्विभ्रदेक ऊर्ध्वरसनस्यौ नेमत्र ग्लापयन्ति ।  
 मन्त्रयन्ते दिवा अनुष्य पृष्ठ विश्वविद् पात्रमविश्वमिन्धाम् ॥ १० ॥  
 द्वादशारं नदि तज्जराय वयति चक्रं पांशुमामृतस्य ।  
 आपुत्रा अने मिथुनास्ता अत्र समशानानि विशन्ति च तस्थुः ॥ ११ ॥  
 पञ्चपाद पितरं द्वादशाक्षरि दिव आहुः परं अर्थं पुरोपिणम् ।  
 अथ मे अन्य उपरं विचक्षण सप्तचक्र पटुर आहु पितर ॥ १२ ॥  
 पञ्चारे चक्र पात्रवनमानं तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।  
 तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः मनादेव न शायने मनाभिः ॥ १३ ॥  
 सनोमचक्रमजरीं चित्रावृत उत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति ।  
 सुयस्य चक्षरजसैत्यावृत् तस्मिन्नापिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

६ पिता ( धाता ) अभिलाष-प्राप्ति के लिये मातःसाक्षरि का भार लेता है। मातःसाक्षरि जलराशि मेषमालाके बाध थी। वत्स या वृष्टजलन शब्दों का अर्थ तीन ( मेष, वायु और किरण ) का योगसे विष्वक्-रूपिणी गौ ( पृथिवी ) हुई अर्थात् पृथिवी शम्पासु-दिता हुई ।

१० एक मात्र आदित्य ने न माता ( पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश ) और तीन पिता ( अग्नि, वायु और सूर्य ) का धारण करते हुए ऊपर उभर आये हैं, उन्हें यज्ञादि नहीं मानते । युक्तों को पाठ्या देवता लोग सूर्यके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं । इस बातचीतका कोई बड़ी जानता; परन्तु उसमें सबकी बातें रहती हैं ।

११ सत्यात्मक आदित्यका, बारह अंगों (राशियों) से युक्त, चक्र मारग का चारा बार-बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुनः-पुनः सात सौ दोष ( ३६० दिन और ३६० रात्रियाँ ) निवास करते हैं ।

१२ पाँच पेटों ( शत्रुओं ) और बारह रुतों ( महीनों ) में संयुक्त आदित्य जिस समय युक्तों के प्रादुर्भाव में रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-कोई पुगीवी या जलदाता कहते हैं । दूसरे कोई-कोई अंगों ( शत्रुओं ) और सात चक्रों ( राशियों ) से संयुक्त रथार यानमान सूर्यका 'भ्रमण' करते हैं — अर्थात्, वह युक्तों के दूसरे आधेमें रहते हैं । \*

१३ नियत परिवर्त्तमान पाँच शत्रुओं या अंगों (शत्रुओं) ने युक्त चक्रपर सारे भुवन विलीन हैं । उसका अक्ष प्रभूत भार-वहनमें नहीं थकता । उसकी नाभि सदा समान रहती है — कभी क्षीण नहीं होती ।

१४ समान नेमसे संयुक्त और अजोर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है । एक साथ इस ( पंच लोक-पाल और निषाद, माह्यग आदि पंच वण ) ऊपर मिलकर पृथिवीका धारण करते हैं । सूर्यका नेत्र-रूप मण्डल, पृष्ठजलमे, क्षिप गया — सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए ।

\* यद्यपि शत्रु हैं, परन्तु हेमन्त और शिशिरा एक काक, उन दिनों, "पञ्चशत्रु" भी कहनेकी परिपाटी थी । किसी-किसीके मतसे यहाँ 'प्राद' और 'दूसरे आध'का मतलब सूर्यके दक्षिणाधन और उत्तराधनसे है ।



साकज्ज नां समथमाहुरेकजं पांडुरमा श्रपयो देवजा इति ।  
 तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥  
 स्त्रियः सतीस्तां उमे पुंस आहुः पश्यदक्षएवान्न विचेतदन्धः ।  
 कार्ययः पुत्रः स ईमानिकेत यस्ताविजानात् स पितुन्पितासत् ॥ १६ ॥  
 अवः परेण पर एनावरेण पद्मा वत्सं विभ्रती गौरुदम्यः ॥  
 साकद्रोचीक सिद्धं परायात् कस्विन् सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥  
 अवः परेण पितरं यो अस्यानुदेह पर एनावरेण ।  
 कवीयमानः क इह प्रवोचद्देवं मनः कृतो अधिप्रजातम् ॥ १८ ॥  
 ये अर्वाञ्जस्तां उ परान् आहुर्ग एराञ्जस्तां उ अर्वा च आहुः ।  
 इन्द्रश्च या चक्रयः सोम तानि धृग न यु का रजसो वहग्नि ॥ १९ ॥  
 द्वा सुपर्णा समुज्जा स्वयाया समानं बभ्रुं परिपस्वजाने ।  
 तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वक्ष्यतश्नन्तन्यो अभिनाकशीति ॥ ० ॥

१५ आदित्यकी मन्त्रज्ञात श्रुतार्थ सतीतां ( जात नास गला ) श्रुत अगली है । अन्य छ श्रुतएँ जोड़ी हैं, गमनशाल है और देवोंमें उत्पन्न है । ये श्रुतएँ सबकी दृष्ट, स्थान-भरने पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेदसे विविध आकृतियोंमें संयुक्त है । ये अपने अविच्छिन्नांक दिने बारबार घूमती हैं ।

१६ किर्ण की दाढ़ी भी पुरुष है । जिन्हें ओख में वेदा यद्दाल सड़ने है, जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं । जो पुत्र मेवावो हैं, वही यद्द सफल पकते हैं । न यद्द अब तक समक सड़ने है; वे ही पिताके पिता हैं । ३

१७ वत्स, यजमान या अर्धकः पित्रोः नाग सामवत पेरने और सम्मुख-भाग पीछेके पैरमें धारण करते हुए गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपरकी ओर जाती है । वह कहीं जाती है ? किमत लिए आधे रास्तेसे लौट आवे ? कहीं प्रसव करती है ? दूधके दोष प्रपन्न नहीं करता ।

१८ जो अवःस्थित ( अंध ) अकालकका ऊर्ध्वस्थित ( मूर्ख ) के साथ और ऊर्ध्वस्थितको अवःस्थितके साथ उपासना करते हैं, वे ही मेवावाकी तरह आवरण करा हैं । अपने यद्द सब बातें कहीं हैं ? कहाँसे यह अलौकिक मन उत्पन्न हुआ है ?

१९ जिन्हें विद्वान् नाग अशामुख कहते हैं, उर्ध्वकी ऊर्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्ध्वमुख कहते हैं, उन्हें अशामुख भी कहते हैं । सोम, सुमने और इन्द्रने जो मण्डल बनाया है, वह युग-युक्त अथ आदिकी तरह विरवका भार वहन करता है । ५

२० दो पक्षी ( जीवात्मा और परमात्मा ), मित्रताके साथ, एक वृक्ष या शरीरमें रहते हैं । उनमें एक ( जीवात्मा ) स्वादु पिप्पलका भक्षण करना और दुष्प ( परमात्मा ) कुत भी भक्षण ( भोग ) नहीं करता, केवल दृष्टा है ।

३ सुधीकरण, उद्गरूप गम धारण करनेमें, स्त्रो और वृष्ट-जकका सेचन करनेसे पुरुष, कहाँतो हैं । वृष्टि-दानके कारण किरणें संसारके पिता हैं और सूर्य किरणोंके पिता हैं ।

५ दोनों मण्डल सूर्य और चन्द्र हैं । इनकी किरणें ऊर्ध्वमुख और अशामुख होती हैं ।

यथा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदधाभिरुचरन्ति ।  
 इनां विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमत्राग्निं वेश ॥ २१ ॥  
 यस्मिन् वृक्ष मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वं ।  
 तस्येदाहुः पिप्पहं स्वाह्वयं तन्नोन्नशद्यः पितरं न घेद ॥ २२ ॥  
 यद्गायत्र अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाह्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।  
 यद्वा अगज्जगत्याहितं पदं य इत्ताहिदुग्ने अमृतत्वमानशु ॥ २३ ॥  
 गायत्रेण ज्ञानमिमोति अकमकण सामत्रैष्टुभेन वाकम् ।  
 वाकेन वाकं द्विपादस्तुष्पादभरणे मिमन्ते सप्तवाणाः ॥ २४ ॥  
 रजता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं गणपश्यन् ।  
 गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततां महा परिगिन्ने जलित्वा ॥ २५ ॥  
 उपह्वये सुदुधां धेनुमेतां सुहस्ता गोधुगुत दो देनाम ।  
 श्रेष्ठं स्व सविता साविपनोभीक्षो धमस्तदपु प्रोचम ॥ २६ ॥

२१ जिनमें ( सूर्य, य मण्डलमें ) छन्दरगाँव रंगमयी, कतल्य जानसे, अमृतका अंश लेकर सदा जाती हैं और जा पोर भावसे, सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं, मेरा अपारपक्ष बुद्ध होनेपर भी मुझे, उन्हें ने, स्थापित किया । ॐ

२२ जिस ( आदित्य )-वृक्षपर जलमाहा (करण), रातको, बरानी ओं समाशके ऊपर, प्रातःकालमें, होसि प्रवेश करती हैं, वहानू लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं । जो व्यक्ति, पिता ( सूर्य या परमात्मा ) को नहीं जानता, वह इस फलका नहीं प्राप्त करता ।

२३ जो पृथिवीपर अग्निका स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवोंने, अन्तरीक्षमें, वायुको उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्वर्धन प्रदेशमें आदित्यका स्थान जानते हैं, वे अमृत त्व पाने हैं ।

२४ उन्होंने गायत्री छन्द द्वारा पूजन-मंत्रका सृष्टि का, अचना-मंत्र द्वारा सामका बनाया, त्रिष्टुप द्वारा द्वृच-तृच-रूप वाक्का निर्माण किया, द्विपाद और चतुष्पाद वचनके द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-याजना द्वारा सातो छन्दोंकी रचना की ।

२५ जगती छन्द द्वारा उन्होंने वाक्लोकमें वृष्टिको स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मंत्रमें सूर्यको देखा है । पण्डित लोग कहते हैं कि, गायत्रीक तीन चरण हैं, इसाक्षय गायत्री, माहात्म्य और आजस्वतामें, अन्य सबको लींच जाती है ।

२६ मैं इस दुग्धवती गौतो बुझाता हूँ । तूछ दुग्धनेमें निरुप व्यक्त उसे दूता है । इसी सामके अष्ट भागको सविता ग्रहण करें; क्योंकि उसमें उनका तेज प्रवृद्ध होगा । इस लय में उन्हे बुलता हूँ कि

ॐ मतलब यह कि, आदित्यन मुझे अपन मण्डलमें स्थान दिया ।

ॐ सायणने इस सूचाका एक अन्य प्रसारका अर्थ किया है, जिसमें अनुका अर्थ मेघ और गोधुक्का वायु या आदित्य कहा गया है ।



पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।  
 पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वान्तः परमं व्योम ॥ ३४ ॥  
 इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।  
 अयं सोमो वृष्णा अश्वस्य रेतो ब्रह्मार्थं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥  
 सप्तार्थगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णास्तिष्ठन्ति द्वादशा विधर्मणि ।  
 ते धातिभिर्मनसा ते विश्वतः पृथुः परिभवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥  
 न विजानाम यदिदमारम निरयः सन्नद्धो मनसा चराम ।  
 यदा मागन प्रथमजा ऋतस्यादिताक्षो अश्ववे भागमस्याः ॥ ३७ ॥  
 अपाङ्गमुत्तं सध्या गृमातामर्त्यनिर्देना स्यामिनः ।  
 ता शश्वन्ता विपुत्राता विद्यन्तान्ययं चक्रयुण निचक्रयुरन्यम् ॥ ३८ ॥  
 ऋचो अक्षरे परमे व्यामन्यस्मिन्देवा आधच्छ्वे पिबुः ।  
 यस्तन्न वेद किमुवा काप्यात य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

३४ मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवीका अन्त कहीं है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसारकी नाभि ( उत्पत्ति-स्थान ) कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, सेवन-समर्थ अश्वका रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्योंका परम स्थान कहाँ है ?

३५ यह वेद ही पृथिवीका अन्त है, यह यज्ञ ही संसारकी नाभि है, यह सोम ही सेवन-समर्थ अश्वका रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् वक्ता परम स्थान है ।

३६ सात क्रियाएँ आधे वर्षतक गर्भ धारण या वृष्टिको उत्पन्न करके तथा संसारमें रेतः-स्वरूप या वृष्टिदान द्वारा जगत्का सारभूत होकर विष्णु या आवित्यके कार्यमें नियुक्त हैं । वह जाता और संप्रतर्णामी है । वह प्रज्ञा द्वारा, भीतर-ही-भीतर, सारे जगत्को व्याप्त किये हुए है ।

३७ मैं यह हूँ कि, नहीं- मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं अज्ञ-चित्त हूँ, अतही तरह आबद्ध होकर निश्चितचित्त रहता हूँ । इस समय ज्ञानका प्रथम उन्मेष होता है, उसी समय मैं वाक्यका अधः समझ सकता हूँ ।

३८ नित्य, अनित्यके साथ एक स्थानगः रहता है; अन्वय्य शरीर प्राप्त कर वह कभी अघोरेण और कभी ऊर्ध्वदेशमें जाता है । वह सदा एक साथ रहते हैं, इस संसारमें स्वप्न एक साथ जते हैं; परलोकमें भी, सब स्थानोंपर, एक साथ जाते हैं । संसार इनमें एकको ( अनित्यको ) पहचान सकता है—दूसरे ( अन्तः ) को नहीं ।

३९ सारे देवता महाकाशके समान मन्त्राक्षरोंपर उपवेशन किये हुए हैं—इस बातको जो नहीं-जानता, वह ऋचासे क्या करेगा ? इस बातको जो जानता है, वह छलसे रहता है ।

सृष्टवसान्मगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।  
 अद्धि तृणमध्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥  
 गौरीमिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।  
 अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमं व्योमम् ॥४१॥  
 तस्याः समुद्रा अधिविक्षन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।  
 ततः क्षात्यक्षरन्तद्दिशमुपजीवति ॥४२॥  
 शक्यमयं धूम्रमादपश्यं विप्लवता पर पला वरेण ।  
 उक्षाण पृश्निपचन्त वीरास्त्वानि धर्माणि पथम न्यासन् ॥४३॥  
 त्रयः केशिन ऋतुथा चितक्षन् सवसरे वपन एक एषाम् ।  
 विश्वमेकां अविष्टां शचीमध्याह्निकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥  
 नृत्नारि वाक्परिमिता पद नि ताति विद्वद्वाङ्मया ये मनीषिणः ।  
 गुणा त्रीणि निहितानि ज्ञयन्ति तुरीयं ता नी मनुष्या चन्दन ॥४५॥

४० अहममीया गो ! शोभन शब्द, तृण आदि का भक्षण करा और योगेष्ट सुगन्धभी करो । ऐसा करनेपर हम भी प्रभूत बनवासे हो जायेंगे । सदा तृण चरो और सर्वत्र घूँते हुए निर्मल जलका पान करो ।

४१ मेघनाद-रूपिणी और अन्तरीक्ष-विहारिणी वाक्, तृष्ट-जलकी सृष्टि करते हुए, शब्द करती है । वह कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदी होता है । कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमिता होकर, अन्तरीक्षके ऊपर स्थित होकर, शब्द करती है । ॐ

४२ इसके पाससे सारे मेघ वषा करते हैं, उन्नीसे चारा दिशाओंमें आश्रित सूर्योंकी रक्षा होती है । इसीसे जल उत्पन्न होता और जलसे सारे जीव प्राण धारण करते हैं ।

४३ मैंने पास ही सूखे गात्रमें उत्पन्न धूम्र देखी । चार दिशाओंमें व्याप्त निकट धूमके बाद अग्निको देखा । वीर या शक्तिवत् लोग शुद्ध वर्ण वृष या पल्लवता सामका पक करते हैं । उनका यही प्रथम अनुष्ठान है ।

४४ केश-युक्त तीन व्याक्त ( अग्नि, अक्षय, वायु ) वपन बोध, यथावयव, भूतका परिक्षण करते हैं । उनमें एक जन पृष्ठवोका क्षारकम करते हैं, दूसरे अपन कार्य द्वारा पराधान करते हैं और तीसरेका रूप नहीं देखा जाता, केवल गति देखी जाती है ।

४५ वाक् चार प्रकारकी है । मेधावी योगी इसे जानते हैं । इसमें तीन गुहामें निहित हैं, प्रकट नहीं हैं । चौथे प्रकार की वाक् मनुष्य बोलते हैं । x

ॐ केवल मेघमें रहनेपर एकपद, मेघ और अन्तरीक्षमें द्विपदा, चार दिशाओंमें चतुष्पदी और चतुर्वक् दशा चतुष्कोणमें रहनेपर अष्टपदी एवं इनके साथ उदुप्यदिशाको मिलनेपर नवपदी नाम पड़ता है ।

x मंथ, कल्प, माह्य, कौकिक या परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वेखरी आदि चार वाक् हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर्था दिव्यः स सृपणो गह्वरमान ।  
 एकं सन्निधा बहुधा वदन् यज्ञं यमं मतरिश्वाणम हुः ॥४६॥  
 कृष्णं नित्यान्तर्यः सृपणो अपोवसाना दिवमुत्सन्ति ।  
 त आचवृत्रन्तुपदं नृवरुणादिजृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥  
 द्वादश प्रथमश्रकोकं त्रीणि नभशानि क उतश्चिकेन ।  
 तस्मिन्नात्माकं त्रिगतं न शङ्कोर्पिताः यष्टिर्न चलाच्चलासः ॥४८॥  
 यस्ते स्वतः शशया यो न भोभूयन्ति शिवा पुष्यसि चार्वाण ।  
 यो रत्नया चतुर्ययः सुदत्रः काशरानि तमिह ध्यातवे कः ॥४९॥  
 यज्ञेन यजयजन्त देवाभ्यन्ति धर्माणि प्रथमाभ्यामन् ।  
 ते ह नाकं प्रदिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साधयाः सन्ति देवाः ॥५०॥  
 समानेनैतद्गुरुमुच्येत चादमिः ।  
 भूमिं पर्वत्या जित्वन्ति दिवं जित्वन्त्यग्रयः ॥५१॥

४६ में मित्र और वरुण और अग्नि कहा करत हैं। यह स्वर्गीय, पक्षबाले (गन्धर्व) और सृपण गहनबाले हैं। यह एक हैं, तो भी इन्हें अनेक कहा गया है। इन्हें अग्नि, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।

४७ सृपण गहनबाली और जल-हारिणी सूर्य-करण कुण्डलण और नियत-गति मेघको जलपूर्ण करते हुए आकाशमें गहन करते हैं। वह वृष्टि के स्वातन्त्र्य नीचे आती हैं और पृथिवीको अकसे, अच्छी तरह, भिगोती हैं।

४८ बारह परिवर्ति (राहियाँ), एक वर्ष (वर्ष) और तीन सामियाँ हैं। यह बात कौन जानता है? इस वर्ष (वर्ष) में तीन सौ सा उभर या सूखे हैं।

४९ सरस्वती, इन्द्राग्ने शरीरमें रहनेवाला ज गुण संसारके सुखका कारण है, जिससे सारे धरणीय धनोंकी रक्षा करती हो, जो गुण बहुलताका आधार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो वरदानकारी है, इस समय हमारे धामके लिये इसे प्रकट करो।

५० देवी वा यजमानोंन यज्ञ या अग्नि द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि वही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाशमें एकत्र है, जहाँ पहलेसे ही साधन या देवता हैं।

५१ एक एक ही तरहका है; कभी ऊपर और कभी नीचे आता-आता है। प्रसन्नता-द्वारा मेघ भूमिको प्रसन्न करते हैं। अग्नि आकाशको प्रसन्न करते हैं।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शनमोपधोनाम् ।  
अभीपतो वृष्टिमिस्तर्पयन्त सारस्वन्तमग्ने जोहवीमि ॥५२॥

२३ अनुवाक । ११५ सूक् । इन्द्र देवता । यहाँ १११ सूक्तों तक के ऋषि अगस्त्य हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इस सूक्त में इन्द्र, मरुत और अगस्त्य की बातचीत है । इस ५ तमारे पाँचवें, सातवें और नवें मंत्र मरुत के वचन हैं; इसलिये उनके ऋषि मरुत हैं । तीनों के ऋषि अगस्त्य हैं । अर्वाचिष्ट के ऋषि इन्द्र हैं ।

कया शुभा सवयसः सनीलः समान्या प्रहृतः संमिमिधुः ।  
कया मतो कुन एतास एतेर्चन्ति शुभं वृषगो वसू ॥१॥  
कस्य ब्रह्मा ण जृत्पुयुवानः को अधारे मरुत आचरते ।  
श्वेनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महामनसा रोरमाम ॥२॥  
कुतस्त्वमिन्द्र मादिनः सन्नेको यासि सव्यते किम्न इत्या ।  
संघृच्छसे समगणः शुमानैव च तन्नो हरिषो यत्नं अस्मे ॥३॥  
ब्रह्मा ण मे मनयः शंसुतासः शुष्म इयर्नि प्रभृतामे अद्रिः ।  
आशासते प्रतिहयन्तु कथमेमा हरो बहनस्तानो अच्छ ॥४॥

५२ सूक्तदेव स्वर्गाय छन्द गानवाग्ने, गमनशील, एकपद, जलक गर्भोन्मादक और आर्वाचिष्ट के प्रकाशक हैं । वह वृष्टि द्वारा जलाशयका तृप्त और नदी की पालित करते हैं । रक्षक लिये उन्हें बुलाता हूँ । ५

१ (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत लोग सर्व-साधारण की तुल्य शोभासे युक्त होकर पृथिवीपर सिञ्चन करते हैं । मन में क्या सोचकर वे, किस देशसे, आये हैं ? आकर जलधर्षण-गण, घन-लाभको इच्छासे, क्या वक्री अर्चना करते हैं ?

२ सव्यवयस्क मरुदुगण किसका इच्छा ग्रहण करते हैं ? वे अन्तरीक्षचारी श्वेन पक्षीकी तरह हैं । यज्ञ में उन्हें कौन हटा सकता है ? कैसे महास्तात्र द्वारा हम उन्हें आमन्त्रित करें ?

३ (मरुदुगण) हे साधुपालक और पूज्य इन्द्र, तुम अकेले कहीं जा रहे हो ? तुम क्या ऐसे ही हो ? हमारे साथ मिलकर तुमने ठीक ही पूजा है । हरि-वाहन, हमारे लिये जो वक्तव्य है, वह भीते बचोते रहो ।

४ (इन्द्र) सारा इच्छा मेरी है; सारी स्तुतियाँ मेरे लिये सुबकर हैं; प्रसन्नता मेरी है । मेरा मजबूत वज्र, कैंके जागेवर, अवर्ष होता है । यजमान काँग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋद्ध-मंत्र मुझे ही चाहते हैं । ये हरि नामके दोनों बोक, इच्छा-लाभके लिये, मुझे दाने हैं ।

५ इस सूक्त के सारे मंत्र अध्वर्य में भी पाये जाते हैं; इसलिये बहुतांश मत है कि, यह सूक्त ऋग्वेद के बननेके अनन्तर रचा गया है ।

अतो वयमन्तमेभिर्युक्ताः स्वभक्तमिरतन्वः शम्भम नाः ।  
 महाभिरैर्ना उपगृह्णहे । नान्द्र स्वधामनु हि ना बभूव ॥१॥  
 क स्यावो मरुतः स्वधालीयन्मामेव समवत्ताहि हत्ये ।  
 अहं ह्यप्रसूयिष्यन्नुविष्मन्निशान्य शत्रे रनमं वधम्नैः ॥६॥  
 भूति चकर्थ युज्योभिरस्मे समानेभिर्युषम पौंस्यभिः ।  
 भूयोणि हि कृणवामा शशिष्ठन्द्र कथा मरुतो यदशम ॥७॥  
 दधो वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भासेन तविषो बभूवान् ।  
 अहमेता मनघे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर घञ्जवाहुः ॥८॥  
 अनुत्तमा ते मघान्नकनं न त्वायाँ अस्मि देवता विद्वानः ।  
 न जायमानो नशने न जाना यानि कणिष्ठा कुम्हि प्रवृत्र ॥९॥  
 एकस्य तन्मे विन्वस्ताजो या नु दधूयान् कृण्वे मनोषा ।  
 अह ह्यग्रा मरुतो विद्वानो यानि चयवमिन्द्र इवाश पयाम् ॥१०॥  
 अम-दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे तरः श्रुत्यं ब्रह्मनक ।  
 इन्द्राय वृष्ण सुमन्त्राय गहां सख्ये सम्वायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

५ ( मरुदुगाण ) इसीलिये हम महाभक्तों अपने शरीरों को अलंकृत करके, निकट-तर्को और बली अवस्थों में युक्त होकर, यज्ञस्थानमें जानेके लिये शीघ्र ही तयार हुए हैं । तुम रेत या बलके साथ हमारे साथ ही रहो ।

६ ( इन्द्र ) मरुतो, अहं या वृत्रासुरक बचके समय मेरे साथ रहनेका तुम्हारा हंग कहीं था ? मैं जब बलिह माहात्म्यवाला हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओंका, बध द्वारा, परास्त किया है ।

७ ( मरुदुगाण ) अभीष्ट-वर्षा इन्द्र, हम समान पौरुष वाले हैं । हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है । बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है । हम मरुत हैं, इसलिये कार्य द्वारा हम वृष्टि आदिको कामना करते हैं ।

८ ( इन्द्र ) मरुतो, ऋषिके समय विशाल पराक्रमी बनकर, अपने वाहुबलसे, वृत्रको पराजित किया है । मैं वज्र-वाहु हूँ । मैं मनुष्यके लिये सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर वृष्टि किया करता हूँ ।

९ ( मरुदुगाण ) इन्द्र, तुम्हारा सभी कुछ उत्तम है । तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है । अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कसौट्य कर्मोंको किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है ।

१० ( इन्द्र ) मैं अकेला हूँ । मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, प्राप्त कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं वज्र और विद्ववान् हूँ एवं जिन घनोंका मुझे पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ ।

११ मरुतो, इस सम्बन्धमें तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है । मैं अभीष्टवक्र-दाता, ऐश्वर्यदाता, विभिन्न कर्षोवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ ।



एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।  
 संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥  
 कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्रायानत सखो रच्छा सखायः ।  
 मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत त्वेदाम ऋतानाम् ॥१३॥  
 था यद्वदु नस्याद वसे न कारुस्माञ्जके मान्यस्य मेधा ।  
 ओषन्तं मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्मार्णि जरिता घो अर्चन् ॥१४॥  
 एयः वः स्तामो मरुत इयं गार्मान्दार्थस्य मान्यस्य कारोः ।  
 एषा यासोष्टः तन्ये वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

१२ मरुतो, तुम सानके रगके हा । मेरे लिये प्रसन्न होकर द्रव्य कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अच्छी तरहसे प्रकाश और तेज द्वारा आच्छादित किया है । मुझे आच्छादित करो ।

१३ ( अगस्त्य ) मरुतो, कान मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है ? तुम उसके मित्र हो । तुम यजमानके सामने आओ । मरुतो, तुम मनोहर घनकी प्राप्तिके उपाय-भूत बनो और सत्य कर्मको जानो ।

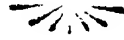
१४ मरुतो, स्तोत्र द्वारा परिचरण-ममर्थ, स्तुत-कृपा और मान्य श्रुतिवशकी बुद्धि, तुम्हारी सेवाके लिये, हमारे सामने, आती है । मरुतो, मैं मेधावी हूँ । मेरे सामने आओ । तुम्हारे प्रसिद्ध कर्मको लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पूजन करता है ।

१५ मरुतो, यह स्तोत्र और यष्ट स्तुति मानवीय और प्रसन्नतादायक है अथवा मान्य मान्य कबिकी है । यह शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास जाता है । हम अन्न, वस्त्र और शिव अथवा जय, शोक और दान पावें ।

### तृतीय अध्याय समाप्त



## चतुर्थ अध्याय



१६६ सूक्त । मरुदुगण देवता । अगस्त्य ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तन्नु वोचाम रमसाय ऊज्जने पूर्णं महित्वं वृषमस्य येतवे ।  
 एधेव यामन्मरुस्तुविष्णवे यु । । शक्रास्नादिपि कर्तन ॥१॥  
 नित्यं न स्रुते मधुं भुतं न काशान् क्रोडा विदथपु पूजयः ।  
 मध्वन्त रुद्रः अहसा नमामन्त न मधोन्त न तत्सा हविष्कृतम् ॥२॥  
 यस्मा ऊमासो अमृता अरास्त रायस्पाप च हविषा ददशुषे ।  
 उक्षन्त्यस्मै मरुतो हता इव पुरु रजो स पयसा मये भुवः ॥३॥  
 आ ये रसास्त हविषाभिरव्यत प्र व एवासा स्वयता नो अध्रजन ।  
 मयन्ते विश्वं भुजन्ति हव्या निन्ना वो यामः प्रयत्नः सृष्टिषु ॥४॥  
 यत्त्वेपयामा नश्यन्त पथेनान्दवा या पृष्ठं नरा अचुक्ष्वः ।  
 विश्वो वो अजमभयने मनस्वना रथायन्ताव प्रहिता आपयिः ॥५॥

१ छल-वर्षक यज्ञक समर्पादनक लि। मरुतोंके यात्रा आकर अवस्थित होनेके लिए, उनके पवित्र पूर्वतन माहात्म्यको कहता हूँ । हे विशाल ध्वनिसे युक्त और पथ कार्योत्त रमयी मरुदुगण, तुम्हारे यज्ञ स्थलमें जानेके लिये प्रस्तुत होनेपर ऐसे समिधा तजसे आवृत होता है, वैसे ही तुम लोग युद्धमें जानेके लिये प्रभूत बल धारण करो ।

२ औरस पुत्रकी तरह प्रिय-मधुर हव्य धारण करके उपयुक्तो मरुदुगण, प्रसन्न चित्तसे, यज्ञमें क्रीड़ा करते हैं । विनीत यजमानका रक्षाके लिये रुद्रागम मिलता है । उनके बल उनके अवीर्य है; यकना यजमानको क्षेय नहीं होते ।

३ जिस हविर्गता यजमानको अनुतिसे प्रमन्न होकर सर्व रक्षक, अमर और सुवर्त्पादक मरुदुगण परपट बन होते हैं, उसी यजमानके हितकारी सहायक तज प्रभु लोग यमन्त सन्तारकी आखी तर सा चले हा ।

४ मरुतो, तुम्हारे शरवगण, अपने बलसे, पागे सारहा अमर बनते हैं; वे अपांदा रूपसे युक्त होकर जाते हैं । तुम्हारी यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है । हविषार उद्यानपर जो लोग संस्कार करते हैं, ऐसे ही पागे भुवन और अङ्गाङ्ग-कार्य, तुम्हारे यात्रा-कार्यमें, डरती हैं ।

५ मरुतोंका गमन अत्यन्त प्रदीप्त है । वे जिस समय गिरि-पर्वतोंको ध्वस्त करते हैं अथवा मनुष्योंके हितके लिये अन्तर्गोक्षके उपरी भागमें चढ़ते हैं, इस समय उनके पथके लिये वनस्पात, डरक मारे, व्यकुल हो जाते और रथा-रुद्रा स्त्रीकी तरह ओषधियाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चला जाता है ।

द्यं न उग्रा मरुतः सुचेतनाग्निष्टग्रामाः सुमतिं विपर्तन ।  
 यत्ता वो दिद्युद्भूतिं किंचिददी रिणाति एश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥  
 प्रस्वस्मदेष्णा अनचभ्र राधसोलातृणासो विदधेपु सुष्टुताः ।  
 अर्चन्त्यर्कं म दस्व पीतये विदुर्हो स्व प्रथमानं पौंस्या ॥७॥  
 शतभुजमिस्तमभिहृतेरघ न पुर्भोरक्षता मरुतो यमावत ।  
 जन यमुग्रारतवस्वो निर प्शनः पथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥  
 विश्वानि मद्रा मरुतो रयेषु वो मिथस्पृश्ये तयिप एयाहिता ।  
 संस्पृश्यावः प्रपथेपु स्वादराक्षोवश्च हा रुमया विषावृते ॥ ९ ॥  
 भूरीणि मद्रा नर्येषु व हुग रक्षःसु रुक्मा रमसासो अज्रयः ।  
 अस्पृचेताः पावु भुरा अधिवया न पक्षन्त्यनुश्रयो धिरो ॥१०॥  
 महा तो महा वेमो भूतो दूदृगो ये दिव्या इव स्तुभिः ।  
 मन्द्रा सुजहः स्वर्गता नामाभिः समिष्टला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११॥  
 तद्वः सुजता मरुतो म त न दीर्घ वो दत्रम दनेरिव वाम् ।  
 इन्द्रश्चन त्यजसा विहृणा त रजताय यरुमे सुकृते अगध्वम ॥१२॥

६ उप मरुतो, सुनु इके साथ, तुम लोग अधिक होकर, हमें सुन्दर प्रदान करो । जिस समय तुम्हारे लेपणील और दन्त-विशिष्ट विद्युत् दशन करती है, उस समय, सुलक्षित हैत ( अस्त्र-विशेष ) की तरह, पशुओं को नष्ट करती है ।

७ जिनका दान अविश्व है, जिनका धन अग्र-राशन है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनकी स्तुति सगीत है, वे मरुतगण, सोमके पानके लिये, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्रकी प्रथम वीर-कृति जानते हैं ।

८ मरुतो, तुमने जिस व्यक्तिको कुटिल-स्वभाव पापसे बचाया है, हे तप और बलवान् मरुतगण, तुमने जिस मनुष्यको पुत्रादि-पुष्टि-माधन द्वारा, 'नन्द' से बचाया है उसे अस्त्र-यंत्र वस्तुओं द्वारा प्रतिपालन करो ।

९ मरुतो, सारे कलगाणवाही पदार्थ तुम्हारे रथपर स्थापित हैं । तुम्हारे स्कन्धदेशमें परस्पर रूपदात्राले आयुध हैं । तुम्हारे लिये, विश्वाम-स्वान्तर, स्व घ तैयार है । तुम्हारे सारे वज्र-अक्षके पास घूमते हैं ।

१० मनुष्योंको हिनकागिणी भुजाओंपर मरुतगण अनन्त कलगाण-माधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्वलमें काचित-युक्त और सुन्दर-रूप-युक्त मानका भूषण धारण करते हैं । स्कन्धदेशमें इवे वर्णकी काला धारण करते हैं । वज्र-सदृश आयुधपर क्षु धारण करने हैं । जैसे पक्षिर्वा पक्ष धारण करती हैं, वैसे ही मरुतगण ओ धारण करते हैं ।

११ जो मरुतगण महान्, मदिमान्वित, विभूतिमान् और आकाशस्थ नक्षत्रोंकी तरह दूरमें प्रकाशित हैं, जो प्रपन्न हैं, जिनकी जीम सुन्दर है, जिनके मुखसे शब्द होता है, जो इन्द्रके सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे वज्र-स्वलमें आवें ।

१२ सञ्जात मरुतगण, तुम्हारा माहारम्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अधिकिते व्रतकी तरह अविच्छिन्न है । तुम जिस पुण्यात्मा यजमानको दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कृतिकता नहीं करते ।

तथा जामेघं मरुतः परे युगे पुरु यच्छसममृतास आवत ।  
 अयाधिया मनवे ध्रुष्टिमाव्या स्यात् नरा दमनराचक्रिरे ॥१३॥  
 येन दार्ध मरुतः शुशाम पुष्प केत परीणवा पुषासः ।  
 आयत्ततनन् वृजने जनास एमियज्ञ निस्तदमी ष्टिमश्याम् ॥१४॥  
 एष वः स्तोमा मरुत इयं गोमन्दिर्यस्य मान्यस्य काराः ।  
 एषा यासाष्ट तन्वे वयां विद्यामेयं वृजन जारदनुम् ॥१५॥

१६० सूक्त । १ म मंत्रके देवता इन्द्र; अश्विष्टके मरुत् । अष्टपु छन्द ।

सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः सहस्राः पा हरिवा गूतमाः ।  
 सहस्रं भाया इन्द्रोतयो नः सहस्राः पा हरिवा गूतमाः ॥१॥  
 आ नीधोमरुता यन्त च्छा उमेष्टभिषां वृहद्विदेः सुमायाः ।  
 अथ यदेपां निरुत परमाः ससृष्टस्य जिज्ञान्यन्त वारे ॥२॥  
 मिश्रयध येपु सुधिता घृत की मरुत निणिगुपान क्रष्टिः ।  
 गुप्तामरुन्ती मनुषी न धीपा सभास्ती निष्ठोव सं वाक ॥३॥

१३ मरुदगण, पुष्प की मिश्रता पसिद्ध औचित्यपूर्ण है । अमर हावर दुन लोग हमारी स्तुतिकी मली भाँति रक्षा करते हैं । अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्योंकी स्थातिकी रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर, कर्म द्वारा सब जान जाते हैं ।

१४ देववान् मरुतो, हमारे महान् आगमन-पर हाथी धर्म-कर्तव्यज्ञों वक्षित करते हैं । उनके द्वारा युद्धमें मनुष्य विजयी होता है । इन सब राजाँ द्वारा मैं तुम्हारे शुभायमन प्राप्त कर सकूँ ।

१५ मरुतो, कवि मारय मारुतका यह स्तोम तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है, इच्छानुसार इसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है । इस की शक्ति, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम हजारों तरहसे रक्षा करो । तुम्हारी रक्षाएँ हमारे पास आये । तब हम सब अवधाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहके प्रदत्तनीय वस्तु हैं; वह हमारे पास आये । इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहका वन है । हमारी कृष्टिने लिये वह हमारे पास आवें । हजार वापार हमारे पास आये ।

२ आश्रय देनेके लिये मरुदगण हमारे पास आये । एतुष्टि मरुदगण सम्पन्न और मत्तादीति-संयुक्त घनके साथ हमारे पास आये; क्योंकि उनके निरुत नामके तादृष्ट रूप मरुदके उस पार भाषन धारण करने हैं ।

३ सुव्यवस्थित, जल-वर्षक और सुवर्णगर्ण मरुत मेघमालाकी तरह अवका निगूढ म्यानमें अवस्थित मनुष्यकी भार्याकी तरह अथवा कही गयी यक्षीय वाणीकी तरह इन मरुतोंके साथ मिलता है ।

परा शुभ्रा अयासो यस्या साधारण्येव मरुतो भिमिधुः ।  
 न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुपन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥  
 जोद्यपदीमसूर्या सवध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।  
 आ सूर्ये विषो रथंग रथेप्रतीका नभसा नेत्या ॥५॥  
 आस्थापयन्त युवति युवानः शुभ रिमिशं विदेषु पद्मार् ।  
 अर्को यक्षो मरुतो हर्षिष्यान्नायन्न रथं सुत नाम दुःस्मिन् ॥६॥  
 प्रतं विवक्षिम वक्ष्यो य एषां मरुतां महिमा स योः आन्त ।  
 सखा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिता विजनीबद्धे सुभागाः ॥७॥  
 दान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।  
 उत्तच्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुता दातिवारः ॥८॥  
 नदीनुवो मरुतो अन्त्यस्मे आगन्ताश्चच्छस्तां अन्तपापुः ।  
 ते धृपुना शशसा शूशुवांसोर्षो न द्वपा धृपता परिष्टुः ॥९॥  
 वयमद्येन्द्राय प्रेष्टा वयं इक्षो वं चेमह सूर्य ।  
 वयं पुरा महि च नो अनुयन्तन्त ऋभुषा नरामनुष्टान् ॥१०॥

४ साधारण स्त्री की तरह आलिङ्गन-परायण। बल्लूके साथ दूआरण, अतिगमनशील और उत्कृष्ट मरुतों में मिलते हैं। मयङ्गर मरुतों का घाव पृथिवी को नहीं हटते। देवता लोग, मैत्री के कारण, उनकी समृद्धि का साधन करते हैं।

५ अक्षर (मरुता) को अपनी पत्नी राक्षसी या बिजला आलुङ्गित कर मरुतों को मनाने मरुतां सगमके क्रिये उनकी सेवा करता है। जैसे सूर्य अश्विनोक्तमरुतां के रथपर चढ़े, वैसे ही प्रदीप्तावयवा राक्षसी बिजल मरुतां के रथपर चढ़कर शीघ्र जाती है।

६ यज्ञ आरम्भ होने पर, वृष्टिदान के क्रिये, तद्वग वयस्क दक्षी रोदसी को रथपर बैठाते हैं। बलवती रोदसी निबमानुकुप, उनके साथ मिलती है। उसी समय अर्धेन-अन्न युक्त, इव्यदाता और सोमाभिषेककारी यजमान मरुतां की सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७ मरुता की महिमा सबको प्रशंसनीय और अनोख है। मैं उनका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वरुण भिला-विणी, अहंकारिणी और अविनाशवरा है। यह सोमाभ्युषण की और उत्पत्ति लक्षणों के धारण करती है।

८ मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञ को निरुद्ध करते बचाते और उत्पत्ति अयन्य पद्यों का विनाश करते हैं। मरुता, पुम्हारे जल देने का समय जब आता है, तब वह मेघों के बीच संघन जल को वर्षा करते हैं।

९ मरुतो, हमारे बीच किसीने भी, अत्यन्त दूरसे भी, दुम्हारे बल का अन्त नहीं पाया है। दूरों को परास्त करने-वाले बल के द्वारा बढकर, जलराशिकी तरह, अपनी शक्त से शत्रुओं को विजित करते हैं।

१० आज हम इन्द्र के प्रियतम होंगे, यज्ञ में उनकी महिमा गावेंगे। हमने पहले इन्द्र का माहात्म्य गाया था और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिये महान् इन्द्र मनुष्यों में हमारे लिये अनुकूल हों।

एष चः स्तोमो मरुत इय गोर्मान्दायस्य मान्यस्य कारोः ।

पया यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीर्दानुम् ॥ ११ ॥

१६८ सूक्त । मरुद्गण वेदता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यज्ञायज्ञा घः समना तुनुर्घणिगियन्धिघं वो देवयाउ दधिध्वे ।

आ वोवांचः सुतिनाय रोदन्धोमहे वृत्रागमवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

वद्या-नो न ये स्वजाः स्वमवस इप स्वर भेजायन्त धूनयः ।

सहस्रिणामो अं नोर्मय आसा गावो वद्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

सोमापो न ये सुनास्वतांगया ह्यमु पंतासो दुवसो नासने ।

पेयामं-पु रश्मिणाव रास्मे हस्तेषु स्वादिश्च कृतिश्च सन्दधे ॥ ३ ॥

अव स्यक्ता दिव आवृथा स्यु-मर्त्याः कशया चोदत त्मना ।

अणेगस्तुगिघाता अचुचावुः हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

को वोन्त-रुन ऋ प्रविद्यु नो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इपां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नेनशः ॥ ५ ॥

११ मरुतो, वसि मार्गकी यह स्तुति तुम्हारे लिये है । इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है । इस मो अन्न, बल और दीर्घायु पर्वे ।

१ मरुतो, सारे यज्ञोंमें ही तुम्हारा समान भगवा है । अपने सारे कर्मोंको, देवोंके पास ले आनेके लिये, प्रार्थन करते हो; इसलिये छावापृथिवीको मलो भाँति, रक्षा करनेके लिये, उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा, तुम्हें, अपनी ओर आनेके लिये, बुलाता हूँ ।

२ स्वयं उत्पन्न, स्वाधीनबल और कम्पनशील मरुद्गण मानों मूर्तिमान् होकर, अन्न और स्वर्गके लिये, प्रकट होते हैं । असंख्य और प्रवासनीय धेनु जमे दूध देती है, वेमे ही, जन-नरङ्गके समान, वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं ।

३ सु-संस्कृत शाखावाली सोमलता, अभिपुत और पीत होकर, जेसे हृदयके बीच पत्रिचारिकाकी तरह कार्य करती है, वेमे ही ध्यान किये जानेपर मरुद्गण भी करते हैं । उनके अंस-देशमें, स्त्रीकी तरह, आयुष-विशेष आश्रित्य करता है । मरुतोंके हाथमें हस्तप्राण और कर्तन है ।

४ परस्पर मिले हुए मरुद्गण, अनायास, स्वर्गसे आते हैं । अमर मरुतो, अपने ही वाक्पत्तोंसे हमारा अस्त्राह बढ़ाओ । निष्पाप, अनेक यज्ञोंमें प्रादुर्भूत और प्रवृत्त मरुद्गण दृढ़ पर्वतोंको भी कम्पित कर देते हैं ।

५ आयुष-विशेष या मुत्र-लक्ष्मीसे सशोभित मरुद्गण, जेसे जीम दोनों जवर्गको चालित करती है, वेमे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है । तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो । जेसे जलवर्षों मेघ परिचालित होता है, जेसे दिनमें मेघ चालित होता है, वेमे ही बहुफलेच्छु यजमान, अन्न-प्राप्तिके लिये, तुम्हें परिचालित करता है ।

क शिवदस्थ रजसो महस्परं काशरं मरुतो यस्मिन् नायय ।  
 वच्छाद्यथ विधुरेः संहतं सद्रिगाद्यथ त्रेपमर्गाम ॥ ६ ॥  
 भातिर्न गोमवती स्वर्वती नवदा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।  
 भद्रा वीरातिः पृथ्वी न दक्षिणा पृथ्वी असुर्येन नृञ्जरी ॥ ७ ॥  
 प्रतिष्ठामन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदाभ्रयां वानमुदीरयन्ति ।  
 अवस्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदाभ्रुतं भरुतः प्रवृण्वन्ति ॥ ८ ॥  
 असूत पृश्निर्महतेरणाथ न्वेपमयासां मरुतामनाकम् ।  
 ते सपत्नरासो जनयन्ताम्यम दिन् स्वधामिपिपां पयेष्यन् ॥ ९ ॥  
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गोमान्दर्यस्य मान्यस्य काशोः ।  
 एषा वासोष्टन्वे वयां विद्यामिपं वृजन्तं जायमानम् ॥ १० ॥

६६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और विष्टुप् छन्दः ।

महश्चिन्वमिन्द्र यत एतामहाश्चदस रजसो वरुता ।

स ना नेधो मरुता निक्कयान्मुमुसा ननुष्व जयति प्रेष्ठा ॥ १ ॥

६ मरुतो, जिस जन्म लिये तुम होते हो, उन विशाल पृथ्वी-ऊपर अदि आर अस्त कहाँ है ? शिथिल तृणकी तरह जिस समय तुम प्रवेशक गिरते हो, उन समय वज्र द्वारा आप्तमान मघका विकर्ण करते हो ।

७ मरुतो, जैसा तुम्हारा घन है, वैसा ही जल भी है । शरके सम्बन्धमें तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं । उसमें सुख और दोष है । उसका फल परिशुद्ध है । उसमें कृषि-प्राप्त भागमाल प्राप्त है । वह दक्षिणा की तरह शीघ्र फल-दाता है । वह असुरकी जयपाल शक्त की तरह है ।

८ जिस समय वज्र मेघ-प्राप्तुन शब्द उच्छ्वारित करते हैं, उस समय उनमें क्षरणशील जल परिचालित होता है । जिस समय मरुद्गण पृथिवीपर जल मेघन करते हैं, उस समय पृथ्वीपर प्रकट होती है ।

९ पृश्निने महासंप्रसाध लिये प्रदीप्त वामन-युक्त मरुद्गण को प्रसव किया है । समान रूपवाले मरुतोने जल उत्पन्न किया है । इसके पश्चात् संसारने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है ।

१० मरुतो, कवि मान्य मान्दर्यका वह स्तोत्र तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है । अपने शरीरकी पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आता है । हम भी अन्न, दल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो, क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतोका परित्याग नहीं करते । हे मरुतो, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो । वह सुख प्रियतम है ।

अयुजन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विद्वानां । नव्ययो नव्यता ।  
 मरुतां पुन्युत्तर्हसमाना स्मर्माह्वय प्रथनस्य स्मर्ता ॥ २ ॥  
 अभ्यवमान इन्द्र ऋष्टिस्ममेस्ममेस्ममेस्म मरुतो जुगन्ति ।  
 अग्निश्चिच्छिप्मानं शुक्रानापो न ह्यपं दधति पयोमि ॥ ३ ॥  
 त्वन्तु इन्द्र तं विद आशुष्ठया दक्षिणयव रातिम ।  
 स्तुतश्च धरते चकन्त जाताः स्तन न मधः पीयन्त वाजैः ॥ ४ ॥  
 त्वं राय इन्द्र तोशन्माः प्रणहारः कस्यानृतायाः ।  
 तेषुणा मरुतो मृडयन्तु येस्मा पुण गातून्ताव देवाः ॥ ५ ॥  
 प्रतिप्रयाहान् मर्ह्यन् महः पार्थिवे मर्दने यतस्व ।  
 अध येषा पृथगुद्भास एतस्तीर्थेनार्यः पौत्र्यानि तस्थः ॥ ६ ॥  
 प्रतिघोराणामेतः नामयासां मरुतां शृणुव आगतामुज्ज्वि ।  
 ये मर्त्यं पृथगायन्तमूर्ध्नि ऋणावानं न पतयन्त सर्गः ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, सब मनुष्योंनाके अनुषोंके । ये जल खिचकर पानीको और आहुत मरुदुग्ध तुम्हारे साथ मिले मरुतोको सेना, छलके उपायभुक्त युद्धमें, तय-वसिष्ठ लिये, मर्द प्रयत्न हुई है ।

३ इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध ऋष्टि-यु-विद्वेष ( ऋष्टि ) हमारे लिये, मघ पाम जाया है । मरुदुग्ध चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं । विस्तृत यज्ञके लिये आन प्रदोत हुए हैं । जेमे जल दीपका धारण करता है, वेमे ही अग्नि हव्य धारण करते हैं ।

४ इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धनका दान करो । तुम दाना हो । हम लोग प्रच दक्षिणा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे । तुम वायु या शीघ्र प्रदाता हो । राताका लोग तुम्हारी अन्तर वरन चाहते हैं, मधु दूधके लिये जेमे लोग स्तनको पुष्ट करते हैं, वेमे ही हम भी तुम्हें अन्न अदिक द्वारा पुष्ट करते हैं ।

५ इन्द्र, तुम्हारा धन अत्यन्त परित-पता और यजमानका यज्ञान्त-दिकषा है । जो मरुदुग्ध पहले ही यज्ञमें जानेके लिये तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें ।

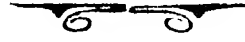
६ इन्द्र, जल-संचक हो । परपार्थी और विशाल मेवके आभने जाओ । अन्तरीक्ष प्रदेशमें रहकर वेष्टा करो । युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके पराक्रमको तर; मरुओंके विस्तोर्णी पद आवगण—मर्घपर आक्रमण करते हैं ।

७ इन्द्र, भयंकर, कृष्णवर्ण और अमनशील मरुओंके अनेका शब्द सुनाई देता है । जेमे अधम शत्रुका विनाश किया जाता है, वेमे ही मनुष्योंको रक्षाके लिये मरुदुग्ध प्रहरण द्वारा सेना-बल-संयुक्त शत्रुओंका विनाश करते हैं ।



त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्वा रदा मरुद्भिः शुरुवो गो अत्राः ।

स्तवानेभिः स्तवसे देवदेवैर्विद्यामेवं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥



१७० सूक्त । इन्द्र देवता । प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओंके ऋषि इन्द्र हैं और शेषके अगस्त्य ।

त्रिष्टुप् और बृहता छन्द ।

न नूतमस्तिनोश्चः फस्तद्रेदयददुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेण्यमुनाद्योतं विनश्यति ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कलरस्य साधुयामानः समरणे वर्धीः ॥ २ ॥

षिं नो भ्रातरगस्त्य सखामन्नन्तिमन्यसे ।

विद्या हिने यथा मनास्मभ्यमिन्द्रित्ससि ॥ ३ ॥

अरं कृणन्तु चेदं समग्रमिन्धतां पुरा ।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तन्वावहे ॥ ४ ॥

त्वम शिषे वसुपते नमूनां त्वं मित्राणां मित्रपते ध्रेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः संवदस्वाध प्राशान ऋतुया हवींषि ॥ ५ ॥

८ इन्द्र, सारे प्राणा तुममें ही उपन्य हुए हैं । मरुद्भिः साथ, अपने सम्मानके लिये, तुम दुःख-नाशिका और अल-प्रारिणी मेघ-पंक्ति की विद्वान् की । देव, स्तव्यम न देवाण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हमें अन्न, बल और दीर्घायु प्रदान करो ।

१ ( इन्द्र ) अद्यतन या वलयन कुछ नहीं है । अद्भुत कार्य की बात कौन कह सकता है ? अन्य मनुष्यों का मन अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है ।

२ ( अगस्त्य ) इन्द्र, तुम क्या मुझे मारना चाहते हो ? मरुद्भिः तुम्हारे आता हैं । उनके साथ अच्छी तरह यज्ञ-भाग मागो । युद्ध-कालमें हमें ही विनष्ट करना ।

३ ( इन्द्र ) आता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनाहत कर रहे हो ? हम निश्चय ही तुम्हारे मन की बात जानते हैं । तुम हमें नहीं देना चाहते ।

४ ऋत्विग्गण, तुम वेदों की सजाओ और सामने अग्नि को प्रज्वलित करो । अनन्तर वस्त्रों में तुम और हम अमृत के श्लोक यज्ञों को करेंगे ।

५ ( अगस्त्य ) हे धनके अधिपति, हे मित्रों के मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो । तुम सर्वोत्तम कहो कि, हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है । तुम यथासमय अपित इष्ट्य भक्षण करो ।

## १७१ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रति व एना नमस्वाहमेमि सुकं न भिक्षे सुमनि तुराणाम् ।  
 रराणता मरुतो वेंद्याभिनिहेलो धत्त विमुषध्वमश्वान् ॥ १ ॥  
 एष वः स्तोमो मरुतो नमश्चान् हृदातष्टो मनसा धावि देवाः ।  
 उपेमायात मनसा जुषाणा यूय हिष्ठानमस इदुग्धासः ॥ २ ॥  
 स्तुतासो नो मरुतो मृडयन्तुत स्तुता मघना शम्भोधन्त ।  
 ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्वधानि मिश्वामरुतो त्रयीषा ॥ ३ ॥  
 अस्मात्प्रान्त वपादपमाण इन्द्राक्षया मरुतो रेजमानः ।  
 युग्मभ्यं हव्या नान्शितान्वासन्ताः पारे चरुमा रुद्ध नः ॥ ४ ॥  
 येन मानासाश्चतन्त उस्त्रा म्युष्टिषु शस्त्रा ३३ तीनाम् ।  
 स नो मरुद्गुणमश्रुधो उग्र उग्रोमः स्य वरः सहोदाः ॥ ५ ॥  
 त्वं पार्हन् रुक्षीयसो न भवा मरुद्गुणमश्रुधो ॥  
 सुप्रवेतोमः सासो हृदधाना दिव्यामप हृजन जावदलुम् ॥ ६ ॥

१ मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास जाता हूँ । देवगणान् मरुतं, तुम्हारे द्वारा चाहता हूँ । मरुतो, स्तुति द्वारा आनन्दित । चत्त म. घ छ दा और यते मय छेडा अर्थात् उदरनेनी कृपा करा ।

२ मरुतो, तुम्हारे इस स्तोममें अन्न है । देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उदरमें, हृदयमें सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मनमें रखिये । साद्वर इत् स्वीकार करते हुए आओ । हम इन्द्र-स्य अन्नके वन्दायता ह ।

३ मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो । इन्द्र, स्तुत होकर हमें रुद्रपिक्षा सुखी करो । मरुतो, हम लोग जितना दिन जीयें, व सब दिन उत्कृष्ट, स्पृष्टणीय और भोग-योग्य हों ।

४ मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्रके पाससे डरने मारे मारते हुए काँपने लगे । तुम्हारे लिये जिस इन्द्रको ररकृत किया था, उसे दूर कर दिया । हम सुख कर ।

५ इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो । तुम, ये मानवीय अनुपदों विरर, प्रणिनि, एवके उदय-वर्त्ये प्राणियोंके वितर्य देतो है । असीष्टवर्षी, एवं बल प्रदायी और पुतातन हूँ, तुम उग्र मरुत. म. य. घ अन्न घातण करो ।

६ इन्द्र, प्रभू बलशाली मरुतोंकी रक्षा करो । उनके प्रति निःप्रोद्य बनो । मरुद्गण उत्तम प्रजापाल है । उनके साथ तुम्हारे विनाशक बनो और हमारा रक्षा करो । हम अन्न, बल और द. घायु प्राप्त करें ।

१७२ सूक्त । इन्द्र देवता । गायत्री छन्द ।

चित्रो वोस्तु यामश्चित्र उतो सुदानवः । मरुतो अहिभानवा ॥ १ ॥

आरेसावः सुदानवो मरुत क्रञ्जती शरुः । आरे अश्मायमस्यथ ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः पारवृक्त सुदानव । ऊर्ध्वान्तः कते जीवसे ॥ ३ ॥

१७३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

गायन्स्वामनभरन् सथावेरन्नाम तत्त वृथान स्वर्यत ।

गावो धनवा ब्रह्मिष्ठद्वय आतर द्य नदिवर्षा विनामान ॥ १ ॥

अर्चष्टृपा तृषणिः सधेनुः यैमृत्पान श्रो अन्ति उज्जुगुर्गान्ति

प्रम द्युर्गतां गृत् विष्ठा पश्यते मर्षी मिथुना यज्ञवः ॥ २ ॥

नक्षजोता एणि द्य मिथयन् । द्वाभ्य शब्दः पृथ्व्याः ।

वत्सदृश्वो जगन्नाथो स द्वीपान्दृष्टो न रोदन्मी चरद्वाक ॥ ३ ॥

१ मरुतो, यजमें तुम्हारा अगमन चित्रित हो । दानवील और वत्सदृश जीविताने उक्तो, तुम्हारा आगमन इमारी रक्षा करे ।

२ दानवील मरुतो, तमारे दानमान ओ । प्राणिवपुश्चाल अन्तर द्वाभ्ये पायकी तर हो । तुम त्रिम अश्म नामके रथको पंक्तें हो, वह भी द्वाभ्ये पंक्तें द्य हो ।

३ दाना मरुतो, तन के स्वामन बीच होनेपर ओ मेरी प्रजाओं को रक्षाना । इमें उन्नत करो, ताकि हम बच जायें ।

१ इन्द्र, उदुगाता स मवेतका हम प्रकार काक शक्य हो बन जाता है कि हम कामक सको । हम उस वर्द्धमान और स्वर-प्रदता स्तोत्रकी पूजा करने हैं । मरुतो इन्द्र पदानी हो हिय-शुभा गाये जैसे कुशासनपर बैठनेके समय हमारी सेवा करती हैं, वैसे ही में भी पूजा करते हैं ।

२ इन्द्रदेवता यजमन स, हव्य द्या उर्ध्व्यं नामक पाय पायें दिये हव्य द्वारा इन्द्र की पूजा करने हैं । पिपासिन मृगही तरह, इन्द्र, जल पाने इन्धनमें उपविष्ट होते । पय इन्द्र, जमात्राभिगायो देवोंकी स्तुति करते हुए मर्त्य होता, स्त्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पद रहते हैं ।

३ होम-सम्पद अग्नि, पारथिव गार्हपत्यादि गमनमें, नारी और, व्यास हैं तथा शरत्कालका और पृथिवीके गमस्थानीय अन्नको ग्रहण करने हैं । पश्यती तरह शब्द भरते, वृषभकी तरह शब्द काते, अन्न लेकर, आकाश और पृथिवीके बीच, दूत-स्वरूप, वातवीत करते हैं ।

ताकर्माषतरास्मै प्रच्यौल्लानि देवयन्तो भरन्ते ।  
 जुजोषद्भिन्द्रो दस्मवर्षा नासत्येव सुगम्या रथेष्ठाः ॥ ४ ॥  
 तमुष्टहीन्द्रं योह सत्वायः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।  
 प्रतीचश्चिद्याधीयान् वृषणवान्ववम् पश्चिन्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥  
 प्रयदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसोकक्ष्ये नास्मै ।  
 संविष्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥  
 समत्सु त्वा शूरसनामुराणं प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै ।  
 सजोपस इन्द्रं मदक्षोणीः सूरि चघो अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥  
 प्वाहितेशं सवना समुद्र आपो यत्त आसुमदन्ति देवीः ।  
 तिश्वा ते अनुजोष्याभृद्वीः सूरिश्चिद्यादि भिषावेषि जमान ॥ ८ ॥  
 उ साम यथा सुसखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।  
 असद्यथा न इन्द्रो वन्दतेष्टास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

४ हम, इन्द्रके सहस्यसे, अत्यन्त व्यापक हत्य पदान कहेंगे । देवाभिलाषी यजमान इह स्तोत्र करते हैं । दर्शनीय तेजवाले अश्विनीकुमारोंकी तरह जानने योग्य और रथपर अवस्थित इन्द्रह मारे स्तोत्रका सेवन करें ।

५ हे होता, जो इन्द्र अनन्त बलवाले, शौर्यवान्, बलवान् रथपर स्थित, सामनेके योद्धाओंमें श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदिके विनाशक हैं, उनकी स्तुति करो ।

६ इन्द्र, अपनी महिमासे, कर्म-निष्ठ यजमानोंको स्वर्ग आदि फल देनेमें समर्थ हैं । धावापृथिवी उनकी कक्षाकी पूर्णिके लिये पर्याप्त नहीं हैं । जैसे अन्तरीक्ष पृथिवीको वेष्टित कर रहता है, वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभासे तीनों लोकोंको व्याप्त करते हैं । जैसे वृषभ अनायास शृङ्ग धारण करता है, वैसे ही अग्निवान् इन्द्र भी स्वर्गको अनायास धारण करते हैं ।

७ शूर इन्द्र, दुष्ट-भूमिमें साधुओंके बलप्रद और उत्तम-मार्गरूप हो । महदुगण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित होने हैं । वे तुम्हारे परिजन हैं । तुम्हारे आनन्दके लिये सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलङ्कृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं ।

८ यदि अन्तरीक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओंके लिये तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम वृष्टि-प्रदान आदि कर्म द्वारा स्तोताओंको कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो ।

९ प्रभु इन्द्र, ऐसे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और स्तुति द्वारा, राजाओंकी तरह, तुम्हारे पाससे अभीष्ट प्राप्त कर सकें, ऐसा करो । इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-कालमें उपस्थित होकर, शीघ्रताके साथ, हमारा यज्ञ, उक्त स्तुतिके साथ, ले जाओ ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।  
 मित्रा युधो न पूर्पति सुशिष्टौ मध्यायुव उपशिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥  
 यज्ञो हि ध्येन्द्रं कश्चिद्वन्धजं हुराणाञ्चन्मनसा परियन् ।  
 तीर्थनाच्छातातृपाणमोको दीर्घो न सिध्माकृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥  
 मोषूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ध्याते शुष्मिन्मवयाः ।  
 महश्चिद्यस्य मीलुषो यव्या हविष्मतां मरुतोवन्दते गीः ॥ १२ ॥  
 एषः स्तोम इन्द्र स्तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।  
 आनो ववृत्याः सुविताय देव विशामेपं वृजनं जीग्दानुम ॥ १३ ॥



१० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षानूत पाहासुर त्वमभ्यमान ।  
 त्वं सन्पतिर्मधवानां तुरुत्र त्वं सत्यो वसन्वानः स्तोदाः ॥ १ ॥

१० जैसे मनुष्योंमें प्रतस्पर्धी व्यक्तियोंको, स्तुति द्वारा, सदैव विजय जाता है, वैसे ही हम भी इन्द्रको करेंगे । इन्द्र केवल हमारे ही होंगे ! जैसे योग्य शासक नगरपतिकी हिरणी लोभ, पूजा, करने हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस्थानाभिलाषी रुधिर्युं लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्रकी पूजा करते हैं ।

११ इसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति, यज्ञ द्वारा, इन्द्रकी वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति, मन ही मन, सदा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार हीर्य-मार्गमें अम्मुर स्थित जल तुरत नागोंको प्रसन्न करता और क्षीय-पथका जल तृषार्त व्यक्तिको निराश करता है ।

१२ इन्द्र, युद्ध-वेलामें, मरुतोंके साथ, तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिये यज्ञका भाग स्वहस्त है । हमारी फल-समर्पित स्तुति महान्, हविष्मान् आर जलदाता मरुतोंको बन्दना करती है ।

१३ इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है । हरिवाहन, इस स्तुति द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान लो और अनायास आनेके लिये हमारे पास पधारो ।

१ इन्द्र, तुम रस्सा और सामे देवोंके राजा हो । तुम मनुष्योंको रक्षा करो । अथ, तुम हमारी रक्षा करो । तुम साधुओंके पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्त्ता हो । तुम सत्य और बल-प्रदाता हो । तुमने अपने तेजसे सबको दृढ़ किया है ।

दनोविश इन्द्रमृधवान्नः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्वत् ।  
 ऋणोरपो अनवधानां यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥  
 अजावृत इन्द्र शूरपत्नोर्धा च येमिः पुरुहूत नूनम् ।  
 रक्षो अग्रिमशुषं तूर्धयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥  
 शेषन्नुत इन्द्र सस्मिन्धानौ प्रशस्तये पवीरस्य महा ।  
 मृजदर्णां स्वव यद्युधा नास्तिष्ठदग्नी धूषतामृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥  
 वहकुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाक-त्सूपमन्यू ऋजा वातस्याश्वा ।  
 प्रसूश्चक्रं बृहतादमीकेमिन्पृथो यासिपद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥  
 जघन्वां इन्द्रमित्र रुञ्जोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।  
 प्रयेपथ्यन्नध्मणं सचायांसुवया शृतावहमाना अपन्यम् ॥ ६ ॥  
 रपत् कविरिन्द्राकांसावी क्षां दासायोपवर्हणीकूः ।  
 वरत्तिस्त्रो मघवा दानुचित्रा निदुर्योण कुयवाचं मृधिश्रत् ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत मात पुरियोंको भिन्न किया था, उस समय प्रजाओंको संवत्-वाक्य करके अनायास दमन किया था । अनवध इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था । तुमने तदण-वयस्क पुरुकुत्स राजाके लिये वृत्रका वध किया था ।

३ इन्द्र, तुम राक्षस-निवास सारो नगरियोंको जाते और वहाँमें, दे पुरुहूत, अनुचोंके साथ स्वर्गमें जाते हो । वहाँ अशोषक और शीघ्रकारी अग्रिका, सिंहकी तरह, बचाने हा । ताकि वह अपने गृहमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके ।

४ इन्द्र, तुम्हारे शत्रु या मेघ वज्रोंकी मर्दिमानी तुम्हारी प्रशंसा करने हुए अपने ज-मस्थानमें शीघ्र शयन करे । जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, तब नीच जल गिराते और दहियोंके ऊपर चढ़ते हो । अपनी शक्तिसे तुम शत्रु आदि बड़ाते हो ।

५ इन्द्र, तुम जिस यज्ञमें कुत्स ऋषिकी कामना करने हो, उसमें भरन वयोभूत, सरलगामी और वायुके समान वेगशाली अश्वोंको परिचालित करते हो । उसके लिये सूर्य रथचक्रों पास से आगे और वज्रबाहु इन्द्र संधामकर्ता शत्रु-ओंके सामने आगे ।

६ हरिवाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र द्वारा ऋद्ध होकर, दान-रहित और यज्ञमार्गेके विघ्नकारी लोगोंका विनाश किया है । जिन्होंने तुम्हें आश्रयदाता रूपसे देखा है और जो इव्य प्रधानके लिये मिलित हुए हैं, वे तुमसे सन्तान प्राप्त करते हैं ।

७ इन्द्र, प्रजनीय अन्नकी प्राप्तिके लिये कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुमने पृथिवीकी दासकी शत्रुता बना दिया है । इन्द्रने तीन भूमिके दान द्वारा विविध किया है एवं दुर्योणि राजाके लिये कुयवाचका वध किया है ।

सनातात इन्द्र नव्या आगुः सहोनभो विरणाय पूर्वोः ।  
 भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥  
 त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमसोर्हणोरपः सोरा न स्रवन्तीः ।  
 प्रयत् समुद्रमतिशूरं पयि पारया तुर्वणं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥  
 त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधस्या अवृकतमो नरां नृपाता ।  
 स नो विश्वासां स्पृधां सहादा विद्यामेधं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१७५ सूक्त । इन्द्र देवता । वृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।  
 वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥  
 आनस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।  
 सहावाँ इन्द्रसानसिः पृतनापाङ्मर्त्यः ॥ २ ॥  
 त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।  
 सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

८ इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध बोर कनको स्तुति करते हैं । तुमने अनेक हिसकोंको, संग्राम-निवारणके लिये, विनष्ट किया है । तुमने देवशून्य विपक्ष नगरोंको भिन्न किया है और देवरहित शत्रुका अस्त्र नष्ट किया है ।

९ इन्द्र, तुम शत्रुओंमें दृढकल्प पदा करनेवाले हो । इसीलिये तुम प्रवहमाना सिरा नामकी नदीकी तरह तरंग-युक्त जल पृथिवीपर गिराते हो । हे गर, त्रिम तमय तुम समुद्रका परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वण और यदुके मंगलके लिये उनका पालन किया है ।

१० इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-अष्ट बनो और प्रजाओंका पालन करो । हमारे सेन्योंको बल दो, ताकि हम अग्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ हरिवाहन इन्द्र, हर्षकर, अभोष्टवर्षी, आह्लादकारी, अन्नवान्, असोम दानवासे और महाबुभाष सोम जिस प्रकार पात्रमें स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पानकर धारण करो और अतीव प्रसन्न बनो ।

२ इन्द्र, हर्षकर, अभोष्टवर्षी, तर्पयिता, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सेन्य-विनाशक और अविनाशी सोम तुम्हारे पास आवे ।

३ इन्द्र, तुम गर और हाता हो, मैंम जुष्य हूँ । मेरा मनोरथ पूर्ण करो । तुम सहायवान् हो । जैसे अग्नि, अपनी ज्वालासे, पात्रको जलाता है, वैसे ही तुम व्रत-रहित वस्तुको जलाओ ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमोशन ओजसा ।  
 वह शुष्णाय बध्नं कुत्सं घातस्याश्वैः ॥ ४ ॥  
 शुष्मिन्तमो हि ते मयो घृस्मिन्तम उत क्रतुः ।  
 वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥  
 यथा पूर्वभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयश्वापो न तृप्यते बभूथ ।  
 तामनु त्वा निविदं ओहवीमि विद्यामेपं वृजनं जीरवानुम् ॥ ६ ॥

१७६ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

मत्सि नो वस्य इष्ट्य इन्द्रमिन्द्रो वृषाविश ।  
 ऋधायमाण इन्वसि शत्र मन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥  
 तस्मिन्नावेक्षया गिरा य एकश्चर्यणोनाम् ।  
 अनुस्वधायमुप्यते यवं न वर्तु पदुषा ॥ ॥  
 यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्चक्षितीनां वसु ।  
 स्पाशयस्व यो अस्मधु ग्दिन्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

४ मेघावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्यसे तुमने सूर्य, दो चक्रोंमेंसे एक हरण कर लिया। शुष्णका बध्न करनेके लिये कुत्स-साधन वज्र लेकर वायुके समान वेगवाले अश्वके साथ आओ।

५ इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-सयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-वाता इन्द्र, अपने वृत्रवातो और घनदायी तथा क्रतुका समर्थन करो।

६ इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओंके प्रति, तृषात्तोंके पास जलको तरह हुए थे; इसलिये हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, ताकि अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१ हे सोम, घन-लामके लिये इन्द्रको आनन्दित करो। अभीष्टवर्षी इन्द्रके बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर शत्रुओंका विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो, इसलिये किसी शत्रुको पासमें नहीं आने देते।

२ इन्द्र, मनुष्योंके अद्वितीय अधीश्वर हैं। वे यथा-रोति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट साधक करते हैं।

३ जिन इन्द्रके हाथोंमें पञ्च क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषादका सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य वज्रकी तरह विनष्ट करें।



असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं योनते मयः ।  
 अस्मभ्यमस्य वेदनं दधि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥  
 आधो यस्य द्विर्बर्हसोऽर्कपु सानुषगसत् ।  
 आज्ञाविन्द्रस्येन्द्रो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥  
 यथा पूर्वभ्यो जरितुभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।  
 तामनुत्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेघं वृज्जनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

७० सूक्त । इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।  
 आचर्पणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।  
 स्तुतः श्रवस्यन्तवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणायाह्यर्वाङ् ॥ १ ॥  
 ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजां वृषरथासो अत्याः ।  
 तां आतिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥  
 आतिष्ठ रथं वृषणं वृषाने सुतः सोमः परिपिक्ता मधूनि ।  
 युक्त्वा वृषभ्यां वृषभक्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

४ इन्द्र, जो लोग सोमका अभिषेक नहीं करते और जिनका विनाश करना दुःसाध्य है, उनका बच करो; क्योंकि वे तुम्हारे सखे के कारण नहीं हैं । उनका धन हमें दो । तुम्हारा स्तोत्र ही धन प्राप्त करता है ।

५ हे सोम, जिन स्तोत्र और हविष के द्विविध कर्म करनेवाले यजमानके पूजा-साधक मंत्रमें तुम सदा अवस्थिति करते हो, उसकी तुम रक्षा करो । हे सोम, इन्द्र के युद्धमें अन्नके लिये अन्नवान् इन्द्रकी रक्षा करो ।

६ इन्द्र, तुम प्राचीन स्तोत्राओं के प्रति, वृषात्तों के पास, जलकी तरह हुए थे, इसलिये हम बार-बार तुम्हारी सुखकर और प्रसिद्ध स्तुति करते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ मनुष्यों के प्रीति-दायक, सबके इच्छित-वर्षक, मनुष्यों के स्वामी और बहुतेक द्वारा आहूत इन्द्र हमारे पास आये । इन्द्र, हमारी स्तुति ग्रहण कर दोनों तृण हरितों का रथमें जोतकर, हव्य ग्रहण करने और रक्षाके लिये हमारे सामने आओ ।

२ इन्द्र, तुम्हारे जो तृण, उत्तम, मंत्र द्वारा रथमें योजनीय, वर्षक और रथसे युक्त घोड़े हैं, उनपर चढ़ो और उनके साथ हमारे सामने आओ ।

३ इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षक रथपर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे लिये मनोरथ दाता सोम तैयार है—मधुर घृत आदि भी तैयार है । अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्टदाता दोनों हरि नामके घोड़ोंको जोतकर यजमानों के ऊपर कृपा करनेके लिये वेगवान् रथसे हमारे सामने आओ ।

अयं यज्ञो देवया अयं मिषेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्रसोमः ।  
 स्त्रीर्णं बर्हिरातु शक्र प्रयाहि पिबा निपद्य विमुञ्चा हरी इह ॥४॥  
 ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यवाँडः प ब्रह्माणं मान्यस्य कारोः ।  
 विद्या मवस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥

१७८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजस्यात इन्द्र अष्टिरस्ति यया बभूथ जग्नुभ्य ऊती ।  
 मानः कामं महयन्तमा धाग्विश्वा ने अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥  
 न प्वा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।  
 आपश्चिद्वरमै सुतुका अवेपन्गमन् इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ ॥  
 जेता नृभिर्गिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।  
 प्रभर्ता रथं वाशुप उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च तमना भूत् ॥३॥  
 पवा नृभिर्गिन्द्रः सुश्रवस्या प्रसादः पृक्षा अभि मित्रिणां भूत् ।  
 समर्य इयः स्तवते विवानि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

४ इन्द्र, देवोंके उद्द्वेगमें यह यज्ञ जाता है । यह यज्ञीय पशु, ये मंत्र, यह प्रत्युत सोम और यह विद्याया हुआ कुछ तुम्हारे लिये तैयार हैं । तुम जबदो आगो, वेद, सोम पिबो और यज्ञ-स्थलमें हार घाँड़ोंको द्योको ।

५ इन्द्र, हमारे द्वारा अच्छी तरह स्तुति हाकर माननीय स्तोत्रोंके मंत्रोंको उपलब्ध करके हमारे सामने आओ । हम, स्तुति करते हुए, तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर अनायास वास-स्थान प्राप्त करेंगे । साथ ही अन्न, बल और दीर्घ आयु की लाभ करेंगे ।

१ इन्द्र, जिस समृद्धिके द्वारा तुम स्तोत्रार्थोंकी रक्षा करते हो, वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो । तुम हमें महान् करनेकी अभिलाषाको नष्ट न करो । तुम्हारे लिये जो वस्तु प्राप्त्य और भोग्य है, वह सब हम प्राप्त करें ।

२ परस्पर भगिनी-स्वरूप अहोरात्र अपने जन्मस्थानमें जो वृष्टि-रूप कर्म करते हैं, राजा इन्द्र वह हमारा कर्म नष्ट न करें । बलका कारण इन्द्रके लिये व्याप्त होता है । इन्द्र हमें मंत्री और अन्न प्रदान करें ।

३ विष्णुमशाली इन्द्र, युद्ध-नेता मस्तोंके साथ युद्धमें जय-लाभ करने हुए अनुग्रहार्थी स्तोत्रार्थोंका आह्वान सुनते हैं । जिस समय स्वयं स्तुति-वाक्योंको वरण करनेका इच्छा करते हैं, तब समय इन्द्रदाता यजमानके पास रथ ले जाते हैं ।

४ उत्तम धनके लाभकी इच्छासे यजमान द्वारा दिया हुआ अन्न, प्रचुर परिमाणमें, मक्षण करते तथा सहायता-वासे यजमानके शत्रुओंको पराजित करते हैं । विभिन्न आह्वानोंकी ध्वनिसे युक्त युद्धमें सत्यपालक इन्द्र यजमानके कर्मोंकी प्रसिद्धि करते हुए इन्द्रको स्वीकार करते हैं ।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रून्मित्रायाम महतो मन्यमानान् ।  
त्वं व्राता त्वमु नो वृधे भूर्धेया मेघवृजनं जीरवानुम् ॥५॥



१७६ सूक्त । इस सूक्तमें अगस्त्य, उनकी स्त्री (लोपामुद्रा) और शिष्यमें सम्भोग-विषयक कथोपकथन है; इसलिये सम्भोग ही इसका देवता है । त्रिष्टुप् और वृहती छन्द ।

पूर्वोर्हं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तो रुपसो जरयन्तीः ।  
मिनाति श्रिय जारिमा तनूनामप्युनु पत्नीवृषणो जगम्युः ॥१॥  
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्सार्क देवेभिरवदन्तानि ।  
ने चिद्धि सुर्नह्यन्तमापुः समूनुपत्नी वृषभिर्जगम्युः ॥२॥  
न मृषा श्रान्त यद्वन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।  
जयावेदत्र शतनीथमाजि यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥  
नदस्य मारु दतः काम आगन्ति आज्ञातो अमुतः कुतश्चित् ।  
लोपामुद्रा वृषण नीरणाति धीरमधीरा धरति इवसन्तम् ॥४॥  
इमं नु सोममगितो हस्तु पातमुषत्रुवे ।  
यत् सोमागश्नकृमा तत् सुमृतु पुलकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

५ इन्द्र, तुम्हारी सहायता लेकर हम उन् शत्रुओंका बघ करेंगे, जो अपनेको अबध्य समझते हैं । तुम हमारे आता हो । तुम हमारे घनके वद्धक बनो, ताकि हम अन्न, लाल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ ( लोपामुद्रा ) अगस्त्य, अनेक वर्षोंमें मैं दिन-रात बुढ़ापा लानेवाली उषाओंमें, तुम्हारी सेवा करके, श्रान्त हुई हूँ । जरा घरीरके सौन्दर्यका नाश करती है । इस समय क्या ? पुरुष स्त्रीके पास गमन करे ।

२ अगस्त्य, जो प्राचीन और सत्य-रक्षक श्राप लोग देवताओंके साथ सच्ची बात कहते थे, उन्होंने भी गेह का रखरख किया है; परन्तु उन्हें भी अन्न नहीं मिला । पुरुष स्त्रीके साथ गमन करे ।

३ ( अगस्त्य ) हम लोग वृथा नहीं श्रान्त हुए; क्योंकि देवता लोग रक्षा करते हैं । हम सारे भोगोंका उपभोग कर सकते हैं । यदि हम दोनों चाहें, तो इस संसारमें हम सैकड़ों भोगोंके साधन प्राप्त कर सकते हैं ।

४ यद्यपि मैं जय और स्वर्गमें नियुक्त हूँ; तथापि स्त्री कारण या किसी भी कारण, मुझे काम-भाव हो गया है । सेवन करनेवाली लोपामुद्रा पतिके साथ संगत हो । अधीरा स्त्री धीर और महाप्राण पुरुषका उपभोग करे ।

५ ( शिष्य ) हृदयमें पीत इस सोमसे मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि, सोम मुझे सुखी करे । मनुष्य बहुत कामनावाला होता है ।

अगस्त्यः सजमानः सानित्रीः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्त्वा देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥



२४ अनुवाक । १८० सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युवो रजांसि सुयमासौ अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उपसः सखेधे ॥१॥

युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्तमनो नर्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्तिं भर्गानि बाजायेद्रे मधुपात्रिवे च ॥२॥

युधं पय उल्लियायामध्वस एकमामायामध्व पूर्यङ्गोः ।

अन्तर्यद्वाननो घामृतप्लुङ्कारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥

यवं ह धर्मं मधुमन्तमश्रयेपो न श्रोदावृणीतमपे ।

तद्वां नरावश्विना पश्वश्वाष्टी रथेव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

१ अश्वि अगस्त्यने अनेक उपायोंका उदुभावन करके, बहुत पुत्रों और बलकी इच्छा करके, काम और तप, दोनों वरणीय वस्तुओंका पालन किया था । अगस्त्यने देवोंके पास सत्य आशोवाद् प्राप्त किया था ।

१ अश्विनीकुमारो, जिस समय तुम्हारे शोभन गति घोड़े तुम्हें लेकर अभिमत प्रदेशमें जाते हैं, उस समय तुम्हारे हिरण्यमय रथकी नेमि अभिमत प्रदान करती है; इसलिये तुम उपाकालमें सोमपान करने हुए यज्ञमें आ मिलो ।

२ सर्वस्तुत्य अश्विद्वय, जिस समय तुम्हारी भगिनी-स्थानीय उषा प्रस्तुत होती है, हे मधुपायो अश्विद्वय, जिस समय अन्न और बलके लिये यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उस समय यह तुम्हारा सतत-गन्ता, विश्विगति-शील, मनुष्य-हितेयी और विशिष्ट रूपसे पूजनीय रथ निम्नाभिमुख जाता है ।

३ अश्विद्वय, तुमने गार्ग्योंमें दुरघ स्थापित किया है । तुमने गार्ग्यके अधोदेशमें पूर्ववर्ती एकत्र दुरघ स्थापित किया है । सत्यरूप अश्विद्वय, वन-वृक्षावलीके बीच चोरकी तरह सदा जागरूक विशुद्ध-स्वभाव और हविवाला यजमान हविवाले यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करता है ।

४ अश्विद्वय, तुमने सहायताकी इच्छावाले अग्नि मुनिके लिये दीप्त दुरघ और पृतको जल-प्रवाहकी तरह किया था; इसलिये हे नराकार अश्विद्वय, तुम्हारे लिये अग्निमें यज्ञ किया जाता है । निम्न देशमें रथ-चक्रकी तरह सोमस तुम्हारे लिये आता है ।

आ वां दानाय चतुर्थीय दत्ता गुरोहेण तौम्यो न जिमिः ।  
 अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥  
 नि यद्युवेधे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजयः पुरन्धिम् ।  
 प्रेषद्वेषदातो न सूरिरामहे ददे सुमतो नवाजम् ॥६॥  
 वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पर्णिहितावान् ।  
 अधाचिद्धि ष्माश्विनावनिन्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥  
 युवां चिद्धिष्माश्विनावनु दून्विद्रुहस्य प्रस्त्रक्षयस्य सातौ ।  
 अगस्त्यो नरां नृप प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥  
 प्र यद्वहेथ महिना रथस्य प्र स्पन्दा पाथो मनुष्यः न होता ।  
 धत्तं सूरिन्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिपाचः स्याम ॥९॥  
 तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।  
 अरिष्टनेर्मि परि द्यामिथानं विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥



५ अश्विनीकुमारो, बड़े तुम राजाके पुत्रकी तरह मैं स्तुति द्वारा अभिमन्यु लामके लिये तुम्हें यज्ञ-देशमें ले आऊँगा । तुम्हारी महिमासे यथाशुचि परस्पर मिली है । राजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण श्वि पापमुक्त होकर दीर्घ जीवन लाभ करें ।

६ शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तम नियुक्त नावके घंटाका जोगने हो, उस समय अग्न्यने पृथिवीको भर देते हो; इसलिये वायुकी तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनोंको तृप्त और व्याप्त करें । उत्तम धर्मवाले व्यक्तिकी तरह स्तोता, अपने महत्त्वके लिये, अग्न्य स्वीकार करते हैं ।

७ हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं । द्वाण-कलश स्थापित हुआ है । हे स्तुतिपात्र और अमीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवोंके पास सोमपान करो ।

८ अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य श्वि प्रीत्यके दुःखनिवारक ओतकी प्राप्तिके लिये, बन्ध उत्पन्न करनेवाले शत्रुत्व आदिकी तरह, हजार स्तुतिथियों द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं ।

९ अश्विनीकुमारो, तुम रथकी महिमासे यज्ञ चारण करा । गति-शील अश्विनीकुमारो, यजमानके होताकी तरह तुम गमनागमन करो । स्तोताओंको बल दो, वस्त्रम घोड़े दो । फलतः हे नास्त्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे ।

१० अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशविहारी अभग्न चक्रवाले रथकी प्राप्तिके लिये स्तोत्र द्वारा उसे रक्ताते हैं । तर्क हम अग्न्य, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१८१ सूक्त। अश्विद्वय वेदता। त्रिष्टुप् छन्द।

कतु प्रेष्ठा विपां रयीणामध्वयन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।  
 अयं वां यज्ञो अकृतप्रशस्ति वसुधितो अश्वितारा जगानाम् ॥१॥  
 आ वामश्वासः शुचयः पयस्पावातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।  
 मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना बहन्तु ॥२॥  
 आ वां रथो वनिर्न प्रवत्वान्तस्त्वप्रबन्धुरः सुविताय गम्याः ।  
 वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहं पूर्वं यजतो धिष्यथायः ॥३॥  
 इहेह जाता समवाधशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।  
 जिष्णुर्वामन्यः सुमन्त्रस्य सृग्दिवो अन्यः सुमगः पुत्र ऊहं ॥४॥  
 प्र वां निचैरुः ककुहो वशां अनु पिशङ्गरूपः सदनानिगम्याः ।  
 हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथा राजांस्यश्विना विघोषैः ॥५॥  
 प्र वां शग्द्वान्वृषभो न निः पारः पूर्वोत्पिध्वरति मद्रव इष्णन् ।  
 एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरुध्वां नद्यां न आगुः ॥६॥

१ प्रियतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और घनको उपरके देशमें ले जाओगे कि, यह समाप्त करकेकी इच्छा करते हुए जलको नीचे गिरावा जा सकेगा ? हे घनधारके और मनुष्योंके आभयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है ।

२ अश्विद्वय, तुम्हारे दीप्तिशाली, वृष्टिपान करनेवाले, वायुकी तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मनकी तरह वेगवान् युवा और शोभन पृष्ठवाले अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें ।

३ हे ऊँचे स्थानके योग्य और रथासोन अश्विद्वय, भूमिकी तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुवाले, वधेणसमर्थ, मनकी तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ यज्ञमें ले आवे ।

४ अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्रके रूपसे जन्म ग्रहण किया था और पाप-वाञ्छ्य हो । तुम्हारे शरीर-सौन्दर्य और नाम-महिमाके कारण मैं बार-बार तुम्हारे स्तुति करता हूँ । तुममें एक यज्ञ-प्रवर्त्तक होकर संसारको धारण करते हैं और दूसरे धुलोकके पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियोंको धारण करते हुए संसारको धारण किसे हुए हैं ।

५ अश्विद्वय, तुममेंसे एकका छेष्ट और पीतवर्ण रथ, इच्छानुसार, हमारे यज्ञ-गृहमें जाय और एक अन्नके हवि नामके अश्वोंको मनुष्य लोग मधन-निष्पादित खाद्य और स्तुतिसे प्रसन्न करें ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेघोंको विघोषण करते हैं । वह इन्द्रकी तरह वज्रधर्त्तोंको बिकाकते हुए हवकी अभिकाषासे, बहुत अन्न-दानके क्रिये, जाते हैं । दूसरेके गमनके क्रिये यज्ञमान लोग इष्य द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं । उनके द्वारा भेजी हुई व्यापक और तड़कंछिनी नदियाँ हमारे पास आती हैं ।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गोर्वाह्वे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।  
 उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामन्धृणुतं हव मे ॥७॥  
 उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिर्बहिषि सवसि पिन्वतेनृ न ।  
 वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥  
 युवां पूषेवाश्विना पुरग्भिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।  
 हुवे षट्त्रां वरिवस्या गृणानो विद्यामेवं वृजनं जीरवानुम् ॥९॥



१८२ सूक्त । अश्विद्वय देवता त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूविदं वयुनमोषु भूषता रथो वृषतान्मदता मनीषिणः ।  
 धियज्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो न पाता सुकृते शुचिमता ॥॥  
 इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दक्षा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।  
 पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वान् समुप याथो अश्विना ॥२॥

७ विधाता अश्विद्वय, तुम्हारी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त स्थिर स्तुतिर्षी बनायी जाती है । वह तीन तरहसे तुम्हारे पास जाती है । तुम प्रशस्तिन होकर याचमान यज्ञमानकी रक्षा करो । जाकर या खड़े होकर उसका आह्वान करो ।

८ अश्विद्वय, तुम्हारी प्रशस्त स्तुति कुशत्रय-युक्त यज्ञ-साधन द्वारा यज्ञमानोंको प्रसन्न करे । अमीष्ट-वर्चिद्वय, तुम्हारा मेघ जल-वर्ण करते हुए, जल-सेवनको तरह, मनुष्योंको घन देकर प्रसन्न करे ।

९ अश्विद्वय, पूषाकी तरह बहु प्रशाली और हविष्मान् यज्ञमान, अग्नि और उषाकी तरह, तुम्हारी स्तुति करता है । जिस समय पूजा-परायण स्रोता स्तुति करता है, उस समय यज्ञमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन्न, वस्त्र और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ मनीषी क्षत्रिको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि, अश्विनीकुमारोंका अमीष्टवर्षी रथ उपस्थित है । उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो । वे पुण्यपात्रोंके कर्मको कर्ते हैं । वे स्तुतियोग्य हैं । उन्होंने विश्पलाका भका किया था । वे स्वर्गके गता हैं । उनका कर्म क्षुब्ध है ।

२ अश्विद्वय, तुम अथर्व ही इन्द्रभेष्ट, स्तुति-योग्य, मरुत्भेष्ट, शत्रुनाशक, उत्कृष्टकर्मकारी, रथवान् और रथियों-में उत्तम हो । तुम मनुष्य हो । तुम चारों ओर सम्मन्वित रथको ले जाते हो । इसी रथपर कृपा करके इष्यदाताके पास जाओ ।

किमत्र दत्ता कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।  
 अति कमिष्टं जुरनं पणेरस् ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥१॥  
 जम्भयतमभिर्वा रायतः शुनो हतं मृशं विदधुस्तान्यश्विना ।  
 वाचं वाचं अरितूरतिनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥२॥  
 युधमेतं चक्रथुः सिन्धुपु पुत्रमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौप्रयाय कम् ।  
 येन देवत्रा मनसा निरुहथुः सुपतनोपेथुः क्षोवसो महः ॥५॥  
 अवविद्धं तौप्रयमपस्वन्तरणारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।  
 चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ।  
 कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसोयं तौप्रयो ना धितः पर्यषस्वजम् ।  
 पर्णा मृगस्य पतरोस्विरम उदश्विना ऊदथुः श्रोमताय कम् ॥३॥  
 तद्वां नरा नासत्यावनुप्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।  
 अमावद्य सवसः सोम्यादा विद्यामेषं घृजनं जीरदातुम् ॥८॥



३ अश्विद्वय, यहाँ क्या करते हो ? यहाँ क्यों हो ? इव्य-दान्य जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे परास्त करो । पणि या अयाज्ञिकका प्राण नाश करो । मैं मेधावोकी और तुम्हारी स्तुतिका अभिलाषी हूँ । मुझे ज्योति हो ।

४ अश्विद्वय, जो कुत्तेकी तरह जघन्य शब्द करते हुए हमारे विराणके लिये आते हैं, उन्हें नष्ट करो । वे लड़ाई करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो । उन्हें मारनेका उपाय तुम जानते हो । जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथाको रत्नवती करो । नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुतिकी रक्षा करो ।

५ अश्विद्वय, तुम राजाके पुत्रके लिये तुमने समुद्र-जलमें प्रसिद्ध, हड़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनायी थी । ऐशोमें तुमने ही अनुबह करके नौका द्वारा उसको निकाला था । अनायास आकर तुमने महासमुद्रसे उसका हट्टार किया था ।

६ जलके बीच, किन्नसुख गिराया हुआ तुमपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकारके बीच अतीव पीड़ित हुए थे । अश्विद्वयकी प्रेरित जलके बीच प्रविष्ट चार नौकाएँ उमे मिली थीं ।

७ तुमपुत्रने बाधमान होकर जलके मध्य जिस निरवल वृक्षका आकिर्जन किया था, वह वृक्ष क्या है ? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित बठाकर विपुल कीर्ति प्राप्त की है ।

८ नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकोंने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो । अश्विद्वय, आज यज्ञके सोम-वाग-सम्पादक स्तोत्रमें शरी बनो, जिससे हम अन्न, रक्त और धन प्राप्त करें ।



१८३ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्निवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।  
 येनोपयाथः पुरुतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विनपणैः ॥१॥  
 सुवृद्रथो वर्तते यन्नभिक्षं यत्तिष्ठतः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।  
 वपुर्वपुष्या सचतामिणं गोर्दिवो दुहित्रोपसा सचथे ॥२॥  
 आतिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुवनानि वर्तते हविष्मान् ।  
 येन नरा नासत्येषयध्रै वर्तिर्याथस्मनयाय त्मने च ॥३॥  
 मा वां वृको मा वृकीराध्वर्षीन्मा परिवर्कमुत मातिधक्कम् ।  
 अयं वां भागो निहित इयं गोर्वस्त्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥  
 युषां गोमः पुरुमीहो अत्रिदंसा हवतेवसे हविष्मान् ।  
 विशं न दिष्टा मृज्यूयव यन्ता मे हवं नासत्योपयातम् ॥५॥  
 अतारिष्म तमसस्पा रमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।  
 एह यातं पथिभिर्दवयानैर्विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

१ अमोष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मनकी अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारथि-स्थान और तीन चक्र हैं, जो अमोष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथपर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षोंके बल जाता है, वैसे ही तुम सङ्कलनकारीके घर जाते हो, उसी रथको तैयार करो ।

२ अश्विनीकुमारो, तुम संकल्पवान् होकर इष्यके लिये जिस रथपर चढ़ते हो, वही तुम्हारा भली भाँति आवर्त्तनकारी रथ, देवयजनभूमिके सामने, जाता है । तुम्हारे शरीरकी हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले । तुम घुलोककी पुत्री उषाके साथ मिलो ।

३ अश्विद्वय, जो रथ हविवासे यजमानके कमेका उच्च्य करके जाता है, हे नराकार नासत्यद्वय, तुम जिस रथसे यज्ञ-शाला जानेकी इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथपर चढ़कर यजमानके पुत्र और अपने हितकी प्राप्तिके लिये यज्ञ-गृहमें जाओ ।

४ अश्विद्वय, तुम्हारी कृपासे वृक और वृकी मुझें न रगड़ें । मुझें छोड़कर दूसरेको दान नहीं करना । अश्विनी-कुमारो, वही तुम्हारा इष्य-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, यही तुम्हारे लिये सोमरसका पात्र है ।

५ अश्विद्वय, जैसे मार्ग जाननेके लिये, पथिक पथ-प्रदर्शकको बुलाता है, वैसे ही गौतम, पुषमीध और अत्रि इष्य ग्रहण करके लृप्त करनेके लिये तुम्हें बुलाते हैं । अश्विद्वय, मेरे आह्वानके पास आओ ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रहसे हम अन्धकारके पाग चित्रे जायेंगे । तुम्हारे उद्देश्यसे यह स्तुति बनायी गयी है । देवोंके गन्तव्य पथ यशमें आओ । वैसे होनेपर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

सप्तमं अध्याय समाप्त

## पञ्चम अध्याय



१८४ सूक्त । अश्विनय देवता । अनुष्टुप् छन्द ।

ता वामद्य नावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुवधैः ।  
 नासत्या कुह चित्सन्तावयो विधो नपाता सुदास्तराय ॥१॥  
 अस्म ऊपु वृषणा मादयेथामुत्पणीहंतमूर्म्या मदन्ता ।  
 श्रुतं मे अच्छोक्तिर्ममतीनामेष्टा नरा निचेताग न कर्णेः ॥२॥  
 ध्रिगे पूषन्निपृकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।  
 वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जुर्णेव वरुणस्य भूरेः ।  
 अस्मे मा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनात मान्यस्य काराः ।  
 अनु यद्वां श्रवस्या सुदानु सुवीर्याय वर्षणयो मदन्ति ॥४॥  
 एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिमघवाना सुवृक्ष ।  
 यात वनिस्तनयाय त्व मे वीगस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

१ अन्वकारका विनाश करनेके लिये उषाके आनेपर हम आजके यज्ञमें और दूसरे दिनके यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं । अश्वनीकुमारो, तुम अरुणशून्य और शुक्लोष्के नेता हो । तुम जहाँ-वहाँ रहो, स्तोता आर्य श्रुवेदीय मंत्र द्वारा, विशिष्ट दानशील यजमानके लिये, तुम्हारे स्तुति करता है ।

२ अभीष्टवर्षी अश्वनीकुमारो, सांसारसमे बलवान् होकर तू हमारी तृप्ति करो और पणियोंका समूह नाश करो । हे नेतृद्वय, तुम्हें सामने लानेके लिये हम जो तृप्त-प्रद स्तुति करते हैं, उसे सुनो; क्योंकि तुमलोग स्तुतिके अध्येषक और सम्पन्न करनेवाले हो ।

३ नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्वनीकुमारो, वसुधाप्राप्तिके लिये, तीरकी तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्य-तनवाको ले जाओ । पूर्व युगकी तरह यज्ञ-कालमें सम्पादित स्तुति महान् वरुणको तुष्टिके लिये तुम्हें स्तुत करती है ।

४ मधुपाशवाले अश्वनीकुमारो, तुम कवि मान्यकी स्तुति अंगीकार करो । तुम्हारा दान हमारे उद्देश्यसे प्रदत्त हो । क्षुभ-फल-प्रदाता अश्वनीकुमारो, अन्नकी हस्त्याने और वीर्यशाली यजमानके हितके लिये मनुष्य या पुरोहित तुम्हारे साथ हर्षयुक्त हों ।

५ अन्नवान् अश्वनीकुमारो, तुम्हारे लिये द्रव्यके साथ यह प.प-विनाशी स्तोत्र रचित हुआ है । अश्वनीकुमारो, अगस्त्यके प्रति सन्तुष्ट होकर यजमानके पुत्रादि और अपने सुख-भोगके लिये यज्ञ-भूमिमें आगमन करो ।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।  
एह यातं पथिभिर्देव यानैर्विधामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

१८५ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद ।  
विश्वं ह्यमना विभृतो यद्ग नाम विधर्तते अहनी चक्रियेव ॥१॥  
भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पटन्तं गर्भमपदी दधाते ।  
निरत्यं न मृतुं पित्रोः रुपस्थे द्यावा रक्षत पृथिवीं नां अम्वात् ॥२॥  
अनेहो दात्रमक्षितं रत्नं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।  
तद्रोदसी जनयत जग्निं द्यावा० ॥३॥  
अनप्यमाने अशसाधन्ती अनुष्याम रोदसी देवपुत्रे ।  
उभ देवानामुभयेभिरह्ना-द्यावाः ॥४॥  
संगच्छमाने युधती समन्ते स्वसारा जामीपित्रोरुपस्थे ।  
अभिजिघ्रन्ता भुवनस्य नाभिं द्यावा० ॥५॥

६ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपासे हम अन्धकारको पार कर जायेंगे । तुम्हारे उद्देशसे यह स्तव रचित हुआ है ।  
देवोंके गन्तव्य पथसे यज्ञमें आओ, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ कविगण, धृ और पृथिवीमें पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिये उत्पन्न हुए हैं, यह बात कौन जानता है ? वे दूसरेके ऊपर निर्भर होकर सारे संसारको धारण करते हैं और दिन तथा रात्रिकी तरह चक्रवत् परिवर्तित होते रहते हैं ।

२ पाद-रहित और अविचल द्यावापृथिवी पादयुक्त तथा सचल गर्भस्थित प्राणियोंको, पिता-माताकी गोहमें पुत्रकी तरह, धारण करते हैं । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

३ हम अक्षितसे पापरहित, अक्षीण, हिसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गतुल्य धनके लिये प्रार्थना करते हैं ।  
द्यावापृथिवी, स्तोत्रा यजमानके लिये, वही धन उत्पन्न करते हो । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

४ हम प्रकाशमान दिन और रात्रिके उभर्यावध धनके लिये दुःख-रहित और अन्न द्वारा तृप्तिकारी द्यावा-पृथिवीका अनुगमन कर सकें । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

५ परस्पर संसक्त, सदा तक्षण, समान सीमासे संयुक्त, भोगनीभूत और बन्धु-महद्य द्यावापृथिवी, पिता-माताके कोटिस्थित और प्राणियोंके नाभि-स्वरूप, जलका घ्राण करते हुए, हमें महापापसे बचावें ।

उर्वी सप्तमी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।  
 दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥६॥  
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ग्रूवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।  
 दधाते ये सुमगे सुप्रतीकी द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥७॥  
 देवान्वा यच्चकृमाकञ्चिदागः सखायं वा सद्मिउआरूपतिं वा ।  
 इयं धीभूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ॥८॥  
 उमा शंसा नर्या मामविष्टामुमे मामूती अवसा सचेताम् ।  
 भूरि चिद्वर्यः सुदास्तरायेषा प्रबन्त इयमेव देवाः ॥९॥  
 ऋतं विधे तद्वोचं पृथिव्या अमिश्राणाय प्रथमं सुमेधा ।  
 पातामवद्यादुदुरितादभोके पिता माता च रक्षतामवोमिः ॥१०॥  
 इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितृमातर्यद्विहोपधु वेवाम् ।  
 भूतं देवानामक्षमे अवोभिर्विद्यामेयं यृजनं जीरदानुम् ॥११॥



६ देवोंकी प्रसन्नताके लिये मैं विस्तीर्ण-निवासभूत, महाबुद्धि और शस्यादि-समुत्पादक द्यावापृथिवीको यज्ञके लिये बुलाता हूँ । इनका रूप आश्रय-जनक है और ये जल धारण करते हैं । द्यावापृथिवी, हमें महा पापसे बचाओ ।

७ महान्, पृथु, अनेक आकारोंसे विविष्ट और अनन्त द्यावापृथिवीकी, यज्ञस्थलमें, मैं, नमस्कार-मंत्र द्वारा, स्तुति करता हूँ । हे सौभाग्यवती और उद्धार-कुण्डला द्यावापृथिवी, तुम संसारको धारण करो और हमें महा पापसे बचाओ ।

८ हम देवोंके पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाताके प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा वह यज्ञ उन सब पापोंको दूर करे ।

९ स्तुति-योग्य और मनुष्योंके हितकर द्यावापृथिवी मुझे, आश्रय प्रदान करें । आश्रयदाता द्यावापृथिवी आश्रय देनेके लिये मेरे साथ मिलें । देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न द्वारा तुम्हें नृत्य करते हुए प्रचुर दानके लिये प्रचुर अन्न चाहते हैं ।

१० मैं बुद्धिमान् हूँ । द्यावापृथिवीके उद्देशसे चारो दिशाओंमें प्रकाशके लिये मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है । पिता-माता निन्दनीय पापसे हमें बचाव तथा हमें सदा पासमें रखकर नृत्यकर वस्तु द्वारा पालित करें ।

११ हे पिता और हे माता, तुम्हारे लिये इस यज्ञमें मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो । द्यावापृथिवी, आश्रय-दात्र द्वारा तुम स्तोताओंके समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१८६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इडाभिर्विदधे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।  
 अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥  
 आ नो विश्व आस्त्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्थमा वरुणः सजोषाः ।  
 भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्तसुपाहा विथुरं न शवः ॥२॥  
 प्रेष्टं वो अतिथि गृणीषेद्भि शस्तिभिस्तुवर्णः सजोषाः ।  
 असद्यथा नो वरुणः सुकीर्त्तिरिपश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥  
 उप न एवे नमसा जिगीषोषासामका सुदुधेव धेनुः ।  
 समाने अहन्विमिमनो अर्कं विपुरुषं पर्यासि सस्मिन्नूधन् ॥४॥  
 उत नोहिर्बुध्न्यामयस्कः शिशुं न पिप्युथीव वेति सिन्धुः ।  
 येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं बहन्ति ॥५॥  
 उत न ईं त्वष्टागन्तवच्छा स्मत् सूर्गमिरभिपत्वं सजोषाः ।  
 आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥  
 उत न ईं मतयोश्चयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिरहन्ति ।  
 तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुग्मिष्टमं नरां नसन्त ॥७॥

१ अग्नि और सविता हमारी स्तुतिवाक्य कारण सूस्थानीय देवाँके साथ यज्ञ-स्थलमें आवें। युवकगण, हमारा यज्ञमें इच्छापूर्वक आकर सारे जगत्की तरह हमें भी प्रसन्न करा।

२ शत्रुओंके आक्रमण-कर्ता मित्र, वरुण और अथवा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे सब बहंयिता हों और शत्रुओंको परास्त करके, जिस प्रकार हमारा अन्न दीन न हो, ऐसा करें।

३ देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति-युक्त होकर तुम्हारा श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की स्तुति-मन्त्रों द्वारा स्तुति करता हूँ। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे ही हों। वरुण शत्रुओंके प्रति हूँकार करते हुए अन्न द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४ देवो, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजयके लिये, दुग्धवता धेनुकी तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हैं। हम, यथासमय, अथः स्थानसे एक मात्र उत्पन्न नाना रूप खाद्य द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५ अहिर्बुध्न्यामक अम्तरिक्षचारी देव हमें छल दें। सिन्धु, वत्सकी तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जलके नत्ता अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मनकी तरह वेगशाली मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६ त्वष्टा हमारे सामने आवें। यज्ञके कारण त्वष्टा स्तोताओंके साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। अतीव विशाल, वृक्षवातक और मनुष्योंके अभीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थलमें आवें।

७ जैसे गायें बहनोंको चाटती हैं, वैसे ही अश्वदुत्तय हमारा मन तरुण इन्द्रकी स्तुति करता है। जैसे स्त्रियाँ पतिको प्राप्त कर सम्मानवाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिथय यथोक्त इन्द्रको प्राप्तकर फल उत्पन्न करती है।

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः समद्रादसी समनसः सदन्तु ।  
 पृषदश्वास्वोवनया न रथा रिशास्वो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥  
 प्र ऋ यदेषां महिना चिकित्रे प्रयुजन्ते प्रयुजन्ते सुवृत्ति ।  
 अध यदेषां सुदिने न शरुविश्वमेणिं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥  
 प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्रपूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।  
 अह्वेषो विष्णुर्वीत ऋभक्षा अच्छा सुम्नाय ववृषीय देवान ॥१०॥  
 इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपि प्राणी च सदनी च भूयाः ।  
 नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेपं जीरदानुम ॥११॥



१८७ सूक्त । पितृ देवता । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

पितृं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषोम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमव्ययत ॥१॥  
 स्वादो पितो मधो पिनो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२॥  
 उप नः पितवाचर शिवः शिवाभिरुतिभिः॥ मयोभुरद्विषेत्यः सखा सुशेवो अह्वयाः ॥३॥

८ अतोव बलशाली, समान-प्रति-युक्त, पृषत् नामके अश्वसे सम्पन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक मरु-गण, मेघ्रीवाले श्रुषियांकी तरह, यावापृथिवीके पासमे एकत्र हमारे इस यज्ञमें आये ।

९ मरुतोंकी महिमा पसिद्ध है: क्योंकि वे स्तुतिका प्रयोग जानते हैं । अनन्तर, जैसे प्रकाश संसारको व्याप्त करता है, वैसे ही सुदिनमें अन्धकार-विनाशक मरुतोंकी वृष्टि-प्रद सेना सारे अनुवंर देशोंको उत्पादिका शक्तिये सम्पन्न करती है ।

१० अश्विको, हमारी रक्षाके लिये अश्विनाकुमारों और पूषाकी स्तुति करो । द्रव-द्रव्य विष्णु, वायु और इन्द्र (श्रुभक्षा) नामके स्वतंत्र बल-विशिष्ट देवोंकी स्तुति करो । सबके लिये मैं सारे देवोंको सामने लाऊंगा ।

११ यज्ञनीय देवों, तुम्हारी पसिद्ध ज्योति हमारे लिये प्राणदाता और निवास-स्थान बने । तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवोंको प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।



१ मैं, क्षिप्रकारी होकर, विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितृ (अन्न)की स्तुति करता हूँ । उनकी ही शक्तिये अन्नदेव या इन्द्रने पुत्रकी सन्धियां काटकर उसका वध किया था ।

२ हे स्वादु पितृ, हे मधुर पितृ, हम तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम हमारी रक्षा करो ।

३ हे पितृ, तुम मंगलमय हो । कल्याणवादी आश्रयदाता द्वारा हमारे पास आकर, हमें सब दो । हमारे किये तुम्हारा रस अप्रिय न हो । तुम हमारे किये मित्र और अश्वितीय सबकर बनों ।

तव त्वे पितो रसा रजांस्यनुविष्टिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥  
 तव त्वे पितो ददतस्तव स्वादिष्टते पितो । प्र स्वाकुमानो रसानां तुविष्मिवा इवेरते ॥५॥  
 त्वे पितो महानां देवानां मनोहितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥  
 यद्वो पितो अजगन्निवस्व पर्वतानाम् । अत्राचिन्तो मधो पितोरग्मक्षाय गम्याः ॥७॥  
 यदपामोषधीनां परिसमाश्रितमहे । वातापे पीव इन्द्रव ॥८॥  
 यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वाता पे पीव इन्द्रव ॥९॥  
 कर्मम ओषधे भव पीवां वृकः उदारधिः । वातापे पीव इन्द्रव ॥१०॥  
 तं त्वा वयम् पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुपूविम ।  
 देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥



१८८ सूक्त । आसी देवता । गायत्री छन्द ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१॥

४ पितु, जेसे वसु अन्तरीक्षकाभ । अद्य किये हुए हैं, वेसे ही तुम्हारा रस सारे संसारके अनुकूल व्याप्त है ।

५ स्वादुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं । पितु, तुम्हारी कृपासे वे तुम्हें दान देते हैं । तुम्हारे रसका आस्वादन करनेवालोंकी गर्दन ऊँची या मजबूत होती है ।

६ पितु, महान् देवोंने तुममें ही मन निहित किया है । पितु, तुम्हारी चाव बुद्धि और आश्रय द्वारा ही अहिका बध किया गया था ।

७ पितु, जिस समय मेघ प्रसिद्ध जलको लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण भोजनके किये पास आना ।

८ चूँकि हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियोंको खाते हैं; इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

९ सोम, तुम्हारे यव आदि और दुरव आदिसे मिश्रित अंशका हम भक्षण करते हैं । इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

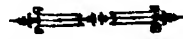
१० हे कर्मम ओषधि या सप्तपिण्ड, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और इन्द्रियोद्दीपक बनो । हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

११ पितु, गायोंके पास जेसे हव्य गृहीत होता है, वेसे ही तुम्हारे पास स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं । यह रस देवोंको ही नहीं, हमें भी दृष्ट करता है ।



१ अग्नि, ऋत्विगों द्वारा भकी भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि सन्निभित होते हैं । हे सहस्रजित् देव, तुम कवि और वृत्त हो । तुम भकी भाँति हव्य ग्रहण करो ।

तनूनपादृतम् यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिपः ॥२॥  
 आजुह्वानो न इह्यो देवा आवक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३॥  
 प्राचीनं बहिर्गोजसा सहस्रवीर्यमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥  
 विराट् सम्राड्विम्बीः प्रम्बीर्वह्नाभ्य भूयसीश्व याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५॥  
 सुरुक्ष्मे हि सुपेशसाधिश्रिया विराजतः । उपासावेह सीदताम् ॥६॥  
 प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिम् ॥७॥  
 भारतीडे सरस्वति यावः सर्वा उपग्र वे । ता नश्चादयतः श्रियं ॥८॥  
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९॥  
 उपत्सत्या वनस्पते पाथां देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥  
 पुरोगा अग्निर्दवानाम् गायत्रीण समज्यते । स्वाहाकृतोषु रोचते ॥११॥



१८६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्ज हुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

२ पूजनीय तनूनपात नामक अग्नि हजार प्रकारोंमें अन्न घाशन करके, यजमानके लिये, मधुर रसमें युक्त द्रव्यमें मिकते हैं ।

३ हे इह्य नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहूत होकर हमारे लिये यज्ञभागों देवोंको बुलाओ । अग्नि, तुम असीम अन्नके दाता हो ।

४ सहस्र वीरोंवाले और पूर्वोभिमुखमें अग्र भागमें युक्त जिस अग्निरूप कुशपर आदित्य लोग बैठे हैं, उसे श्रुतिवत् लोग, मंत्रके प्रभावसे, आच्छादित करते हैं ।

५ यज्ञशालाका विराट्, सम्राट्, विभु, प्रभु, बहु, और भूयान् ( अग्निरूप ) दुवार जल गिराता है ।

६ दीप्त आभरणमें युक्त और छन्दस्-रूप-संयुक्त अग्नि रूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं । वे यहाँ बैठे ।

७ वह अत्युत्तम और प्रियभावी अग्निरूप देव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञमें उषस्थित हों ।

८ हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इला, मैं तुम सबको बुलाता हूँ । जेमें मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ, वेसा करो ।

९ अग्निरूप त्वष्टा रूप देनेमें समर्थ हैं । वह सारे पशुओंका रूप व्यक्त करते हैं । त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो ।

१० हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंका पशु रूप अन्न उत्पन्न करो । अग्नि सब इह्योंको स्वादित करे ।

११ देवोंके अग्रगामी अग्नि गायत्री छन्दसे लक्षित हुआ करते हैं । स्वाहा देनेके समय वह प्रदीप्त होते हैं ।

१ क्षीतिविशिष्ट अग्नि, तुम सब प्रकारके ज्ञान जानते हो; इसलिये हमें समार्गपर, चलकी ओर, ले जाओ । तुम कृत्तिक पापको हमारे पाससे ले जाओ । हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं ।



अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।  
 पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वीमवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२॥  
 अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमोवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।  
 पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यज्ञत्र ॥३॥  
 पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्  
 मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥  
 मा नो अग्नेव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनाये ।  
 मा दत्वते दशते माद्वते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥ ५ ॥  
 वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसदुगृणानो अग्नं तन्वे वरुधम् ।  
 विश्वाद्भिरिक्षोक्त वा निनित्सोरमिह तामसि हि देव विष्पद् ॥ ६ ॥  
 त्वं ताँ अन्न उभयान्विविद्वान्वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।  
 अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्ममृजेन्य उशिग्भिर्नाकः ॥७॥

१ अग्नि, तुम नये हो । स्तुतिके कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापोंसे मुक्त करो । हमारा नगर अतीव प्रशस्त हो । हमारी भूमि प्रशस्त हो । तुम हमारे पुत्रों और अपत्योंको सुख प्रदान करो ।

२ अग्नि, तुम हमारे पाससे सब रोग दूर करो । जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ । देव, तुम हमें शोभन फल देनेके लिये सारे मरण-रहित देवोंके साथ यज्ञघाटामें आओ ।

४ अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान द्वारा हमें पालित करो । हमारे प्रिय यज्ञ-गृहमें चारो ओर दीप्ति-युक्त बनो । युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोता हूँ । मुझे आज और न पीछे कभी भय उत्पन्न हो ।

५ अग्नि, हमें अन्नप्राप्ति, हिंसक और क्षमनाशक शत्रुके हाथमें नहीं समर्पण करना । हमें दन्त-विशिष्ट और दंशक सर्प आदिके हाथमें नहीं सौंपना; दन्त-शून्य शृंगादिवाले पशुओंको नहीं सौंपना । बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और, राक्षस आदिके हाथ भी हमें नहीं सौंपना ।

६ यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम वरणीय हो । शरीर पुष्टिके लिये स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निष्पक्ष व्यक्तियोंके हाथोंसे अपनेको बचाते हैं । अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्टका तुम दमन करो ।

७ यज्ञनीय अभि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगोंको जानकर यज्ञकर्त्ताकी ही कामना करो । आक्रमणकारी अग्नि, पवित्रताभिकापी यज्ञमान जैसे श्रुतिवर्कोंके लिये शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यथासमय, यज्ञमानके शिक्षणीय हो ।

अथोचाम निषत्वनान्यस्मिन्मानस्य स्रुतः सहसाने अग्नौ ।  
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेयं बृजनम् जीरदानुम् ॥ ८ ॥

१६० सूक्त । बृहस्पति देवता । त्रिष्टुप्छन्द ।

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम् बृहस्पतिं वर्धयानव्यमर्कैः ।  
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥  
तमृत्स्थिया उपवाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसजि ।  
बृहस्पतिः सहज्जो वरांसि विश्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥  
वपस्तुति नमस उद्यति च श्लोकं यंसत् सवितैव प्रावह ।  
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमा अरक्षस्तुनिष्मान् ॥ ३ ॥  
अस्य श्लोका दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यस्य दक्षभृद्विचेताः ।  
मृगाणां न हेनयो यन्ति चेमा बृहस्पतेर्गहिमायां अमिधून् ॥ ४ ॥  
ये त्वा देवोन्निकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।  
न दृष्ट्ये अनुद्दासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियासम् ॥ ५ ॥

८ मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अरिनेके लिये ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं । हम इन अतोन्निय-प्रकाशक मंत्रों द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे । हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

१ होता, अभीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पतिको पूजा-साधक मंत्रों द्वारा वर्द्धित करो । वह स्तोत्राको नहीं छोड़ते । दीप्तियुक्त और स्तूयमान बृहस्पतिको गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं ।

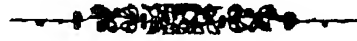
२ वर्षा ऋतु-सम्बन्धिनी स्तुतियाँ बृजन-कर्म-रूप बृहस्पतिके पास जाती हैं । वह देवामितायियोंको फल देते हैं । वह सारे विश्वको व्यक्त करते हैं । वह स्वर्गव्यापी मातरिश्वाकी तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञके लिये सम्भूत हुए हैं ।

३ जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानोंकी स्तुति, अन्न, दान और मंत्रोंके स्वीकारके लिये चेष्टा करते हैं । राक्षसों और शत्रुओंसे शून्य बृहस्पतिको शक्तिसे दिवसकालीन सूर्य भयंकर जगत्तुकी तरह थलशाली होकर धूमते हैं ।

४ मृलोक और घृलोकमें बृहस्पतिकी कीर्ति व्याप्त होती है । बृहस्पति सृगोंकी तरह पूजित हव्य चारण करते हैं । वह प्राणिजोंमें चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं । बृहस्पतिका आयुध शिकारी पुलकोंक आयुधकी तरह जाता है । उनका आयुध मायायियोंके सामने प्रतिदिन दोबारा है ।

५ बृहस्पति, जो पापी लोग कस्यणवाही बृहस्पतिको बूढ़ा बेल जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना । बृहस्पतिदेव, जो सोमयज्ञ करता है, उसपर तुम अवश्य रूपा रक्षते हो ।

सुप्रैतुः सुयवसो न पन्था दुर्नियंतुः परिप्रीतो न मित्रः ।  
 अनर्वाणो अभि ये चक्षतेः नोपीवृता अपार्णवन्तो अस्थुः ॥६॥  
 सं यं स्तुमोवन्धो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।  
 स विद्वान् उभयं चष्टे अस्तवृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥  
 एवामहस्पतिविजातस्तुविष्मान्वृहस्पतिवृषभो धायि देवः ।  
 स नःस्तुतो वीरवद्धातु गोमन्त्रिद्यामेपं वृजनं जीरवानुम् ॥८॥



१६१ सूक्त । जल, तृण और सूर्य देवता । त्रिष्टुप् और महा पंक्ति छन्द ।  
 कङ्कषी न कङ्कतोथो सतीनकङ्कतः ।  
 द्वात्रिंति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१॥  
 अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ती परायती ।  
 अथो अत्रन्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिपती ॥२॥  
 शरासः कुशरासो दर्मासः शैर्या उत ।  
 मौञ्जा अदृष्टाः घेरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

६ वृहस्पति, तुम सुखगामी और सुखाद्य-विशिष्ट यजमानके मार्गरूप और दुष्टहन्ता राजाके वन्धु हो । जो हमारी निष्ठा करते हैं, उनके सुरक्षित होनेपर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो ।

७ जैसे मनुष्य राजासे मिलता है, तद्वयवर्त्तिनी नदी जैसे समुद्रमें मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतियाँ वृहस्पतिमें मिलती हैं । वह विद्वान् हैं । आकाशचारी पक्षीको तरह वृहस्पति-रूपसे जल और तट, दोनोंको देखते हैं । अथवा वृष्टिकामी अभिक्ष वृहस्पति, मध्यमें स्थित होकर तट और जल दोनोंको उत्पन्न करते हैं ।

८ इसी रूपसे वृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, दीप्तिमान् होकर और बहुतोंके उपकारके लिये उत्पन्न हुए हैं । उनका स्तव करनेपर वह हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ अल्प विषवाले, महा विषवाले, जतीय अल्प विषवाले, दो प्रकारके, जलचर और स्थलचर, बाह्य प्राणी तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष द्वारा, अच्छी तरह, लिस किये हुए हैं ।

२ जो औषध खाता है, वह अदृश्य विषचर प्राणीको विनष्ट करता है और प्रत्यावर्त्तन कालमें उसे विनष्ट करता है । बिनाशके समय नाश करता और पिते जानेके समय पिसता है ।

३ शर, कुण्डर, दर्भ, सेर्य, मुञ्ज वीरण, आदि घासोंमें छिपे विषचरण मिलकर मुझे लिप्त करते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असहन्नि मृगासो अविभक्त ।  
 नि केतवो जमानां न्यदृष्टा अलिप्तत ॥४॥  
 वत छत्ये प्रत्यदृशन्प्रदोषं तत्करा इव ।  
 अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतम ॥५॥  
 द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।  
 अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥  
 ये अस्या ये अंग्याः सूचीका ये प्रकडूताः ।  
 अदृष्टाः किञ्चनेह वः सर्वं साकं नि जस्यत ॥७॥  
 उत् पुरस्तात् सूर्यं पति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।  
 अदृष्टान्तसर्वाञ्जं भयनत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥  
 उदपन्नदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्धन् ।  
 आवित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

४ जिस समय गायें गोष्ठमें बेठी रहती हैं, जिस समय हरिण, अपने-अपने स्थानोंपर, विभाम करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रामें रहता है, उस समय अदृष्ट विचर मुक्त लिप्त किये हुए हैं ।

५ तत्करकी तरह वन सबको रातको देखा जाता है । वे, अदृष्ट होनेपर भी, सारे संसारको देखते हैं; इसलिये मनुष्य सावधान हो जायें ।

६ स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम भ्राता और अदिति भगिनी हैं । अदृष्ट-समक्षी कोग, सुम कोग अपने-अपने स्थानपर रहो और यथासुख गमन करो ।

७ जो विचर स्कन्धवाले हैं, जो अंगवाले ( सर्प ) हैं, जो सूचीवाले ( हरिणकादि ) हैं, जो अतीव विचर हैं, वेते अदृष्ट विचरगणका यहाँ क्या है ? तुम सब लोग हमारे पाससे चले जाओ ।

८ पूर्व दिशामें सूर्य उगते हैं, वह सारे संसारको देखते और अदृष्ट विचरोंका विनाश करते हैं । वह सारे अदृष्टों और यातुधानी [ राक्षसी वा महोरगी ] का विनाश करते हैं ।

९ सूर्य, बड़ी संख्यामें, विषोंका विनाश करते हुए, उदित होते हैं । सर्वक्षी और अदृष्टोंके विनाशक आवित्य जीवोंके मंगलके लिये उदित होते हैं ।

सूर्ये विषमा सजामि द्रुतिं सुरावतो गृहे ।  
 सो चिन्न न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

इत्यस्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।  
 सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।  
 ताश्चिन्नु न मरान्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नघतीनां विषस्य गोपुषीणाम् ।  
 सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्तस्त्रिसारो अग्रवः ।  
 तास्ते विषं विजग्निर उदकं कृमिभर्ताग्वि ॥१४॥

१० शौचिकके घरमें चर्ममय छत्रपात्रकी तरह में सूर्यमण्डलमें विषपकता हुई । जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-त्याग नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत कर देती है ।

११ जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षीने तुम्हारा विष खाकर डगल दिया है, जैसे उसने प्राण त्याग नहीं किया, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१२ अग्निकी सातों जिह्वाओंमेंसे प्रत्येकमें श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकारके पक्षी विषकी पुष्टि वनाश करते हैं । वे कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्य दूरस्थित विषका अपनयन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१३ में सारी विष-नाशक जिनयानवे नदियोंके नामोंका कीर्तन करता हूँ । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषका अपनोदन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत बना देगी ।

१४ जैसे स्त्रियाँ वृक्षोंमें जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हारा विष दूर करे ।

इयत्तकः कुषुम्भक स्तकं भिनद्म्यश्मना ।  
 ततो विषं प्र वाधते पगाचौरनुसंवतः ॥१५॥  
 कुषुम्भकस्तदग्रवीदुगिरेः प्रवर्तमानकः ।  
 वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

१५ देह, अतोव छोटा नकुल तुम्हारा विष दूर करे । यदि न करे, तो मैं इस कुटिसत जन्तुको कोष्ट द्वारा मार डालूँगा । मेरे शरीरसे विष दूर हो और दूर देशमें चला जाय ।

१६ पर्वतसे आकर, उस समय, नकुलने कहा—“वृश्चिकका विष रस-रस्य है ।” हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है ।

पञ्चम अध्याय समाप्त



प्रथम मण्डल समाप्त





# द्वितीय मण्डल



२ अष्टक । २ मण्डल । ५ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । गृत्समद् ऋषि ।\* जगती छन्द ।

त्वमग्ने द्युमिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधोभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुविः ॥१॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्विष्यं तव नेष्टं त्वमग्निदूतायतः ।

तव प्रशास्त्रं त्वमञ्जरीयसि अग्ना चासि गृहपतिश्च नो वमे ॥२॥

१ मनुष्यों के स्वामी अग्निदेव, यज्ञ-दिनमें तुम उत्पन्न होओ। सर्वतः दीमिशाकी होकर उत्पन्न होओ। जलमें उत्पन्न होओ। पाषाणमें उत्पन्न होओ। वनसे उत्पन्न होओ। ओषधियोंमें उत्पन्न होओ।

२ अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदिका कार्य तुम्हारा ही कर्म है। तुम आनोष हो। त्रिष्य तुम यज्ञकी इच्छा करने हो, उस समय प्रशान्ताका कम भी तुम्हारा ही है। तुम्हीं अश्वयु और अग्ना गृहपति ऋषि हो। हमारे घरमें तुम ही गृहपति हो।\*

ॐ श्रुतदेवके प्रथम और दशम मण्डलोंके रचयिता अनेक ऋषि हैं; परन्तु अवशिष्ट मण्डलोंके रचयिता एक ही हैं और उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलोंके जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—१ के गृत्समद्, २ के अग्नि, ३ के वामदेव, ४ के अत्रि, ५ के भारद्वाज, ६ के त्रिमिष, ७ के कण्व और ८ के अजितरा ऋषि या इन पुराणोंके वंशोद्भव रचयिता हैं।

कहा जाता है, अजितरा ऋषिके वंशीयशु नहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद् था। एक बार अश्वरत्नाय गृत्समद् ने एक वृक्ष में गये। पीछे इन्द्रने गृत्समद्का उद्धार किया और उनको भृगुवंशीय शुनकके पुत्र शौनक कहकर आर्षिभक्त किया। शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, अजितराके वंशको छोड़कर गृत्समद्के वंशीयता प्राप्त की थी। महाभारत (अनुशासन पर्व)में विदित होता है कि, गृत्समद् वैश्य अत्रियोंके राजा और शौनक उनके पुत्र थे। एक बार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममें जा छिपे। भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा घमके। पक्ष्मनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें अत्रिय नहीं आते। ऋषि-वाक्य असत्य नहीं होता; इसलिये हमी दिनमें वीतिहव्य आश्रम हो गये और उन्होंने पुत्र गृत्समद् आर्षिभक्त किया। किसी पुराणके मतसे तो गृत्समद् सहोत्रके पुत्र और शुनक वा शौनकके पिता हैं। गृत्समद्ने ही जाति-परिभाषा की छटि की—यह भी उल्लेख है। किसीके मतसे नेमिवारण्यमें जो द्वादशवर्ष-व्यापी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद् (शौनक) प्रधान थे।

\* ये यज्ञके कई ऋत्विकोंके नाम हैं। बड़े यज्ञमें ११ ऋत्विक् रहते थे। ११ मण्डलके ३० ऋक्में इनके विवरण हैं।



त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुहगायो नमस्यः ।  
 त्वं ब्रह्मा रयिषिदुर्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३॥  
 त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।  
 त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्यं सम्भुजं त्वमंशो विद्ये देव भाजयुः ॥४॥  
 त्वमग्ने त्वष्टा विधत्ते सुवीर्यं तव ग्नाधो मित्रमहः सजात्यम् ।  
 त्वमाशुदेमा ररिषे स्वश्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरुवसुः ॥५॥  
 त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मादतं पृक्ष ईशिषे ।  
 त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्खयस्त्वं पूषाविधत्तः पासि नु त्मना ॥६॥  
 त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।  
 त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्वमे यस्तेविधत् ॥७॥  
 त्वामग्ने दम आविशपतिं विशस्त्वां राजानं सुविद्वत्रमृजते ।  
 त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८॥

३ अग्निदेव, तुम साधुओंका मनोरथ पूर्ण करते हो; इसलिये तुम्हो विष्णु हो, तुम बहुतोंके स्तुतिपात्र हो; तुम नमस्कारके योग्य हो। घनवान् स्तुतिके अधिपति, तुम मन्त्रोंके स्वामी हो, तुम विविध पदार्थोंकी सृष्टि करते और विभिन्न बुद्धियोंमें रहते हो।

४ अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिये तुम राजा वरुण हो। तुम शत्रुओंके विनाशक और स्तुति-योग्य हो; इसलिये तुम मित्र हो। तुम साधुओंके रक्षक हो, इसलिये तुम अर्यमा हो। अर्यमाका दान सर्वव्यापी है। तुम अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञमें फलदान करो।

५ अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने सेवकके वीर्यरूप हो। सारी स्तुतियाँ तुम्हारी हो हैं। तुम्हारा तेज हितकारी है। तुम हमारे बन्धु हो। तुम शीघ्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अश्व-युक्त घन देते हो। तुम्हारे पास बहुत घन है। तुम मनुष्योंके बल हो।

६ अग्नि, तुम महान् आकाशके असुर रुद्र हो। तुम महर्षिके बलस्वरूप हो। तुम अन्नके ईश्वर हो। तुम सुखके आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अश्वपर जाते हो। तुम पूषा हो, तुम स्वयं कृपा करके परिचालक मनुष्योंकी रक्षा करते हो।

७ अग्नि, अलंकारकारी यजमानकेलिये तुम स्वर्गदाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नोंके आधार-स्वरूप हो। नृपति, तुम भजनीय घनदाता हो। यज्ञ-गृहमें जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसको तुम रक्षा करते हो।

८ अग्नि, लोग अपने-अपने घरमें तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्योंके पालक, दीप्तिमान् और हमारे प्रति अजुब-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे इन्द्रोंके ईश्वर हो। तुम हमारो, सेकड़ो और दूधो फल देते हो।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्राताय शम्या तनून्वम् ।  
 त्वं पुत्रो भवसि यस्तेविधत्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९॥  
 त्वमग्ने अमुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।  
 त्वं विभास्यनुधक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यक्षमातनिः ॥१०॥  
 त्वमग्ने अर्दितदध दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।  
 त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥  
 त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्त्ववरुणार्हं वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।  
 त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतरुपथुः ॥१२॥  
 त्वामग्ने आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुच्यश्चक्रिरे कवे ।  
 त्वां रातिपाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वं देवा हविरदन्त्याहुनम् ॥१३॥  
 त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रूह आसा देवा हविरदन्त्याहुनम् ।  
 त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञियं शुचिः ॥१४॥  
 त्वं तानत्सञ्च प्रतिचासि मज्मानाग्ने सुजात प्रचदैर्वाग्यसे ।  
 पृथो यदत्र महिनावितै भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

६ अग्नि, यज्ञ द्वारा लोग तुम्हें तृप्त करते हैं; क्योंकि तुम पिटा हो । तुम्हारा अतृत्व प्राप्त करनेके लिये लोग कर्म द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं । तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो । जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो । तुम सखा, शुभकर्ता और शत्रु-निवारक होकर रक्षा करो ।

१० अग्नि, तुम धृष्ट हो । तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो । तुम सर्वत्र विद्युत घन और अन्नके स्वामी हो । तुम अतीव उज्ज्वल हो । अंधकारके विनाशके लिये तुम घोर-घोरे काष्ठ आदिका दहन करते हो । तुम भली भाँति यज्ञका निर्वाह और उसके फलका विस्तार करते हो ।

११ अग्निदेव, तुम हव्यदाताके लिये अर्दित हो । तुम होत्रा और भारती हो । स्तुति द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो । तुम सौ वर्षोंकी भूमि हो । तुम दानमें समर्थ हो । हे धन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो ।

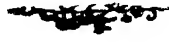
१२ अग्निदेव, अच्छी तरह पुष्ट होनेपर तुम्हीं उत्तम अन्न हो । तुम्हारे स्पृहणीय और उत्तम वर्णमें ऐश्वर्य रहता है । तुम्हीं अन्न, प्राता, बृहत्, घन, बहुल और सर्वत्र विस्तीर्ण हो ।

१३ अग्निदेव, आदित्योंके लिये तुम्हें मुख दिया है । हे कवि, पवित्र देवताओंके लिये तुम्हें जीभ दी है । दानके समय एकत्र देवता यज्ञमें तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूपमें दिया हुआ हव्य भक्षण करते हैं ।

१४ अग्निदेव, आगे अमर और शेष-रहित देवगण तुम्हारे मुखमें, आहुतिरूपमें, प्रदत्त हविका भक्षण करते हैं । मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादिका आस्वाद पाते हैं । तुम छता आदिके गर्भ — (उत्ताप) — रूप हो । पवित्र होकर तुमके जन्म ग्रहण किया है ।

१५ अग्निदेव, बल द्वारा तुम प्रसिद्ध देवोंके साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ । छजात देव, तुम इनसे बलिष्ठ बनो; क्योंकि तुम्हारी ही महिमासे यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान द्यावापृथिवीके बीच व्याप्त होता है ।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्रे रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।  
अस्माञ्च ताँश्च प्रहिनेषि वस्य आवृहद्वैम विदधे सुवीराः ॥१६॥



२ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।  
रुमिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं च क्ष होतारं धृजनेषु धुर्षदम् ॥१॥  
अग्नि एता नकोरुषसाः क्वाशिरग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।  
दिवइवेदरातमानुषा युगाक्षयो भासि परुषार संयतः ॥२॥  
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंसरुन्दिनस्पृथिव्यास्ततिं न्येरिरे ।  
रथमिच वेद्यं शुक्रशोचिपमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥  
तमुक्षमाणं रजसि स्वआदमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आदधुः ।  
पृथ्व्याः एतारं त्रिकन्द्यतमश्रमिः पाथो न पाथुं जनसी उभे अनु ॥४॥  
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मेनुष ऋजने गिरा ।  
हिरिशिषो धृधस्तानासु जर्भर्योर्नस्तृमिश्रितयत्रोहसी अनु ॥५॥

इति सूक्त में मेधावी स्तोत्रार्थों की गौ और अश्व आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले जावे । अग्नि में युक्त होकर यज्ञों विशाल मन्त्र पढ़ेंगे ।

१ । अग्निदेव कोपितमान, शोभन-स्वप्न-सम्पन्न, स्वरादाता, उद्दीप्त, होम-निष्पादक और बलप्रदाता हैं । उन सर्व-  
व्यापक द्वारा वर्द्धित करें और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति द्वारा पूजा करो ।

२ । अग्नि, जैसे दिनमें सूर्य की इच्छा करती है, वैसे ही हमें यजमान लोग दिन और रात्रिमें चाहते हैं ।  
कालान्तर्गता अग्निदेव, तुम संयत होकर आलोकमें व्याप्त हो । मनुष्योंके यज्ञोंमें सदा रहते हो । रातमें प्रदीप्त

३ । अग्नि सदान, आवापृथिवीके ईश्वर, धन-पुत्र रखने सद्य, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और यज्ञ-  
देव । अग्नि देवता लोग उन्हीं अग्निको संसारके मूल देशमें स्थापित करते हैं ।

४ । अग्नि अन्तरीक्षमें धृजि-बल-दाता, चन्द्रमाकी तरफ दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरोक्षगामी ज्वाला द्वारा लोगोंको  
प्राप्त करेगा, जो उस तरह रक्षक और सबको जनयित्री आवापृथिवीको व्याप्त करनेवाले हैं । उन्हीं अग्निको उस विजय  
द्वारा बल प्रदाता माना गया है ।

५ । अग्नि देवादाक होकर अग्निदेव सारे यज्ञोंको व्याप्त करें । मानवोंने इव्य और स्तुति द्वारा उन्हें अलंकृत किया  
है । सूर्य-चन्द्रायुक्त अग्नि वर्द्धमान ओषधियोंके बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं, वैसे ही, आवापृ-  
थिवीको प्रकाशित करते हैं ।

स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वानयिमस्मासु दीदिहि ।  
 आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देववीतये ॥६॥  
 दा नो अग्ने बृहतो दाः सक्षिणो वुरो न बाजं श्रुत्या अपा वृधि ।  
 प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुपसो वि विद्युतुः ॥७॥  
 स इधान उपसो रम्या अनु स्वर्णदीदेदारुणेण भानुना ।  
 होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चाहरायवे ॥८॥  
 एवानो अग्ने अमृतेषु पूर्यं घ्रीष्पीपाय बृहद्विषेभु मानुषा ।  
 दुहाना धेनुवृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुषमिषणि ॥९॥  
 वयमग्ने अर्घता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमाजनां अति ।  
 अस्माकं घृक्षमधि पञ्च कण्टिपृश्वा स्वर्णं शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥  
 स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त् सुजाता इषयन्त सूरयः ।  
 यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये लोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

६ अग्निरेव, हमारे मङ्गलके लिये क्रमागत और वद्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ ।  
 अग्नि, द्यावापृथिवीमें हमें कल दो । मनुष्यों द्वारा प्रदत्त इव्य देवोंके भक्षणके लिये लाया जाय ।

७ अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो । कीर्तिके लिये अन्न दो और अन्नका द्वार खोको । उत्कृष्ट यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको हमारे अनुकूल करो । आदित्यकी तरह उपाय तुम्हें प्रकाशित करती हैं ।

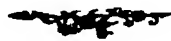
८ रमणीय उपामें अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्यकी तरह, उत्कृष्ट किरणोंमें देदीप्यमान होते हैं । मनुष्योंके होम-साधक, स्तुति द्वारा स्तुयमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओंके स्वामी अग्नि यजमानके पास, प्रिय अतिथिकी तरह, आते हैं ।

९ अग्नि, तुम यथेष्ट भुतिवाले हो । देवोंके पूर्ववर्ती मनुष्योंकी स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है । दूधवाली गायकी तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोत्राकी तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है ।

१० अग्नि, हम तुम्हारे दिये अन्न और अश्वसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लांच जायेंगे और इससे, हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धनराशि सूर्यकी तरह, चार वर्णों ( चार वर्ण और द्वादश निषाद)के ऊपर होलिमान होगी ।

११ वज्र-पराकेला अग्नि, तुम हमारी स्तुतिके बोधय हो । हमारा स्तोत्र अव्यय करो । छज्जमा स्तोत्रा कोण तुम्हारे ही उद्देशसे स्तुति करते हैं । अग्नि, रस और पुत्रकी प्राप्तिके लिये इव्य-विशिष्ट यजमानके यागगृहमें दीप्यमान और यजनीय अग्निकी पूजा की जाती है ।

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूर्यश्च शर्मणि ।  
 वस्त्रो रायः पुरुश्चन्द्रस्य मूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥  
 ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्चपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।  
 अस्माञ्चतांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम पिदधे सुविराः ॥१३॥



१ सूक्त । आप्री देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्गविश्वानि भुवनान्यस्थात् ।  
 होना पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरहंन ॥१॥  
 नराशंसः प्रति धामान्यज्जगत्स्रोः दिवः प्रति मत्ता स्वर्चिः ।  
 घृतप्रपा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यक्षस्य समनक्तु देवान ॥२॥  
 ईलितो अग्रे मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषान्पूर्वो अद्य ।  
 स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषद् यजध्वम् ॥३॥  
 देव बर्हिषध्रमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेश्म्याम् ।  
 घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

१२ सर्वभूतज्ञ अग्नि, तुम्हारा स्तोता और मेघावी यजमान—इस दोनों छल-प्राप्तके लिये तुम्हारे ही होंगे । हमारे निवास-देव, अतिथि आह्वा-प्रद, प्रभूत और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त घन दो ।

१३ अग्नि, जो मेघावी लोग स्तोताओंको गौ और अश्व आदि घन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले चलो । वीर-युक्त होकर हम यज्ञमें बृहत् मन्त्रका उच्चारण करेंगे ।

१ वेदीपर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृहके सामने अर्वास्थित है । होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्राचीन, प्रजा-संरक्षक, धोतमान और पूजा-योग्य अग्नि देवोंकी पूजा करें ।

२ नराशंस नामक अग्नि, छन्दर्ज्वालासे युक्त होकर, अपनी महिमासे, प्रत्येक आहुति-स्थल और प्रकाश-मान तीनों लोकोंको व्यक्त करते हुए, धी बरसानेकी इच्छासे, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञके सामने देवोंको प्रकाशित करें ।

३ इक्षित या इका नामक अग्निदेव, हमपर प्रमत्न चित्तमें, यागकर्मके योग्य होकर, आज, हमारे लिये, मनुष्योंके पूर्ववर्ती होकर देवोंका यज्ञ करो । मरुतों और अच्युत इन्द्रका सम्बोधन करो । श्रुतिविको, कुशपर बैठे हुए इन्द्रका यज्ञ करो ।

४ धोतमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे घन-लाभके लिये, इस वेदीपर अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ । तुम सदा बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो । वसुओ, विरवदेवो, यज्ञ-योग्य आदित्यो, तुम धी-लगाये कुशपर बैठो ।

विश्रयन्तामुविद्या हूयमाना द्वारा देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।  
 व्यचस्वतीविप्रथन्तामजुर्वावर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥  
 साध्वर्पांसि सनता न उक्षिने उषास्नानका वय्येव रन्विते ।  
 तन्तुं तत सन्वयन्ती समाची यज्ञस्य पेशः सुदुग्धे पयस्वती ॥६॥  
 देव्या हांतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः समृवा वपुष्टरा ।  
 देवान्ययजन्तावृनुथा समञ्जतो नामा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥  
 सरस्वती साधयन्ती धियं न इलादेवी भारती विश्वतूर्तीः ।  
 तिस्रो देवीः स्वधया बाहरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निपद्य ॥८॥  
 पिशङ्गकूपः सुमरो षयाधाः श्रष्टा वीरा जायते देवकामः ।  
 प्रजां त्वष्टा विष्यतु नामिमस्मे अथादेवानामप्येतु पाथः ॥९॥  
 वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थाद्ग्रिहविः सद्याति प्रधोभिः ।  
 त्रिधा समकं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो देव्यः समिताप इव्यम् ॥१०॥

५ हे सोतमान, द्वार-रूप आदि, तुम कुल जानो । तुम महान् हो । लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिये इवन करते और सरलतासे तुम्हारे पास जाते । तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशोयुक्त और वर्णनीय रूपके सम्पादक हो । तुम भलो भौति प्राप्त देहात्मा ।

६ हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाला अग्नि-रूप उषाएँ रात्रिको वयन-वतुश दे । रमणियाँको तरह, सहायताके लिये, परस्पर जाते-आते, यज्ञका रूप बनानेके लिये, परस्पर अनुकूल होकर बड़े सन्तुका वयन करती हैं । वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं ।

७ अग्निरूप दिव्य वा होता पहन ही यज्ञक याग्य हैं । वे सर्वापेक्षा विद्वान् और विशाल शरीरसे संयुक्त हैं । वे मन्त्र द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवोंके लिये यज्ञ करते हैं । वे पृथिवीको नामि-रूपिणी उत्तर-वेदों के गाहेपत्य आदि तीन अग्निर्षोंके प्राप्त गमन करते हैं ।

८ हमारे यज्ञकी निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियाँ याग-गृहका आश्रय करके, इव्य-लाभके लिये, निर्दोष रूपसे, हमारे यज्ञका पालन करें ।

९ अग्नि-स्वरूप त्वष्टाकी दयासे हमारे पिशङ्ग वर्ण, यज्ञकर्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्ता, देवाभिकाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हो । त्वष्टा हमें कुल-रक्षक सन्तान दे । देवोंका अन्न हमारे पास आवे ।

१० वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं । विशेष कर्म द्वारा अग्नि मज्जी भौति इव्य पकाते हैं । दिव्य क्षमिता नामके अग्नि तीन प्रकारसे अच्छी तरह सिक्त इव्यका जानकर उसे देवोंके निकट ले जायें ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिघृते श्रितो घृतस्वस्य घाम ।  
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

४ सूक्त । अग्नि देवता । भृगुके अपत्य सोमाहति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

बुधे वः सुद्योत्मानं सुवृत्तिं विशामग्निमतिथि सुप्रयसम् ।  
मित्र इव यो दिधिषाद्योभूद्देव आदेवे जने जातयेदाः ॥१॥  
इमं विधन्तो अपां सधस्ये द्विता दधुर्भृगवो विश्वायोः ।  
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥  
अग्नि देवासो मानुषीषु विश्व प्रियं भुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।  
सशीद्व्यदुशतीरुर्म्या आदक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३॥  
अस्य रक्षा स्वस्येव पुष्टिः सद्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।  
वि यो मरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोघवीति वारान् ॥४॥  
आयन्मे अर्ध्वं वनदः पनन्तोशिभ्यो नामिमीत वर्णम् ।  
स चित्रेण चिकितेरंसुभासा जुजुवां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥

११ में अग्निमें जो ढाकता हूँ । घृत ही उनकी जन्मभूमि, आश्रय-स्थान और दीप्ति है । अभीष्टवर्षी अग्नि, हव्य देनेके समय देवोंको बुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकारमें प्रवृत्त हव्य ले जाओ ।

१ यजमानो, मैं तुम्हारे लिये अतीव दीप्तियुक्त, निष्पाप, यजमानोंके अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त अग्निको बुलाता हूँ । वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्योंसे देवोंतकके धारणकर्ता हैं ।

२ भृगुओंने अग्निकी सेवा करके उन्हें जलके निवासस्थान, अन्तरीक्ष और मानवोंकी सन्तानोंके बीच स्थापित किया था । शीघ्रगामो अववाले और देवोंके स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियोंको पराभूत करें ।

३ स्वर्ग जाते समय देवोंने, मित्रकी तरह, अग्निको मनुष्योंके बीच स्थापित किया था । वह अग्नि हव्यदाता यजमानके लिये, उसके योग्य गृहमें स्थापित होकर, अपनी अभिलाषा करनेवाली रात्रियोंमें दोल होते हैं ।

४ अपने शरीरकी पुष्टि करनेके सहस्र अग्निके शरीरकी पुष्टि करना भी रमणीय है । जिस समय अग्नि चारो ओर फैलते और काष्ठको भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है । जैसे रथका अरब बार-बार पूछें कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काठोंपर अपनी शिखा कँपाते हैं ।

५ मेरे सहयोगी स्तोता लोग अग्निके महत्त्वकी स्तुति करते हैं, वे आपही ऋत्विकोंके पास अपना रूप प्रकाशित करते हैं । अग्नि रमणीय हव्यके लिये विचित्र किरणमालासे प्रकाशित होते हैं । अग्नि बुद्ध होकर भी बार-बार उसी क्षण युवा हो सकते हैं ।

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्णं पथा रथ्येव स्वानीत् ।  
 कृष्णाध्वा तपू रण्वञ्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥  
 स यो व्यस्थादमिदक्षदुर्वो पशुर्नेति स्वयुरगोपाः ।  
 अग्निः शोचिष्मा अतसान्गुष्णन्कृष्णव्यधिरस्वदयं न भूम ॥७॥  
 नू ते पूर्वस्थावसो अधीतो तृतीये विदयं मन्म शंसि ।  
 अस्मे अग्ने संयद्गीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजंस्वपत्यं रयि दाः ॥८॥  
 त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपरी अभि ष्युः ।  
 सुवीराशो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

५ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।  
 प्रयक्षं जेन्यं वसु शकेम धाजिनो यमम् ॥१॥  
 आ यस्मिन्त्सप्तर्श्मयस्तता यक्षस्य नेतरि ।  
 मनुष्वदैव्यमष्टमं पोता विश्व तदिन्वति ॥२॥

६ तृषाणुकी तरह जो अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं, जलकी तरह इधर-उधर जाते हैं, रथवाहक अश्वकी तरह शब्द करते हैं, वह कृष्ण-मार्ग और सापक होनेपर भी नभोमण्डलवाले शुलोककी तरह शोभन हैं ।

७ जो अग्नि विश्वको व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विस्तृत पृथिवीपर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशुकी तरह अपनी इच्छासे गमन कर विचरण करते हैं, वही दीप्तिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदिको जलाकर, वध्याकारो कण्टक आदिको दूरकर, अच्छी तरह रसास्वदन करते हैं ।

८ अग्निदेव, तुमसे पहले, प्रथम सवनमें, जो रक्षा की थी, उते हम आज भी स्मरण करके तृतीय सवनमें मनाहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । अग्नि, तुम हमें वीर-विशिष्ट करो । तुम हमें महान् कीर्त्तिमान् करो । हमें सुन्दर अपत्य और धन दो ।

९ अग्नि, गृत्समद-वंशीय ऋषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, जम्बका पाठ करते हुए, गुहामें अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्त्तमान धन-विशेष प्राप्त करेंगे । वे उत्तम पुत्र आदिको प्राप्त कर शत्रुओंको परास्त करेंगे । मेधावी और स्तुतिकारो यजमानोंको बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो ।

१ होता, चेतन्यदाता और पिता अग्नि पितरोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए । हम भी इष्ट-युक्त होकर असीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ।

२ यज्ञ-नेता अग्निमें सात रश्मियाँ विस्तृत हैं । देवोंके पोताके समान, अग्नि मनुष्योंके पोताकी तरह, वृक्षके अन्धम स्थानीय होकर उभर आता है ।



दधन्ये वा यदीमनु वान्दप्रह्णाणि वेरुतत् ।  
 परिविश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥  
 साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुवाजनि ।  
 विद्वानस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानुराहते ॥४॥  
 ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टः सचन्त धेनवः ।  
 कुर्वन्तिसुभ्य आवरं स्वसारो या इव ययुः ॥५॥  
 यदीमातुरुपस्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।  
 तासामध्वयुरागतौ यवो घृष्टीव मादते ॥६॥  
 स्वः स्वाय धायसे कृणतामृत्स्विगृत्वजम् ।  
 स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमाररिमा वयम् ॥७॥  
 यथा विद्वान् अरङ्कुरद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।  
 अयमग्न त्वे अपि यं यज्ञं चक्रमा वयम् ॥८॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।  
 इमां मे अग्नं समिधमिमामुपसदं वने । इमा उप श्रुधो गिरः ॥१॥

२ अध्या इस यज्ञमें ऋत्विक्गण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब अग्निदेव जानते हैं ।

४ पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुष्यक्रतु के साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे लोग फल तोड़नेके लिये एक ढालसे दूसरो ढाल-पर जाते हैं, वैसे ही यजमान, अग्निके यज्ञको अवश्य फल-दाता समझकर, एकके अनन्तर दूसरा अनुष्ठान करता है ।

५ जो अंगुलियाँ इस कार्यमें लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्निके लिये धेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा करते हैं तथा आर्द्ररूप हाकर इनके गादपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपोंको सेवा करते हैं ।

६ जिस समय जूहु मातृ-रूपिणी वेदीके पास अग्निको समान घृत-पूर्ण करके रखा जाता है, उस समय जैसे वृद्धिमें यव पुष्ट होता है, वैसे ही अध्वर्यु-रूप अग्नि भी दृष्ट होते हैं ।

७ ये ऋत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्मके लिये ऋत्विक्का कर्म करते हैं । हम भी, उसके अनन्तर ही, स्तोम, यज्ञ और इव्य प्रदान करेंगे ।

८ अग्नि, तुम्हारी माहिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवोंकी भकी भाँति वृत्ति कर सके, वैसे करो । हम जिस यज्ञका करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है ।

१ अग्नि, तुम मेरो इस समिधा और आहुतिका उपभोग करो; मेरी यह स्तुति श्रुतों ।

अयाते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२॥  
 रधं त्वा गीर्मिर्गवणसन्द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपयम सपर्यवः ॥३॥  
 स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुशवन् । युयोध्यस्मद्वे षांसि ॥४॥  
 स नो वृष्टिं दिवस्पति स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणोरिषः ॥५॥  
 ईलाना यावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरागहि ॥६॥  
 अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाज्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥  
 सविद्धां आच पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुपक् । आचास्मिन्सत्सि बर्हिषि ॥८॥



● सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्नेद्यं मन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥  
 मानो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्पितस्या उत द्विषः ॥२॥  
 विश्वा उत स्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेर्महि द्विषः ॥३॥

१ अग्नि, इस इस आहुतिके द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे । वसुपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञशाली और सुजन्मा अग्नि, इस स्तुतिसे तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे ।

२ घनद अग्नि, तुम स्तुतिके योग्य और यज्ञके अभिलाषी हो । हम तुम्हारे सेवक हैं । स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे ।

४ अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो । ठो और हमारे शत्रुओंको दूर करो ।

५ बही अग्नि, हमारे लिये, अन्तरीक्षसे वृष्टि प्रदान करते हैं । वे हमें महान् बल और अनन्त प्रकारके अन्न दें ।

६ तत्कृतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इस लिये आओ । मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रभय चाहता हूँ ।

७ मेधावी अग्नि, तुम मनुष्योंके हृदयको पहचानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो । तुम संसार और बन्धु-ओंके दूत-रूप हो ।

८ अग्नि, तुम विद्वान् हो । हमारी मनःकामना पूर्ण करो । तुम चैतन्यवाले हो । यथाक्रम तुम देवोंका यज्ञ करा और कुशके ऊपर बैठो ।

१ हे तत्कृतम, अरुणकलां और व्यास अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-वाञ्छित धन ले आओ ।

२ अग्नि, मनुष्यों या देवोंकी शत्रुता हमें पराभूत न करे । हमें दोनों प्रकारके शत्रुओंसे बचाओ ।

३ अग्नि, अलकी घाराकी तरह हम सारे शत्रुओंको स्वयं ही लौच जायेंगे ।

शुचिः पावक वन्धोऽग्रे बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥  
 त्वं नो असि भारताग्रे वशाभिरुक्षमिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥  
 द्रवणः सर्पिरासुतिः प्रज्ञां हांता वरेण्यः । सदसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६॥

८ सूक्त । अग्नि देवता । गृत्समद् ऋषि । गायत्री अनुष्टुप् छन्द ।  
 वाजयन्तिव नू रथान्योगाँ अग्रे रुपस्तुहि । यशस्तमस्य मीह षः ॥१॥  
 यः सुनीथोददाशुषेजुर्यो जयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥  
 य उश्रिया इमेष्वादाषोषसि प्रशस्यते । यस्य घृतं न मीयते ॥३॥  
 आयः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अज्जानो अजरैरभि ॥४॥  
 अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अभिश्रियो दधे ॥५॥  
 अग्रेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।  
 अरिष्यन्तः सचेमह्यभिष्याम पृतन्यतः ॥६॥

४ अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्ता और वन्दनीय हो । घृत द्वारा आहुत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो ।  
 ५ भरपूरता अग्नि, तुम हमारे हो । तुम वन्द्या गौ, वृष और गर्भिणी गौ द्वारा आहुत हुए हो ।  
 ६ जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वही पुरातन, होमनिष्पादक, वरेणीय और बलके पुत्र अग्नि अतीव रमणीय हैं ।

१ हांता, अन्नाभिलाषी, पुरुषकी तरह प्रभूत यशवाले और अभीष्टदाता अग्निके अश्वोंकी स्तुति करो ।  
 २ सुनेमा, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि इविशीना यजमानके शत्रु-नाशके लिये आहुत हुए हैं ।  
 ३ सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृहमें आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, इनका घृत कभी नहीं क्षीण होता ।  
 ४ उँसे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं द्वारा चारों ओर प्रकाशित होकर घसे ही शिखाओं द्वारा प्रकाशित होते हैं ।

५ शत्रुओंके विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्निके लिये सारे ऋह्मन्त्र वर्धित होते हैं । अग्निने सारी शोभाएँ धारण की हैं ।

६ हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवोंका प्रभय प्राप्त किया है । हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता । हम शत्रुओंको जीतेंगे ।

पञ्चम अध्याय समाप्त

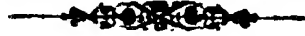


## षष्ठ अध्याय



९ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

नि होता होतृषद्वै विद्वानस्त्वेपो दीदिवी असदत्सुवक्षः ।  
 अद्वयप्रतप्रमतिषेसिष्ठः सहस्रं भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥  
 त्वं दूतस्त्वमुनः पररूपास्त्वं वस्य आवृषभ प्रणेता ।  
 अग्ने तोकस्यनस्तनेतनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्वोधि गोपाः ॥२॥  
 विधेम ते परमे जन्मन्मग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।  
 यस्माद्योनेरुदारिथायजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥  
 अग्ने यजस्व हविषा यजीयाऽष्टु ष्टी देऽजममिगुणीहि राधः ।  
 त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥  
 वमयन्ते न क्षीयते वसव्यं विवेदिवे जायमानस्य दस्य ।  
 कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पति स्वपत्यस्य राधः ॥५॥  
 सेनानी केन सुविद्वो अरुमे यष्टा देवा आयजिष्ठः स्वस्ति ।  
 अद्वयो गोपा उत नः पररूपा अग्ने द्युमकुतरेवद्विदीहि ॥६॥



१ अग्नि देवोंके होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकृष्टबल-शाली, अप्रतिहत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवासदाता, सबके भरणकर्ता और विमुक्त निष्ठावाले हैं । होताके भवनमें अग्नि अच्छी तरह बैठे ।

२ अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम हमारे दूत बनो । हमें आपहुंसे बचाओ । हमारे पास धन हो । प्रमाद-रूप्य और शीघ्रिवाली होकर हमारे और हमारे पुत्रोंके रक्षक बनो । अग्नि, जागो ।

३ अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थानमें तुम्हारी सेवा करेंगे । जिस स्थानसे तुम उद्भूत हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे । वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर अश्वयुं कोग तुम्हें लक्ष्य कर इष्ट्य प्रदान करते हैं ।

४ अग्नि देव, याज्ञिकोंमें तुम अष्ट हो । इष्ट्य द्वारा तुम यज्ञ करो । तत्पर होकर तुम देवोंके पास हमारे दिये जाने योग्य अन्नकी प्रशंसा करो । तुम धनोंमें उत्कृष्ट धनके अधिपति हो । तुम हमारे प्रदीप्त स्तोत्रको जानो ।

५ इक्ष्वांश्वर अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो । तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता । यज्ञः तुम स्तोत्रकर्ता यजमानको अन्न-युक्त करो । उसे सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बनाओ ।

६ अग्निदेव, तुम अपने दलके साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो । तुम दोनोंके याज्ञिक, सर्वापेक्षा उत्तम यज्ञ-कर्ता, देवोंके रक्षक और हमारे पालक हो । कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता । धन और कान्तिसे युक्त होकर तुम चारों ओर देवीप्यमान बनो ।

१० सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

जोहृत्रो अग्निः प्रथमः पितेवैलरूपे मनुषा यत् समिद्धः ।

श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्त्यजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।

श्यावा रथं वहतो रोहिता वीतारुपाह चक्रे विभृवः ॥२॥

उत्तानायामजनयन्त्सुपूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।

शिरिणायां चिच्छुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥

जिघर्ष्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यन्विष्टमन्त्रे रभसं दृशानम् ॥४॥

आ विश्वतः प्रत्यङ्मन्त्रं जिघर्ष्यैरक्षसा मनसा तज्जुपेन ।

मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५॥

ज्ञेया भागं सहसानो घरेण त्वा दूतासो मनुवद्वदेम ।

अनूनमग्नि जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

१ अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिताके समान हैं । अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्थानमें प्रज्वालित हुए हैं । वह दीप्ति-पूर्ण, मरण-रहित, विमिश्र-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं ।

२ अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विचित्र दीप्ति-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान सुनें । दो काल चोढ़े अग्निका रथ वहन करते हैं । वह विविध स्थानोंमें जाते हैं ।

३ अन्वयुं लोगोंने ऊर्ध्वमुख अरणि या काष्ठमें प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया है । अग्नि विविध ओषधियोंमें, गर्भरूपसे, अवस्थित हैं । रातमें उत्तम-ज्ञानवान् अग्नि, महादीप्ति-युक्त होकर, वास करते हैं । उन्हें अन्वकार नहीं क्षिपा सकता ।

४ सारे भुवनोंके अधिष्ठाता, महान्, सर्वत्रगामी, शरीरवान्, प्रबुद्ध हव्य द्वारा व्याप्त, बलवान् और सबके हव्य-मान अधिष्ठाता हम हव्य-घृतके द्वारा पूजा करते हैं ।

५ सर्वव्यापी और यज्ञके अभिमुख आनेकी इच्छा करते हुए अग्निको घृत द्वारा हम सिक्त करते हैं । वह, शान्त चित्तसे, हम घृतको ग्रहण करें । मनुष्योंके मज्जीय और श्लाघनीय वर्णवाले अग्निके पूर्ण प्रज्वलित होनेपर उन्हें कोई छू नहीं सकता ।

६ अपने तेजोबलसे शत्रुओंको पराजित करनेके समय, हे अग्नि, तুম हमारी सम्भोग-योग्य स्तुतिको जानो । तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनुष्योंकी सरह स्तोत्र करते हैं । उन बहुल-मधुस्पृशी और धन-प्रद अग्निका जुहु और स्तुति द्वारा मैं आह्वान करता हूँ ।

११ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिपयः स्याम ते दावने वसूनाम् ।  
 इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥  
 सूजो महीरिन्द्र या अविग्धः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वाः ।  
 अमर्त्यं चिदासं मन्यमानमवामिनदुक्थैर्वीवृधानः ॥२॥  
 उक्थेष्विन्द्र शूर येषु चाकन्तुतोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।  
 तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिन्धवे न शुभ्राः ॥३॥  
 शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाहोर्वृधानाः ।  
 शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मेदासीर्विशः सूर्यण सहाः ॥४॥  
 गुहाहितं गुह्यं गूढमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।  
 उतो अपो द्यां तस्तम्बांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥  
 स्तवानुत इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूनना कृतानि ।  
 स्तवावज्रं बाहोःशन्तं स्तवाहरी सूर्यस्य केतू ॥६॥  
 हरो नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चूतं स्वारमस्वाष्टार्म् ।  
 वि समना भूमिरप्रधिष्ठारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

१ इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो । तिरस्कार नहीं करना । हम तुम्हारे घन-दानके पात्र हैं । नदीकी तरह प्रवाहशाली यह इन्द्र यज्ञमानके किये धनेवृक्षा करता है । यह तुम्हें वर्द्धित करे ।

२ शूर इन्द्र, तुमने जो जल बरसाया था, वृत्रने उसी प्रभूत जलपर आक्रमण किया था । तुमने उस जलको छोड़ दिया था । उस वसु या दास ( वृत्र ) ने अपनेको अमर समझा था । स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर इसको तुमने नीचे पटक दिया ।

३ शूर इन्द्र, जिस छलकर या वृत्रकृष शूडमंत्र और स्तोत्रकी तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, यज्ञके प्रति, तुम्हारे लिये प्रसूत होती है ।

४ इन्द्र, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारा छलकर बल वर्द्धित करें तथा तुम्हारे हाथोंमें दीप्त वज्र अर्पण करते हैं । वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगोंको, सूर्य-रूप आयुध द्वारा, पराभूत करते हो ।

५ शूर इन्द्र, गुह्यमें अवस्थित, अप्रकाश्य, लुक्कायित, विरोहित और जलमें अवस्थित जिस वृत्र (अहि)ने अपनी शक्तिसे अन्तरीक्ष और पृथ्वीको विस्मित किया था, उसको वज्र द्वारा तुमने विनष्ट किया था ।

६ इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महत्कीर्तियोंको स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मोंकी स्तुति करते हैं । तुम्हारे दोनों हाथोंमें दीप्यमान वज्रकी स्तुति करते हैं । तुम सूर्यात्मा हो । तुम्हारे पताका-स्वरूप हरि नामके अश्वोंको हम स्तुति करते हैं ।

७ इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़ जलवर्षी मेघवर्षिण करते हैं । समतल पृथिवी मेघ-गर्जन सुनकर प्रसन्न हुई । मेघने ओ, इधर-उधर, घटक शोभा प्राप्त की ।

नि पर्वतः साधप्रगुच्छन्तसं मानृगिर्वावशानां अकान ।  
 दूरे परिवाणी वधयन्त इन्द्र पिता धमनिं पप्रथन्ति ॥८॥  
 इन्द्रो महान् सितधुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्तिः ।  
 अरोजतां रोदसी मियानेकनिकदतां वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥  
 अरोरवीवृष्णो अस्य वज्रो मानुषं यग्मानुषो निज्वात् ।  
 नि मायिनो दानवस्य माया अपाद्यत्यपिवात्सुतस्य ॥१०॥  
 पिबापिवेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।  
 पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्या सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥  
 त्वे इन्द्राप्यभुम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।  
 अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सगस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥  
 स्यामतेन इन्द्र येत ऊती अवस्यव ऊजं वर्धयन्तः ।  
 शुष्मन्तमं यं चाक्रताम देवास्मा रायिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥  
 रासि क्षयं रासि मित्रमस्मै रासिशयं इन्द्र मीरन्तं नः ।  
 सजोषसा ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यप्रणोतिम् ॥१४॥

८ प्रमाद-गुण्य मेघ अन्तरीक्षमें आया और मातृ-भूत जलके साथ इषर-उषर घूमने लगा । मस्तौने अत्यन्त दूर अन्तरीक्षमें अवस्थित शब्दों को वदित करने हुए इन्द्र द्वारा प्रेरित उस शब्दों चारों ओर फैला दिया ।

९ वही इन्द्रने इषर-उषर संचारी मेघों अरु सप्रत मायावी वृत्रको मार गिराया । जलवर्षक इन्द्रके वज्रके व्यापक शब्दमें भय पाकर आवापथिही कम्पित हुई ।

१० जिस समय मनुष्योंके हितकारो इन्द्रने मनुष्योंके वृत्र वृत्रके विनाशकी इच्छा की थी, उस समय अभीष्ट-वर्षक इन्द्रका वज्र बार-बार गर्जन करने लगा । इन्द्रने अदिभूत सोमपान करके मायावी दानवकी मारी मायाको निपातित कर दिया था ।

११ इन्द्र, तुम अभिपूत सोमपान करो । अरुदाता स्तोक-तुम्हें आसीदित करें । सोमरस तुम्हारे उदरकी पूर्ति करके तुम्हें प्रसन्न करे । इस प्रकार उदर पूरक सोमरस इन्द्रका गण्य रहे ।

१२ इन्द्र हम मेघावी है । हम तुम्हारे अन्तरा म्यान पावय । क्रमफलकी कामनामें हम तुम्हारी सेवा करके यज्ञ करेंगे । तुम्हारा आश्रय पानेकी इच्छामें हम तुम्हारी प्रशंसाका ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे वन-दानका प्राप्त हो सकें ।

१३ इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लामकी इच्छामें जा तुम्हारा इच्छा वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हींकी तरह तुम्हारे आश्रित हो जायें । अतिसान् इन्द्र, हम जिस जनकी इच्छा करते हैं, तुम हमें स्वर्गिका बलवान् और वीर-पुत्र-पुत्र नहीं बन दो ।

१४ इन्द्र तुम हमें गृह दो, वन्य दो और मदापुहर्षोंकी तरह वीर्य दो, प्रसन्न-चित्त वायुगज अतीव आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम पान करें ।

यथा चक्षुषु येषु मन्दसानस्तृणसोमं यद्दि द्रव्यमिन्द्र ।  
 अस्मान्तसु पृत्स्वातरुवावर्धया द्यां वृद्धिर्गर्भः ॥१५॥  
 वृहन्त इत्यु ये ते तरुवावर्धमिवा सुम्नमाविवासान ।  
 स्तृणानासो बहिः पस्त्यावस्वोतः इन्द्रि वाजमग्मन ॥१६॥  
 उग्रं ध्विन्नु शूरा मन्दसानस्त्रिकदूकेषु पाहि सोममिन्द्र ।  
 प्रबोधुवच्छम श्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥  
 धिष्वाशवः शूरा येन वृषभवाभिन्दानुमीणवाभम् ।  
 अपावृषोऽर्थेतिरायाय निसव्यतः साक्षि दस्युमिन्द्र ॥१८॥  
 सनेम येत ऊत्तिमिस्तरन्तो विश्वाः स्पृष आर्यण दस्यन् ।  
 अस्मभ्यं नस्वाष्टं विप्रवरूपमरुधयः सारूपस्य त्रिनाय ॥१९॥  
 अस्यसुवानस्य मन्विनस्त्रितस्य न्यवृद्धं वावृषानो अस्तः ।  
 अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनन्नलभिनदो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥  
 नूनं स्यात्ते प्रति वर्गं जरित्रं दुहोयांश्चन्द्र दक्षिणा मघोतो ।  
 शिखास्तोतृभ्यां मानिभ्यमगा नो वृद्धदेम विदध सुवांगः ॥२१॥



१५ इन्द्र, जिन मन्त्रोंके महायक होनेपर तुम दृष्ट होने हो, वे शीघ्र सोम पान करें। तुम भी अपनेको दृढ़ करके दृष्टिकर सोम पान करो। शधुनाशक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय सर्वोंके साथ तुम युद्धमें हमें वर्द्धित करो—शूलोंको भी वर्द्धित करो।

१६ अग्निहोत्रियारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुरुष उससे दुरार तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुछ विकार तुम्हारी सेवा करता है, वह तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर गृहके साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७ शूर इन्द्र, तुम सब शक्ति, धिक्-विजय म अन्वय हो। हमारे साथ होकर जो अन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाहो-मूर्द्धमें लगे सामको म हार सारवान् पान करके जो मर चढ़के आओ।

१८ इन्द्र, जिन कलकल के सुनने बहुत जो श्रेष्ठ कामों में कटका लगाए विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्यके लिये दृष्ट हो जगति दी। जो तुम्हारे साथ है।

१९ इन्द्र, जिन कामोंमें मन्त्रोंने आश्रय प्राप्त करने लगे कलकल मन्त्रों पर अधिकृत किया है और कार्य-भाव द्वारा इस्युका अधिकृत किया है, हम सबको अरुह मन्त्रोंके लिये अन्वय हो। जो मन्त्रोंके पुत्र विवरूपका बल किया है। हमारे लिये भी ऐसा ही करा।

२० इन दृष्ट और धनवान् शूर दुरार, पक्षी और उद्वेग अवर्द्ध, अन्वय किया था। जैसे मूर्द्ध-रथ-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्रने अङ्गिरा लागिका सहायन प्राप्त करके चक्रको सुमया था और बलको विनष्ट किया था।

२१ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तानाका मनारथ परा कला है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें जोषकर और बिसीको भी नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभु स्थापित करेंगे।



१२ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।  
 यस्य शुष्माद्रोदसी अम्पसेतां नृणस्य महा स जनास इन्द्रः ॥१॥  
 यः पृथिवीं व्यथमानामदृहयः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।  
 यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥  
 यो हत्वाहिमणिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपथा बलस्य ।  
 यो अश्मनोरन्तर्गन्नि जज्जान संवृक्समस्तु स जनास इन्द्रः ॥३॥  
 येनेमा विश्वा व्यवना रुतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।  
 श्वघ्नोष यो जिगीवाँलक्षमाद्दयः पुष्टानि स जानस इन्द्रः ॥४॥  
 यं स्मा पृच्छन्ति कुह मेति घोरमुनेमहान्तरो अस्तीत्येनम् ।  
 सो अयः पुष्टाविज्जिवा मिनाति श्रद्धस्मं धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥  
 या रथस्य लोदिता यः कुशस्य यो व्रजणां नाधमानस्य कीरेः ।  
 युक्त प्रावणां योविना सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

१ मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित है, जिन्होंने जन्मके साथ ही देवोंमें प्रधान और मनुष्योंमें अग्रणी होकर वारकर्म द्वारा सारे देवोंको विभूषित किया था, जिनके शरीर-बलसे धावापूँववा भीष दुई थी और जो महती सेनाके नायक थे, वही इन्द्र है।

२ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यापित पृथिवीको दृढ़ किया है, जिन्होंने प्ररूपित पर्वतोंको निश्चिन्त किया है जिन्होंने प्रकाशित अन्तरीयक प्रताप है और जिन्होंने शूलोंको स्तम्भ किया है, वही इन्द्र है।

३ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्रका जिन से कण्ठ भाग लड़कोंका पलायन किया है, जिन्होंने बल असुर द्वारा राकी दुई गायोंका उद्धार किया था, जो दो मेषोंके बीचमें शत्रुको हनपन्न करने हैं और जो समर-भूमिमें शत्रुओंका नाश करते हैं, वही इन्द्र है।

४ मनुष्यो या असुरो, जिनके निम्न-१ विम्वला तमसोय जन्मा है, जिन्होंने दासोंका निकृष्ट और गृध्र स्थानमें स्थापित किया है, जो लज्जित जीत कर व्यापक जलद शत्रु सारे धनका ग्रहण करते हैं, वही इन्द्र है।

५ मनुष्यो या असुरो, जिन सर्वेश्वर देवोंके सम्मुखमें योग निजामा करने हैं वह कहाँ हैं ? जिनके विषयमें लोग शोकते हैं कि, वह नहीं है और जो शासककी तरह शत्रुओंके सारा धन, विनष्ट करते हैं, विश्वास करो, वही इन्द्र है।

६ मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं जो दूरिद याचक और लोभियोंको धन देते हैं और जो शोमव हड्डि या केहुनीवाले होकर सोमाभिषेक-कर्त्ता और हाथोंमें पशुवरवाले यजमानके रक्षक हैं, वही इन्द्र है।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।  
 यः सूर्यं य उपसं जजाल या अपां नेता स जाता स जनास इन्द्रः ॥७॥  
 यं क्रन्दसी संयती विह्वयेत परेतर उभया आमयाः ।  
 समानं विद्रुपमातस्थिवांसो नाना ह्वेते स जनास इन्द्रः ॥८॥  
 यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवरे हवन्ते ।  
 यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥  
 यः शश्वतो मघ्न नो दधानानमन्यमानाञ्छवा जघान ।  
 या शयने नानुददाति श्रुध्यां यो हस्योहन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥  
 यः शम्बर पवनेषु क्षियन्तं नस्वारिंशं शरयन्विन्दत् ।  
 ओजायमानं यो अहि जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥  
 यः सप्तर्षिमर्षुषमस्तुविष्मानवास्तृजन् सतवे सतसिन्धून् ।  
 यो रोहिणमरुफ्रतज्जवाहुषामरोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥  
 द्यावा विदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।  
 यः सोमपा विनितो वज्रवाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

७ मनुष्यो या असुरा, सोम, गाव, ग्राम और विश्व जिनकी आज्ञाके आधीन हैं, जो सूर्य और अपाको उत्पन्न करते हैं और जो जल प्राप्त करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

८ मनुष्यो या असुरा, जो मेघादत्त, परापर मित्रनेत्र, जिन्हें दुलाले हैं, अक्षय-अमर दोनों प्रकारके शत्रु जिन्हें वृत्तांत हैं और एक ही तरहके रथोंपर बड़े हुए दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकारसे वृत्तांत हैं, वही इन्द्र हैं ।

९ मनुष्यो या असुरा जिनके न रहनेके कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें, रक्षाके लिये, जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो सारे संसारके प्रतिनिधि हैं और जो अथराहस्य पर्वतादिका भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

१० मनुष्यो या असुरा, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजकोंका विनाश किया है, जो गवेंकारी मनुष्य को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो हस्योहन्ता हैं, वही इन्द्र हैं ।

११ मनुष्यो या असुरा, जिन्होंने पर्वतमें द्विषे शम्बर असुरको चालीस वर्ष शोककर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल प्रकाशक अहि नामके सागे हुए पत्नका विनाश किया था, वही इन्द्र हैं ।

१२ मनुष्यो या असुरा, जो सप्त उष या द्वाद, शम्बर, पितृवृ, सहस्र, पूर्ण, स्वापि, गृहमेध आदि सात रश्मियों वाले, अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नौवाह अवाहित किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्वर्ग जानेको तयार रोहिणको विनाश किया था, वही इन्द्र हैं ।

१३ मनुष्यो या असुरा, जो सोमपान करनेवाले हैं, कर्त्ता, वज्रवाह और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं ।

यः सुखदन्तमनसि यः पञ्चनं यः शंसन्तं यः शंसशानमूनी ।  
यस्य व्रतवधनं यस्य मोमो यस्यैवं राधः स जनाय इन्द्रः ॥१४॥  
यः सुखते पञ्चते दुष्ट आचिन्ताते दर्शितः स किन्तासि सत्यः ।  
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुजीहासो विदधमावदेम ॥१५॥

१३ सूक्त । इन्द्र देवता । विश्वः अर्थात् जगती छन्दः ।  
 अनुजनित्री तस्या अप्स्यपि गच्छ जात आनिशायानु वर्धते ।  
 तदाहना अभवत् पिप्युपी पर्योशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥  
 सध्रीमायन्ति पयि विभ्रतीः पयो विश्वप्स्ययाय प्रभगन्त भोजनम् ।  
 समानो ऋध्वा प्रवता मनुष्यदै यस्ताऋणोः प्रथमं साऋयुक्थयः ॥२॥  
 अन्येका ववति यद्वाति तद्रूपा मिनन्तत्पा एक ईयते ।  
 विश्वा एकस्य विजुदस्मिन्तिक्षते यस्ताऋणाः प्रथमं साऋयुक्थयः ॥३॥  
 प्रजास्यः पुष्टि विभजन्त आरुते रयिमिव पुष्टं प्रभवन्तमायते ।  
 अस्तिवःदंष्ट्रेः पितृनि भोजनं यस्ताऋणोः प्रथमं साऋयुक्थयः ॥४॥

१४ मनुष्यों, जो सोडा-मिन्स तथा चूना-पत्थरी तथा अन्य अम्ल-प्ररोधों का निष्कासन करते हैं, लोगों का और क्षति-पाठक यन्त्रोपकरणों की रक्षा करने के लिए निम्नलिखित कर्तव्य, योग्य और उचित व्यवस्था करने के लिए हस्त हैं।

१५ हस्त, दुर्घर्ष होकर सोमाभाषवत्ता आता व कवारी (जन्म) का अन्न प्रदान करते हैं, इसलिये कृष्णों मन्त्र हो । इस पिप और वीर पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त होकर निरकालतक तन्महि स्मोत्रका पाठ करेगे ।

१ वर्षा श्रुत सोमकी माता है। उत्पन्न होकर सोम जलमें बदला है; इसलिये उसीमें प्रवेश करता है। जो सोम-लता जलकी सार-भुज होकर वृद्धि प्राप्त होती है, वह अभिषवके उपयुक्त है। उसी सोमलताका पीप इन्द्रका द्रव्य है।

२ परस्पर मिली हुई बड़क-बाहिनी नदियाँ खारे और बड़ रही हैं और सारे जलोत्की अश्वभूत समुद्रको भोजन प्रदान करती हैं । निम्नगामी जलका गन्तव्य हमें पृथक् ही है । इससे, हमने पहले ये सब काम किये हैं, इसलिये हम स्तुति-योग्य हो ।

३. एक यजमान जो दान करता है, दूसरा उसका अनुष्ठान करता है - एक जल पशुहिंसा करके, हिंसाकर्ता बनकर, जाता है, दूसरा स्वर्ग के पुत्रों के लिये दान करता है - दूसरा अपने पहले के स्वयं कर्म किये हैं, इसलिये तुम स्तुति-पात्र हो ।

४ हनु, जैसे गृहस्थ लोग आचार्य के शिष्यों को प्रणाम करने के लिये ही सम्मान दिया घन प्रजाओंमें विभक्त होकर रहता है। लोग पिता द्वारा दिया जायज दौलतें प्राप्त कर हनु, हमसे पहले मे मम कार्य किये हैं, इसलिये स्वस्ति-योग्य हो।

अथाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो श्रीतानामहिहन्तारिणक् पथः ।  
 तं स्वा स्तोमेभिरुद्भिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्मास्युक्थयः ॥५॥  
 यो भोजनं च दयमे च वर्धनमाद्राद्दुष्कं सधुमद्वुक्थयः ।  
 सशेवधि नि दधिपं विनस्वति विश्वस्यैक ईशिपे सास्युक्थयः ॥६॥  
 यः पुष्पिणीश्च प्रसूश्च धर्मणाधिदाने व्यवनीरधारयः ।  
 यश्चासमा अजनां दिव्यतो दिव उरुर्वी अमितः सास्युक्थयः ॥७॥  
 यो नाम्मरं सहवसुं निहन्तव पृथाय च दासपेक्षाय चायहः ।  
 ऊज्यस्तया कर्पविष्टमास्यमुतेवाय पुरुकृन् सास्युक्थयः ॥८॥  
 शत वा यस्य दशमाकमाद्य एकस्य श्रुधौ यत्त चोदमानिथ ।  
 वा जी दस्युन्समुनन्दभीतये सुप्रान्यो अभवः सास्युक्थयः ॥९॥  
 निश्वेदन्तु रोधना अस्य यौम्यं ददुस्मिं दधिरे कृतवे धनम् ।  
 पलस्नन्ना विष्टिः यजसन्दशः परि परो अभवः सास्युक्थयः ॥१०॥  
 सप्रवाचनं तन नौर मार्यं यदेकेन कनूना विन्दमे वसु ।  
 जानप्रिस्त्य प्र दयः सहस्वतो या नक्तर्धं सेन्द्र विश्वास्युक्थयः ॥११॥

५ इन्द्र, तुमने आकाशक लिए पृथिवीको इजानीय किया है। तुमने प्रवाहित नदियोंका मार्ग गमन-योग्य किया है। जूत-इन्द्रा इन्द्र, उस जन्मके द्वारा भावको तृप्त करने हो, तैम ही स्तोमा लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं।

६ इन्द्र, तुम भोजन और वर्धमान बन रहे हो और माद्रे दासकने शुष्क और मधुर रसवाले शस्य आदिका रोहन करते हो। मेवक यत्मानका दूध प्रदान देने हो। नाम्मरमें तुम अजनीय हो। इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो।

७ इन्द्र, कम द्वारा तुमने योम्यं कुल और कदवाली ओषधियोंका रक्षा करी है। प्रकाशमान सूर्यकी नाना प्रकारकी ज्योति उत्पन्न की है। तुमने महान् डोक जारो और महान् प्राणियोंको उत्पन्न किया है। तुम स्तुति-पात्र हो।

८ बहु-धर्म-कर्ता इन्द्र, तुमने इज्यप्राप्त और दासोंके विनाशके उद्देश्यसे नारिके पुत्र सहवसुका विनाश करने के लिये बलवती वज्रधाराका निर्मित मुख-प्रदेश इसको दिया था। तुम स्तुति-योग्य हो।

९ इन्द्र, तुम एक हो। तुम्हारे सुस्यंके लिये दस सौ घोड़े हैं। तुमने दधीति क्षत्रिक लिये रज्जुबद्ध दस्युओंका विनाश किया था। तुम सबके प्राप्य हो; इसलिये स्तुति योग्य हो।

१० सारी नदियाँ इन्द्रकी शक्तिका अनुवर्तन करती हैं। यजमान लोग इन्द्रका अन्न प्रदान करने हैं और सब लोग कर्मकर्ता इन्द्रके लिये धन धारण करते हैं। तुमने विशाल वा, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि नामके ६ स्थानोंको निश्चित किया है। पंचजनके पालक हो। इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

११ तुम्हारा वीर्य सबके लिये श्लाघनीय है। तुमने एक कर्म द्वारा शत्रुओंका धन प्राप्त किया है। तुमने बलिष्ठ जातिधरको अन्न दिया है। चूँकि वह सब कार्य तुमने किये हैं; इसलिये तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये न नयपाय च धृतिम् ।  
 नान्ना सगन्मुदनयः पराधृज प्रात्वं श्रोणं श्रवयन्त् ११२॥  
 अरुमभ्यं तद्रुमा दानाय राधः समर्थयन्त् बहु ते नृहृन्वम् ।  
 इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनुद्युन्वृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥१३॥

१४ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अध्वर्युओ भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चतामद्यमन्त्रः ।  
 कामा हि वीरः सवमस्य पीतं जुहोत वृष्णं तदिदं वष्टि ॥१॥  
 अध्वर्यवो गो अपो त्रिविधांसं वृधे जघामाशन्येव वृक्षम् ।  
 तस्मा एतं भरत तद्रुशाय णप इन्द्रो अर्हति पीमिमस्य ॥२॥  
 अध्वर्यवो यो हभीकं जघाम यो गा उदाजदप वि अर्हते ॥३॥  
 तस्मा एतमन्त्रिश्चे न वासमिन्द्रं सोमेरोर्णं न जने पश्ये ॥४॥  
 अध्वर्यवो य उरणं जघान नन सव्यवोर्न नवानं च पाह्न ॥५॥  
 यो अबुद्धमवनीचा पयाधे तमिन्द्रं सोमस्य भुवि दिहोतेन ॥६॥

१२ इन्द्र, सरपसासे। प्रवाइशाल जलके पर जलके लिये सुमम सुवीर नय पाय उरुका सारी दे दिया था ।  
 नान्ना अन्ध और पङ्गु, पराधृजको कलगे उद्धार करके नान्ना को नय पाये बनाया है । इसलिये सुम स्तुति-योग्य हो ।

१३ निवास-दाता इन्द्र, ६४ जायक अन्ध वधे गो पीमिमस्य २१ धन समूह वासयोग्य लीर विचित्र है ।  
 इस प्रतिदिन इस घनक सोमका इच्छा करने है । इस उरुका सुमपाय पाय करके इस यज्ञमें प्रभुत स्नात्र-  
 का पाठ करेगा ।

१ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सोम ले आता । यमन्त्र १२ अधिक अन्ध सोममें फेंको । वीर इन्द्र सदा  
 सोमपायके अधिकारी रहने । १३ तद्वर्षा इन्द्रके १२ सोमके २१ उरुका सारी दे दिये हैं ।

२ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने जलका वायुका उरुका, नद्वरे स वृक्षका तरह, विनाश किया है,  
 उन्होंने सोमामित्राओ इन्द्रके लिये काम ले आता । इन्द्रदेव सोमपायके अध्वर्युके पात्र है ।

३ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने दानाका उरुका किया था, उरुका नन अपर वृवावा अवक्य गायिका  
 उद्धार करके इसे विनष्ट किया था, उन्होंने इन्द्रके लिये, अम वायु अन्वाश्रयमें दयाए है, वम ही, सोमको सर्वक व्याप्त  
 करा । जने जीर्णको वृक्षक दुधारा आच्छादित किया जाता है, वने हा सोम द्वारा इन्द्रको आच्छादित करो ।

४ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने उरुपायके बाहु दानावकान उरुका वनाक किया था तथा अबुद्धको अधोमुन  
 करके विनष्ट किया था, सोम सोमर हानिपर उन्होंने इन्द्रको प्रसन्न करा ।

अध्वर्यवो यः स्वश्रं जघान यः शुष्णं शुष्णं यो तस्मै ।  
 यः पिप्पु नमुचिं यो रुधिरां तस्मै इन्द्रायान्वस्यो जुहोत ॥५॥  
 अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।  
 यो वन्नितः शतमिन्द्रः सहस्रमपानपद्भरता सोमतस्मै ॥६॥  
 अध्वर्यवो यः शतमासवस्त्रं भूया दान्ध अजघ्रयान् ।  
 कुन्दाव्यायोर्विधिरा द सोमोऽनृणांमरता सोमतस्मै ॥७॥  
 अध्वर्यवो यन्तमः कामयाव्यं अष्टः वहन्तो नम्रथातोमन्द्रं ।  
 गमस्तिपुनं भस्त ध्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यता जुहोत ॥८॥  
 अध्वर्यवः कर्तव्यः अष्टिम-ये वने विहृतं वन उन्तपञ्चम् ।  
 जुषाणो हस्त्यममिवावस्य इन्द्राय स्वामं मदिनं जहोत ।  
 अध्वर्यवः पयसा धर्यथागाः सोममिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।  
 वदहमस्य निभृतं म एतद्विस्तन्तं भूया यजतश्चिकेत ॥९॥  
 अध्वर्यवो यो दिठयस्य दस्यो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।  
 तमूदरं नपृणता यथेनेन्द्रं खोदेमिस्तदयो वो अस्तु ॥११॥

५ अध्वर्युगण, जिन्होंने अन्नदाने के लिये विनाश किया था, जिन्होंने अष्टावणीय शुष्णको स्कन्धहीन करके सार डाला था, जिन्होंने पय, दस्युवि और रुधिरका सा पियार किया था, उनको इन्द्र के लिये अन्न प्रदान करो ।

६ अध्वर्युगण, जिन्होंने अन्तर्गत अष्टावणीय शुष्ण द्वारा शम्बरकी अष्टाव प्रदान नगरियोंको हिन-भिन्न किया था, जिन्होंने वर्तक का हजार पुरोहित भूमिशाया किया था, उन्हें इन्द्र के लिये सोम ले आना ।

७ अध्वर्युगण, जिन्होंने अन्तर्गत इन्द्रन भूमि की गोर्धर्म सौ हजार असुरोंको मार गिराया था, जिन्होंने कुन्स, आयु और अतिथिगणों को प्रतिहन्तिगणोंका बध किया था, उनके लिये सोम ले आना ।

८ नेमा अध्वर्युगण, गुप्त जा जाते हैं, वह इन्द्रका सोम प्रदान करनेपर सुरत मिल जायगा । पयिष्ठ इन्द्र के लिये दन्त द्वारा शोधित सोम ले आओ । देवाजघ्रयान्, इन्द्र के लिये वह प्रदान करो ।

९ अध्वर्युगण, इन्द्र के लिये सुखकर सोम तैयार करो । सोम-दान-कालमें शोधित सोम ऊपर ले आओ । इन्द्र प्रदान होकर तुम्हारे हाथोंमें तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं । इन्द्र के लिये तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो ।

१० अध्वर्युगण, गायत्री अधोदेश जेमें वृषभे पूर्ण रहना है, जेमे ही इन फल-प्रदाता इन्द्रको सोम द्वारा पूर्ण करो । सोमका गूढ़ स्वभाव मे जानता हूँ । यत्रनीय इन्द्र सोमप्रद यजमानको अच्छी तरह जानते हैं ।

११ अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्गी, पृथिवी और अन्तरीक्षिक चतुर्के राजा हैं । जेमे यव ( जी ) मे धान्य रखनेका स्थान पूर्ण किया जाता है, वेमे ही सोम द्वारा इन्द्रका पूर्ण करो । वह कार्य तुम लोगोंके द्वारा पूर्ण हो ।

अस्मभ्यं तदसौ दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।  
इन्द्र वसिष्ठं अवस्था अनुद्य न्यूहद्वेम विदधे सुधीराः ॥१॥

१५ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रधान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।  
तिकद्र केवपिवन् सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥  
अवशो द्यामन् भायदृहन्तमा रोषसा अपृणदन्तरिक्षम् ।  
स धारयत् पृथिवीं पप्रथञ्च सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥२॥  
सदमेव प्राचीं वि मिमाय मानेर्धञ्जण त्वान्यतृणन्नदीनाम् ।  
वृथासृजत् पथिमिदीर्घयाथेः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥३॥  
स प्रवोहलृन् परिणत्या दभोतिविश्वमधागायुधमिहं अश्रौ ।  
सङ्गोभिश्चैरसृजदर्थेभिः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥४॥

१२ निवास-प्रश्न इन्द्र, हमें भोगों लिये धन प्रदान करो । तुम्हारा वह धन प्रभुत्व, वास-योग्य और शक्तिमान है । हम प्रतिदिन उसी धनको भोग करनेकी इच्छा करते हैं । इस उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभुत्व स्वीकृता पाठ करेंगे ।

१ मैं बलवान् हूँ । मनुष्य-संकल । इन्द्रकी यथार्थ और महती कात्तियोंका वर्णन करता हूँ । इन्द्रने त्रिष्टुप् यज्ञमें सोम पान किया है । सोमजन्य प्रसन्नता होनेपर इन्द्रने अहिका बल किया ।

२ आकाशमें इन्द्रने गन्तव्यको रोक रखा है । धावापृथिवी और अन्तरीक्षकी अग्नि तेजसे पूर्ण किया है । विस्तीर्ण पृथिवीको धारण किया है और उसे प्रसिद्ध किया है । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

३ यज्ञ-गुरुकी तरह इन्द्रने माप करके, सारे संसारको पुराणिमुख करके बनाया है । उन्होंने वज्र द्वारा नदीके निकलनेवाले रूख जोंकी खोल दिया । उन्होंने अनायास ही दीर्घ कालतक जाने योग्य मार्गोंमें नदियोंको प्रेरित किया था । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

४ जो अश्व दभोति श्रापको उनके नगरके बाहर ले जा रहे थे, मार्गमें उपस्थित होकर इन्द्रने उनके सारे आयुष्योंको दीर्घमान अग्निमें दग्ध कर डाला । अनन्तर दभोतिकों अनेक गार्थ, घोड़े और रथ दिये । सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

स ईं महीं धुनिमेतांरग्म्यान् सो अस्नात् नपाययत् स्वस्ति ।  
 त उत्स्नाय रयिममि प्रतस्तुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥  
 सोदश्वं सिन्धुमरिणान् महित्वा वज्रणान् उपसः स्वमिपेप ।  
 अजवसो जयितीमिवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥  
 स विद्धो अपगाहं कनोनामार्चिर्मध्वनुदतिष्ठन् परावृक् ।  
 प्रति श्रोणः स्थादधनगन्धत् सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥  
 भिनडलमद्भिरामिगृणानो वि ध्वेतस्य दृष्टितान्यैरत् ।  
 रिणयैर्धोसि कृत्रिमाणयेषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥  
 स्वप्नेताम्युष्या चमुनिं धुनिं च जघन्य दस्युं प्र दमोतिमायः ।  
 रग्मो चिद्व विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥  
 नून साने प्रतिवरं जग्म्वं दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोना ।  
 सिक्षास्तोतृभ्यो मतिध्रगमगो नो वृहददेम विरथे सुवारा ॥१०॥



५. उन इन्द्रने धुनि, दुरावती या पदवी नामक महानदीको, पार जानके लिये, शान्त किया था। नदीके पार जानेमें असमर्थ लोगोंको पार पद पार किया था। ये नदी पार होकर घनको लज्ज करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

६. अपनी महिमामें इन्द्रने सिन्धुको उत्तम-वाहिनी किया है। वेरवी सेनाके द्वारा, दुर्बल सेनाको भिन्न करके वज्र द्वारा उषाके रथको चला किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

७. अपने कथाइके लिये अग्रा दुई कन्याओंकी अग्रा जानकर परावृत्त शक्ति सबके सामने ही बैठकर स्वयं हो गये। पार होनेपर भी कन्याओंके प्रति दौड़; चतुर्हीन होनेपर भी उन्हें दत्ता, क्योंकि स्तुतिमें प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पेश-आर्पण दे दी था। सोमजन्य हर्ष होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

८. अङ्गिरा लोगोंको स्तुति करनेपर इन्द्रने बलका विदार्ण किया था। पवनक गुह्य द्वारको खोला था। इनकी कृत्रिण कथावटको भी बताया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

९. इन्द्र, तुमने चमुनि और धुनि नामके अश्वोंको, दोषे निद्रामें प्रसिद्ध करके, विनष्ट किया था। रग्मोति नामक राजर्षिकी रक्षा की थी। उनके वैश्वारी दौवारिकने आ शत्रुका हिनय प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

१०. इन्द्र, तुम्हारी जो घनवती दक्षिणा स्तुतिभक्तोंको मनोरथ पूरा करती है, वही दक्षिणा तुम हमें दान करो। तुम भजनीय हो, हमें जोड़कर और किसीका नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रोंन युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभुन स्तुति करेंगे।





१६ सूक्तम् । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छंदः ।

प्र वः सतां उपैष्ठतमाय सुष्टुतिमन्नाविष समिधाने हविर्मरे ।  
 इन्द्रमजुयं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥  
 यस्मादिन्द्राद्बृहत्तः किञ्चनेमृते विश्वान्बस्मिन्सम्भृताधिधीर्या ।  
 जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते धज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥  
 न क्षाणाभ्यां पग्भिरे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैर्गिन्द्र ते रथः ।  
 न ते यज्रमन्वथ्रोति कश्चन यदाशुभिः पतन्ति योजना पुरु ॥३॥  
 विश्वेतास्मै यजताय धृष्णये क्रतुं भगन्त वृषभाय सश्वते ।  
 वृषा यजस्व हविषा विदुष्ट्यः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥  
 वृष्णाः कोशः पवते मध्य ऊर्मिवृषभान्नाय वृषभाय पानव ।  
 वृष्णाऽवर्ष्य वृषभासां अद्रयो वृषणं सोमं वृषभ य सुष्वति ॥५॥  
 वृषा ते यज्र उत ते वृषा रथा वृष्णा हरी वृषभान्यायुधा ।  
 वृष्णो मदस्य वृषभत्वमीशिष इन्द्र सोमस्य तृष्णाहि ॥६॥

१ तुम्हारे उपकारके लिये देवोंमें उपैष्ठतम इन्द्रके लिये दीप्यमान अग्निमें हम हव्य उदान करते हैं । अन्नमय उनकी मनोहर स्तुति करते हैं । अग्नी रक्षाके लिये नरको जग रहित, सोम संसारको जग देनेवाले, सोममय, सनामान और सक्षय-वयस्क इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ विराट् इन्द्रके विराट् संसार नहीं है । जिन इन्द्रमें मानी शक्तियाँ हैं, यही इन्द्र उद्गर्में सोमरस घातण करते हैं । उनके शरीरमें बल और तेज है । उनके हाथमें यज्र और मस्तकमें ज्ञान है ।

३ इन्द्र, जब कि तुम शीघ्रतासे अश्वदर चक्रवर्त्तन करने हो, तब धावापृच्छा तुम्हारे बलको पराजित नहीं कर सकती । समुद्र और पर्वत तुम्हारा रथका परिवार नहीं कर सकते । कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बलका परिवार नहीं कर सकता ।

४ सब लोग यजमान, धनुषाशुभ, अभीष्टवर्षी और मदः सजित इन्द्रका यज्ञ करते हैं । तुम सोम-दाता और विद्वान हो । इन्द्रके लिये तुम भी यज्ञ करो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्नि के साथ सोम पान करो ।

५ अभीष्टवर्षी और मादक सामास अनुष्ठानाओंके लिये उत्तजक होकर बलप्रद अन्न-विशिष्ट और अभीष्ट-वर्षी इन्द्रके पानके लिये जाता है । सोमरसप्रद अन्नार्थ और अभीष्टवर्षी अभिषेक-पुस्तक अभीष्टवर्षी सोमका, तुम्हारे लिये अभिषेक करते हैं । तुम भी अभीष्टवर्षी हो ।

६ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे यज्ञ, रथ को न रोक सकें और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं । तुम भी मादक और अभीष्टवर्षी सोमक अधिकारी हो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोमसे तुम भी तृप्त बनो ।

प्र ते नावं न समने वनस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ॥  
 कुर्वन्तां वस्य वनसं निवाधिषादिन्द्रमुत्सं न धसुनः सिन्वामहे ॥७॥  
 पुरा संवाधादन्वावृत्स्व नो धेनुं वत्सं यवसस्य पिप्पुषी ।  
 सकृन्सुते सुमतिभिः शतक्रतो सम्पत्ताभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रति वरं जारित्रे दुहीषदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षास्मोतृभ्यो मातिधगं भगं नो बृहद्वरीम विदधे सुवीरः ॥९॥



१७ सूक्त । इन्द्र देवता । । विष्टुः और जगती छन्द ।  
 तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदन्वत शुष्मा यदस्य प्रज्यो दीरते ।  
 विश्वा यदगोवा सहसा पयोवता मदे सोमस्य दृष्टिनाभ्यंगरत् ॥१॥  
 स्व भृतु यो ह प्रथमाय धायस आंजो मिमानो माहमानमातिरत् ।  
 शूरो यो युत्स तन्वं परिव्यत शीषेणि धां महिना प्रत्यमुञ्जत ॥२॥  
 अधाह्णोः प्रथमं वारं महद्यदस्यागं ब्रह्मणा शुष्ममेव ।  
 गोष्ठेन द्यद्वेनेन विन्युताः प्रजारयः सिस्नेते सध्रयकपृथक् ॥३॥

७ तम शतुत्तराक्षरी । तम वंश-मर्म पारायामिलादी और नौकण्ठो तरह प्रकारक हो । यज्ञ-कालमें मैं पौष्टिक और गरम दूधके पास जाता हूँ । इन्द्र हमारे इस स्तुतिवाक्यको अच्छी तरह जानो, हम कुपकी तरह दानाधार इन्द्रको सिक्क करोगे ।

८ जैसे वृष आकर नव्य दान वस्त्रको लाँटावो है, वैसे ही है इन्द्र हमें आनन्दमें पठने ही लाँटा दो । शतक्रतो, "मे पविशौ युवाका व्यापार करोगे हँ, चले हो हम सुन्दर स्मोत्र द्वारा । एक बार तुम्हें व्याप्त करोगे ।

९ इन्द्र, सुम्हारी जंग धनवनी दक्षिणा स्नाताक सांग मनोग्रह द्रव्यन कानो है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो । तुम मजतीय हू । हमें छाएकर अन्धको नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर हम यज्ञमें प्रभूत स्नानि करोगे ।

१ स्तोत्राभो, तुम लोग अङ्गिरा लोगीकी तरह, सभी स्तुति द्वारा, इन्द्र की उपासना करो, क्योंकि इन्द्र का शायक तेज, पूर्वकालका तरह, सदैव होता है । सोमजानस हर्षित उत्पन्न होनेपर इन्द्र ने वृष द्वारा आकाश सारी भेष-मांशका सद्योगतः किया था ।

२ जिन इन्द्रने बलका प्रकाश करने प्रथम सोमपानक नियम करती रहिमाकी बढ़ाया है और जिन शत्रु इन्द्रता इन्द्रने दुर्बलाकर्म अपने शत्रुको धराश्रित रखा था, वे हैं इन्द्र प्रसन्न हैं । उन्होंने अपनी मांदिमासे अपने मन्त्रकपर श्लोककी योग्य किया था ।

३ इन्द्र, तुमने अपना महावाय प्रवट किया है, क्योंकि अग्नि द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रकाश किया है । तुम्हारे रथस्थित हरि नमक अग्नि के द्वारा, स्वस्थानमें विष्णु होकर अनिच्छकारी लोगोंमेंसे कुछ दक शायकर और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं ।



१८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राता रथो नवो योजि स्मिन्श्चतुर्गुगन्त्रिकशः समरश्मिः ।  
 दशारित्री मनुष्यः स्वर्गाः स इष्टिमिमतिभो रंहा भूत् ॥१॥  
 सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुष्यः स होता ।  
 अन्यस्या गभमन्य ऊजनन्त सो अन्येभिः सन्तते जन्त्या धृया ॥२॥  
 हरी नुक्तं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तं न वनसा नधेन ।  
 मोषु न्वामत्र बहवो हि विप्रा निरीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३॥  
 आ त्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याता चतुर्भिरावड्भिह यमानः ।  
 अष्टाभिर्वशाभिः सामपेयमयं तुतः सुमन्त्र मा मृधन्कः ॥४॥  
 आ विशत्या त्रिंशता याह्यर्वाडा चत्वारिंशता हरिमियुं जानः ।  
 आ पञ्चाशता सुरधेभिरिन्द्रा पाठवा समन्या सामपेयम् ॥५॥  
 आशीत्या नवपया याह्यर्वाडाशतं हरिमिरुहमानः ।  
 अयं हि ते शुनतोत्रेषु साम इन्द्र न्वाया परिषिक्ता मदाय ॥६॥

१ स्तुतियों और त्रिष्टुप् यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है । इस यज्ञमें चार पत्थर, तीन प्रकारके स्वर, सात प्रकारके छन्द और दस प्रकारके पाय हैं । यह मनुष्योंके लिये हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है । यह रानी स्तुति और हाग आदिके द्वारा समिष्ट होता है ।

२ यह यज्ञ इन इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें गयेष्ठ हुआ । वह मानवोंके लिये शुभ फल ले आता है । दूसरे भूमिवाक् लोग भी दूसरे प्रसिद्ध वायोंका गले उत्पन्न करते हैं । अमीषटर्षी और जयशील पडा अन्य देवोंके साथ मिलित होता है ।

३ इन्द्रके रथमें नये स्तोत्रोंके द्वारा, शीघ्र जानेके लिये, हरिनामके अर्घोंका ओवा जाता है । इस यज्ञमें अनेक मेघावी स्तौता हैं । दूसरे यजमान लोग दुष्ट अरुणी तरह तृप्त नहीं कर सकते ।

४ इन्द्र, तुम बुलाये जाकर द्रो, चार, द्वा, आठ अथवा दस हरि नामक घोड़ोंके द्वारा सोमपानके लिये आओ । शोभन घनवासे इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये प्रस्तुत हुआ है । तुम उसे हासिल नहीं करना ।

५ इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ोंके द्वारा हमारे सामने, सोमपानके लिये, आओ ।

६ इन्द्र, अस्सी, सत्तरे अथवा सौ अर्घ्योंके द्वारा तुमने जकार हमारा सामने आओ; क्योंकि इन्द्र, तुम्हारे लिये, तुम्हारे आनन्दके लिये, पात्रमें सोम रखा हुआ है ।

मम ब्रह्मेन्द्रयाहच्छा विश्वा हरी भुरि धिष्वा रथस्य ।  
 पुरुषा हि विहव्यो बभूयास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥  
 न म इन्द्रेण सख्यं वि योपदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुर्हीत ।  
 उपज्येष्टे वरूथे गमस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः साम ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरिष्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षा स्तोतृभ्यो मतिघ्नं भगो नो बृहद्वैम विदथे सुवीराः ॥९॥

१६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।  
 यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि पावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥  
 अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो हिमिन्द्रो अर्णो<sup>१</sup> अन्ति विवृश्चत् ।  
 प्र यज्ञयो न स्वसराज्यच्छाप्रयांसि च नदीनां स्रक्मन्त ॥२॥  
 म मादिन इन्द्रो अर्णो अपां पेर्यदन्तिहाच्छा समुद्रम् ।  
 अजनयन् सूर्यं चिद्वगा अक्तनादां वयुनां निम्नाभ्यन् ॥३॥

० इन्द्र, मेरी स्तुतिके सामने आओ । जादुआपी आता अर्णोको सख्य अथ भागमें संयोजित करो । बहु-  
 संख्यक यजमान तुम्हें बुलाते हैं । शूर, दुम इस यज्ञमें हस्त होओ ।

८ इन्द्रके साथ मेरी मैत्री विद्युक्त न हो । इन्द्रकी यह दक्षिणा हमें अमिरूप फल प्रदान कर । हम इन्द्रके  
 प्रहंसनीय और आपबुको इटानेवासे दोनों दायोंके पास अवस्थित करते हैं । प्रत्येक युद्धमें हम विजयी बने ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोत्राके मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान करो ।  
 तुम भजनीय हो । हमें छोड़कर दूसरेकी दक्षिणा नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ सोमामिषवहतां मनीषी यजमानका मादक अन्न, आनन्दके लिये, इन्द्र भक्षण करें । इस प्राचीन अन्नमें  
 वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं । इन्द्रके स्तोत्राभिलाषी क्षत्रिवक् भी इसमें निवास कर चुके हैं ।

२ इस मदकर सोममे आनन्द-निमग्न होकर, इन्द्रने दायोंमें वज्र धारण करके, जलके आवरण अहिका  
 छेदन किया था । उस समय प्रसन्नता-दायक जल-राशि, जैसे पश्चिमण पुष्करिणीके सामने जाते हैं, वैसे हो,  
 समुद्रके सामने जाने लगी ।

३ अहिहन्ता और पृजनीय इन्द्रने जल-प्रवाहको समुद्रके सामने प्रेरित किया । इन्द्रोंने समुद्रको उत्पन्न  
 करके गायं प्राप्त की तथा तेजोबलसे दिवसोंको प्रकाशित किया ।

सो अग्रनीति मनवे पुरुषीन्द्रः दशदाशुप हन्ति वृत्रम् ।  
 मया यो नृमरे अतसाद्योमन् एस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सार्ता ॥४॥  
 स सुन्वत इन्द्रः सूर्यम ॥ १ ॥ रिण्डुमन्त्याय सतधान ।  
 आ यद्रयि गुहदवयमस्य भवदंशं नैतशो दशम्यन ॥५॥  
 सगन्धयत् सदिनः सारथ्ये शृण्णमशुपं कृपयं कृत्वाय ।  
 दिवोदासाय नवतिं च ननेन्द्रः पुरो व्यैरच्छस्वरस्य ॥६॥  
 एवा न इन्द्रोन्नयमहेम श्रवभ्या नमना वाजयन्तः ।  
 अश्वाम तन् सातमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयाः ॥७॥  
 एवा ते गृत्समदाः शृण मन्मावस्ववो न वयुनानि तक्षुः ।  
 ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं मुक्षिणि सुस्रमस्युः ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रति वरं जग्निं दूरीयदिन्द्र दक्षिणा मघानो ।  
 शिश्वास्तोतभ्यां मातिधम भगो नो बृहद्वैम विदथे सुवीराः ॥९॥



४ इन्द्रने हन्यदाता मनुष्यको यजमानके लिये बहुमूल्यक उत्कृष्ट धन दान किया । वृत्रका विनाश किया ।  
 मरुतको पामिके लिये स्तोत्राओं के साथ वसिष्ठ वानेपर इन्द्र आश्रयदाता हुए थे ।

५ इन्द्रको स्तुति करनेपर प्रकाशमान इन्द्र सोमविप्राहता मनुष्य पत्रशंके लिये सूर्यको लाये थे, क्योंकि  
 जैसे पितृ पुत्रको धन प्रदान करना है, वैसे ही यज्ञकालमें एतद्देव इन्द्रका प्रवृत्तन और अमूल्य सोम प्रदान  
 किया था ।

६ अपने सारथि राजपि कृपाके लिये दीप्तियुक्त इन्द्रने शृण्ण अश्व और कृपयको वशीभूत किया था और  
 दिवोदासके लिये शम्भरकी निम्नधानके नगरोंको भजन किया था ।

७ इन्द्र, अन्नको अभिलाषाने हम तुम्हें बलवान करके तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हें प्राप्त करके हम सप्तपदी  
 मलयताका लाभ करें । देवशुन्य पौयुके विग्राहमें तुम वज्र पाँकों ।

८ बलिष्ठ इन्द्र, जैसे गमनाभिलषी पथिक मार्ग साफ करता है, वैसे ही गृत्समद्वय तुम्हारे लिये मनोरम  
 स्तुतिको रचना करते हैं । तुम सर्वापक्षान् नृपन हो । तुम्हारे कर्षोन्नाभिलाषी गृत्समद्वयण अन्न, वज्र, गृह और सुख  
 प्राप्त करेंगे ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनदमी दक्षिणा स्तोत्रांक साथ मनाम्य पूर्ण करधा है, वही दक्षिणा हमें दो । तुम मजनीय  
 हो । हमें द्वाककर अन्य किमियोंको नडा देना । हम पत्र और पौत्रने युक्त होकर हम यजमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

२० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धिषुणः प्रमरामहे वाजयुनं रथम् ।  
 विष्वन्यवो दीधपता मनोषा सुस्रामिषक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥१॥  
 त्वं न इन्द्र त्वामिरूतीस्त्वायतां अमिष्टिपासि जनान् ।  
 त्वमिनो दाशुषो वरुनेत्याधोरमि यो नक्षात त्वा ॥२॥  
 स नो युवेन्द्रो जोहवः सखा शिषो नरामस्तु पाता ।  
 यः संसन्तं यः शशमानमूतां पन्नन्तं च स्तुवन्तं च प्रणपत् ॥३॥  
 तमुस्तुव इन्द्र तं गृणीष्व यस्मिन् पुग वावृधुः शाशवुक्ष ।  
 स वरुनः कामं पापदियानां ब्रह्मण्यना नूतनस्याथोः ॥ ४ ॥  
 सो अङ्गिरसामुन्था जुजुष्वान ब्रह्मन्तांदिन्द्रो गातुमिष्यन् ।  
 मुष्णन्नुपसः सूर्येण स्तवानश्नश्न चिच्छिश्नयन् पूर्याणि ॥ ५ ॥

१ इन्द्र, जिसे प्रकार अन्नाभिलाषी वर्गिक रथ तैयार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं । तुम हमें अच्छी तरह जानते हो । हम स्तुति द्वारा तुम्हें इष्टमान करते हैं । हम तुम्हारे जैसे पुरुषसे सुख मांगते हैं ।

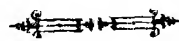
२ इन्द्र, तुम हमारा पालन करने हुए हमारी रक्षा करो । जो तुम्हें चाहता है, उनकी, तुम शत्रुओंसे, रक्षा करते हो । तुम इष्ट्यदाता यजमानके ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करनेवाले हो । इष्ट्य द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता है, उसके लिये तुम यह सब कर्म करते हो ।

३ हम यज्ञ-कार्य करते हैं । तृण वयम् ६, अङ्गिरान्-योष्य, मित्र-तृण्य और इष्ट्यदाता इन्द्र, हमारी रक्षा करें । जो स्तोत्रका उच्चारण करता है, क्रियाका समाधान करता है, इष्ट्यका पाक करता है और स्तुति करता है, उसे आश्रय देकर इन्द्र कर्मके पार ले जाते हैं ।

४ मैं वहीं इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, उन्हींको प्रशंसा करता हूँ । उनका स्तोत्रा पढ़ने वर्द्धित हुए थे और उन्होंने शत्रुओंका विनाश किया था । इन्द्रके निकट प्रार्थना करनेपर इन्द्र स्तोत्राभिलाषी नये यजमानकी घनेच्छाको पूरा करते हैं ।

५ अङ्गिरा लोगोंने मंत्रों द्वारा प्रमन्न होकर इन्द्रने उन्हें गार्ग लानेका मार्ग दिखा दिया था और उनकी स्तुति भी पूर्ण की थी । स्तोत्राओंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने, सूर्यके द्वारा उषाका अपहरण करके, आनन्द प्राप्ति नगरों-को विनष्ट किया था ।

महश्नु इन्द्रा नम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुष्यं दमस्तमः ।  
 अथ प्रियमशमानस्य साह्वजिष्ठो भरद्वासास्य स्वधावान् ॥ ६ ॥  
 स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैर्यदि ।  
 अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस्तं यजमानस्य तृतीत् ॥ ७ ॥  
 तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवैर्मिगणसातौ ।  
 प्रति ऋस्य वज्रं बाहोर्भूर्हस्वो वस्यून् पुन आयसीर्नितारीत् ॥ ८ ॥  
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रं दुहोविन्द्र दक्षिणा मघानो ।  
 शिक्षा स्तोतृभ्या मातिथम् भगा नो वृद्धदेम विदथ सुवीराः ॥ ९ ॥



२१. अकन । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् आर जगता छन्दः ।  
 १२०. अजने भवजिते भवजिते भवजिते नृजित उचराजिते ।  
 अश्वजिते शीजिते अजिते अश्वेन्द्राय सोम यजताय हर्ययतम् ॥ १ ॥  
 अश्वसुर्वेभिमङ्गाय धन्वतेषु ह्यय सशमाना य वेधमे ।  
 त्विष्ये वदमे दुष्टर्गन्तवे सत्रा साह्वनम इन्द्राय वीजत ॥ २ ॥

६. शुत्तिमान्, कात्तिमान् आर अताव दशनाय इन्द्र मनुष्यक निये भद्रा संयार रहते है । शत्रुहन्ता और बलवान् इन्द्र संसारक प्रतिपुङ्गवो दमस्तम प्रिय मन्वक नीचे पढ़ाते है ।

७. वृत्रहन्ता और पुराणत इन्द्रन कृष्णजन्मा दास्य योनाका विनाश किया है । मनुष्य लिये पृथिवी और जलको सृष्टि की है । वा यजमानका उचरां लोप पूरण करे ।

८. मघानाजिते, जल-प्राप्तक जिघे, उन इन्द्रो मलय मा अश्वन्तक जलन प्रधान किया है । त्रिय समय इन्द्रके हाथमें वज्र दिया गया उच समय उचराने उसके दुष्टरा दानुमका इनके परक अगती लौहमयी एरीको ध्वस्त किया था ।

९. इन्द्र, तुम्हारी भनवती दक्षिणा स्वातक सार सशारय पूरा करणी है । उसी दक्षिणाको हमें दो । तुम भजनीय हो । हमें अतिक्रम करके अन्य शिक्षा नहीं देना । पुन और पीत्रमे युक्त होकर हम इस यज्ञमें प्रभुत्व स्तुति करेंगे ।

१. धनजयी, स्वर्गजयी, सदाजयी, मनुष्यजयी, उचराभूमिजयी, अश्वजयी, गोजयी, जलजयी—अथवा सधेजयी और भजनीय इन्द्रको लक्ष्य करके वाङ्मनी, सोम ले आओ ।

२. सबक पराजय-कर्ता, विमरक, भोक्ता, भजेय, सर्वमरक, पूर्णशीव सर्वविघाता, सर्ववादा, दमर्गक दुष्ट र्ष और सबदा जयशील इन्द्रको लक्ष्य करके, नमः शब्दका उच्चारण करते हुए, स्तुति करो ।



सत्रासाहा जनमक्षो जनं सहश्च्यवने युष्मो अनुजोपमुक्षितः ।  
 वृतञ्चयः सद्गुर्विश्वाहित इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वीर्या ॥ ३ ॥  
 अनानुषो वृषभो दोधनो वधोगम्भीर ऋषो असमष्टकाव्यः ।  
 रघ्नोदः श्रयनो वीलित स्पृष्टरिन्द्रः सुयज्ञ उपसः स्वर्जनन् ॥ ४ ॥  
 यज्ञ न गातुमसूरो विविद्विरेधियो हिन्वाना उशजो मनीषिणः ।  
 अभिस्वरा निपदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥  
 इन्द्रं प्र प्ठानि द्रविणानि ग्रहि वित्तिं दक्षस्य सुमगत्वमस्मे ।  
 पापं रयोणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनन्वमहाम् ॥ ६ ॥



२२ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टि, अत्यष्टि और शकरी छन्द ।

त्रिकद्र केषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्वृष्यामपिबद्विष्णना तुनं यथावशत् ।  
 स ई ममाद् महि कमेकर्तवे सहासुर्गं सनं भश्चदे वो देवं सन्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥  
 अथ त्विषोमर्मा अग्नेजसा क्रिन्वि युधाभवदा रोदसा अपृणदस्मज्जमना प्र वावृथ  
 अधत्तान्यं जटरे प्र मरिचयन् सनं सश्चदे वो देवं सन्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

३ बहुतोंके पराजयकर्ता, लोगोंके भजनीय, बलवानोंके विजेता, शत्रु निवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, शत्रु-  
 हिसक, शत्रुओंके अभिमव-कर्ता और प्रशापालक इन्द्रके सङ्कष्ट वीर-कर्मकी मन्त्र स्तुति करते हैं ।

४ अतुलदानमस्पन्न, असीधवशी, हिंसकके हन्ता, गम्भीर, दर्शनीय कर्ममें अपराजेय, समृद्ध लोगोंके उत्साह-  
 दाता, शत्रुओंके कर्त्तनकारी, दृढ़ज्ञ, जगदुत्पापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्रने उपामे सूर्यको उत्पन्न किया है ।

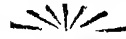
५ इन्द्रके स्तोत्रा, इन्द्राभिलाषी और मनीषी अङ्गिरा लोगोंने यज्ञ द्वारा जल-प्रसक इन्द्रके पास चुराये दूई  
 गायोंका मारी जाना है । लज्जित रक्षाके अभिलाषी इन्द्रके स्तोत्रा अङ्गिरा लोगोंने स्तोत्र और पुजाके द्वारा  
 गोचन प्राप्त किया है ।

६ इन्द्र, हमें उत्तम धन दे । हमें निपुणताकी प्रसिद्धि दे । हमें श्रीभाग्य दे । हमारा धन बढ़ा दो । हमारे  
 शरीरकी रक्षा करो । बालोंमें गीठापन हो । दिनका छन्द करो ।

१ पूजनीय, बहुबलशाली और तृप्तिकर इन्द्रने जेभी पहने इच्छा की थी, वेमे ही त्रिकद्र को यव मिलाया ।  
 अभिपूत सोम विष्णुके साथ पाल कर्त्ता । महान् सोमने तेजस्वी इन्द्रको महान् कार्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न किया  
 था । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

२ दीप्यमान इन्द्रने अपने जलमे युद्ध द्वारा क्रिद्विको जीता था । अपने तेजसे इन्द्रने यावापृथिवीको  
 चारों ओरसे पूर्ण किया था । वे सोमके बलमे बहुत बढ़े हैं । इन्द्रने एक भाग अपने पेटमे धारण करके अन्य भागको  
 देवोंको प्रदान किया । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

साक जातः क्रतुना साकमोजसा ववश्रिय साकं वृद्धा वीर्यैः सासहिर्मृगो वीचर्षणिः ।  
 दाना राघ, स्तुवते कास्यं वसु मनें सश्चद ना देधं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥  
 नयत्य नयं नृनाप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं त्रिवि प्रवाच्यं कृतं यद् वस्य शवसा प्रारिणा अमुं गिणन्तपः ।  
 भुवद्विश्वमभ्या देवमोजसा विदावृजं शतक्रतुर्विदाविपम् ॥ ४ ॥



३ अनुवाक । २३ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम् ।

ज्योतिराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः अण्वन्नृतिभिः सविंसादनम् ॥ १ ॥

देवाश्चित्ते अमृत्यं प्रचेतसो बृहस्पते यक्षियं भागमानशु ।

अत्रा इव सूर्यो ज्योतिषा सहो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणाप्रसि ॥ २ ॥

आ पिवाध्या परिगपस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य निठमि ।

बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोप्रमिदं स्वविन्दवम् ॥ ३ ॥

सुनीतिभिर्नयसि त्रायमे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्ववत् ।

ब्रह्मदिनपस्तप नो मरुमुमीरसि बृहस्पते महि सन्ते मन्वित्यनम् ॥ ४ ॥

३ इन्द्र, तुम यज्ञके साथ प्रवल उत्पन्न हुए हो । तुम सब से जानकी इच्छा कर हो । तुमने पराक्रमके साथ बढ़कर हिंसकी जीता है । तुम मनु और असतृक विचारक हो । तुम लोहाको कर्मसाधक और वाष्पनीय बन दो । सत्य और धारमान से ये सत्य और प्रशशमान इन्द्रको व्याप्त करें ।

४ इन्द्र तुम सूर्यो नचायेगो हो । तुम जो धूम काकर्म मनुष्योंके हितकर कर को किया था, वह शुतीकमे श्लाघनीय हुआ है । अदने पराक्रमसे तुम ने देव ( वृद्ध ) की पाण-हिंसा करके उसके द्वारा जलको बहा दिया था । इन्द्रने अपने बलसे वृद्ध या अदेवकी परास्त किया । शतक्रतु बल और अन्न जानें ।



१ हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवोंमें गणपति और कवियोंमें कवि हो । तुम्हारा अन्न सर्वोप और उपमान-भूत है । तुम प्रशसनीय लोगोंमें राजा और मंदोंके स्वासी हो । हम तुम्हें बुलाने हैं । तुम हमारी स्तुति सुनकर, आश्रय प्रदान करनेके लिये, यज्ञगृहमें आओ ।

\* अण्वन्नता और त्रिष्टुप् जानी बृहस्पति, देवोंने तुम्हारा वजीय पार प्रस किया है । जैसे ज्योतिष द्वारा पूजनीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न कर ।

३ बृहस्पति, चारों तरफसे मिन्दों और अन्यकारोंका दूर, करके तुम ज्योतिमान यज्ञ-प्राप्तक, मयानक, शय-हिसक, राक्षसनाशक, मेघ-भेदक और स्वर्गप्रदायक रथमें चढ़ हो ।

४ बृहस्पति, जो तुम्हें हव्य देता है, उसे तुम सन्मार्गमें ले जाने हो । उसे बताओ, उसे दाप नहीं मिलता । तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि, तुम मन्त्र-वैय्याक सन्नापक और प्रोषक हिंसक हो ।

॥ दूसरा अनुवाक १२ वं सूक्तमें ही प्रारम्भ होता है । भूलमें वहाँ नहीं दिया जा सका ।

न तमं हं न दुरितं कुतश्चन नागतयस्मिन्नित्यर्न दूयवाविनः ।  
 विश्वा इदंमातृ तस्मै विवाधयेयं सुगोपा रक्षस्मि व्रतास्पते ॥ ५ ॥  
 त्वं नो गोपोः पथिकृष्टिन्नभ्रणस्तव व्रताय मतिभिर्जगामहे ।  
 वृहस्पते यो नो अभिहरो दधे स्वा तं मर्त्यं तु बुच्छुना हरस्वतो ॥ ६ ॥  
 उत वा यो नो मर्त्यावनागसोरासीवा मर्त्यः सानुको वृकः ।  
 वृहस्पते अप तं वत्तयापथः सुगं नो अस्यै देववोतया कृधि ॥ ७ ॥  
 आभारं त्वा तनूनां हवामहे वस्पतरं प्रिवक्तारमस्य युम् ।  
 वृहस्पते दैवनिदो निबर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुप्तमुन्नशत ॥ ८ ॥  
 त्वया यः सुवृथा व्रजणस्पते स्पाहां वसु मनुष्या वर्जामहे ।  
 या नो दूरे तल्लता या कुरातदोभिस्सन्ति जम्भया ता अग्नसः ॥ ९ ॥  
 त्वया वयमुत्तमं धीमहे यो वृहस्पते पप्रिणा सस्मिना युजा ।  
 मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुगीशत प्र सुशमा मतिभिस्तामिषीमहे ॥ १० ॥  
 अतानुदो वधभो जमिराहवो निष्टमा शत्रुं प्रतनासु मासहिः ।  
 अस्मि सस्य ऋणया व्रजणस्पत उग्रस्य चिद्विमिना वीरुद्वपिणः ॥ ११ ॥

५ व्रजणस्पति, जिसको हम रक्षा करते हो, उसे दुःख कष्ट नहीं दे सका ।  
 शत्रु लोग उसे किसी तरह हार नहीं सकते, या उसे मरवा नहीं सकते । उसके लिये हम माँ हिंसकों को दूर कर दो ।

६ वृहस्पति, तुम हमारे गुरु, सम्मार्गदर्शक और विशाल हो । तुम्हारे पालन के लिये हम स्तोत्र द्वारा हम स्तुति करते हैं । जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसको दुर्मुख देववती शीघ्र उसे शंस विनष्ट करे ।

७ वृहस्पति, जो सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करता है, हमें सम्मान दे डाल दो । और उसके लिये हमारा पथ समझ कर दो ।

८ वृहस्पति, तुम सबको उपजावते बचाओ । तुम हमारे पौत्र आदिको पालन करो । हमारे लिये मर्त्य वस्त्र बोलो और हमारे प्रति प्रसन्न होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम देव-हिंसकों का विनाश करो । दुष्ट हिंसा हरकट सुख का पार्थ ।

९ व्रजणस्पति, तुम्हारे द्वारा वदित होनेपर मनुष्यों के पासमे हम मनुष्यीय धन प्राप्त करेंगे । शत्रु या पाम हमारे जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन वधहीन शत्रुओं को विनष्ट करे ।

१० वृहस्पति, हम सभोग्यके पुरविता और पवित्र हो । हम तुम्हारे स्हायता पाकर वस्तुष्ट अन्न प्राप्त करेंगे । जो दृष्ट हमें पराजित करता चाहता है, वह हमारा अभिपति न हो । हम उत्कण्ठ स्तुति द्वारा पुण्यवान् होकर उन्नति करेंगे ।

११ व्रजणस्पति, तुम्हारे शानकी उपमा नहीं है । तुम अभीष्टवर्षी हो । युद्धमें जाकर तुम शत्रुओं को सन्ताप देते और उन्हें विनष्ट करते हो । तुम्हारा पात्रपत्र भय है । तुम युजका परिशील करते हो । तुम भय हो और सर्वोत्तम व्यक्तियों का दमन करते हो ।

अथेवेन मतस्मा यो विषययति शास्त्रानुपपन्नः अन्वयमानो जिघांसति ।  
 बृहस्पतिं मा पणक्तव्यं नो बभूवो नि कर्मो भूयः दुर्नेमस्य शर्पणः ॥१२॥  
 अनेषु पत्न्यो नः सोपमस्यो जन्ता न ज्ञेय मनिता धनं धनम् ।  
 विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृषो बृहस्पतिर्विव वर्हा रगाँश्च ॥१३॥  
 तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निहै दधिरे दृष्टवीर्यम् ।  
 आविष्टतृक्ष्व यद्वस्त उक्थ्य बृहस्पते विपश्चिणो उदय ॥१४॥  
 बृहस्पते अति यदर्यो अर्हान् भदिमति कतुमजनेप ।  
 यद्वीर्यच्छवस्य स्रतपजान पदस्मात् द्विणिं धेहि विप्रम् ॥१५॥  
 मा नः स्तेनेभ्यो ये अभिद्व हस्पदे निरामिण रिपवोऽनेप प्रागृधुः ।  
 आहै तापामो ते विप्रयो हवि बृहस्पते न परः साध्नो विदुः ॥१६॥  
 शिष्टेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परिस्थितास्तनू सान्नः साम्नः कविः ।  
 न स्रणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मरु स्रतस्य धनंरि ॥ १७ ॥

१२ जो व्यक्ति देवगुरु जनसे हमारी हिंस्र करता है और जो उस आत्माभिषाणी हमारा सब करनेकी हक़ करता है, हे बृहस्पति, उसका आयुष हमें न हूँ मरने । हम उसे बचाना और दुष्ट शत्रुका कोप नाश करनेमें समर्थ हों ।

१३ युद्धकालमें बृहस्पति आहवाण-गोत्रय और नमस्कार-पूर्वक उपसमन-गोत्रय हैं । वह युद्धमें जाते हैं । सब प्रकारका धन देने वाले स्वर्गकी रक्षायी बृहस्पति विजिगीषावाली सारी हिंस्र मेवाओंको रथकी तरह, निहत और विध्वंस करने हैं ।

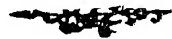
१४ बृहस्पति, समीप मोक्ष और सन्नाहक हैं। आयुषमें राक्षसोंको सन्नाह करा । इन्हीं राक्षसोंसे, तुम्हारे पास-परमके प्रभु होनेपर भी, तुम्हारा निर्या ही था । पूर्वकालमें तुम्हारा ही प्रसन्नताय नाग था, इस समय उसका आविष्कार करा और समस्त दुःखोंका विनाश करो ।

१५ यज्ञज्ञान बृहस्पति, जिन धनकी आरंभ लोभ पुत्र करने हैं जो लोभ और यज्ञवाला धन लोगोंमें शोभा पाता है, जो धन अपने तेजसे तोमियाता है, वही विप्रधन या सदायस तेज हमें दो ।

१६ बृहस्पति, जो लोभ द्रोह करनेमें समर्थ होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दुर्मर्यादा करने चाहते हैं, जो अपने जनसे सर्वश्रेष्ठ देवोंका अहिंसाकार करनेकी तुल्ला करते हैं और जो राजस-नाशक साम स्पति नहीं जानते, उनके दासमें हमें नहीं देना ।

१७ बृहस्पति, राजा अपने सब सर्व-श्रेष्ठ उपसमन दिए हैं । इन्हींके सम भरे आसोंके उत्त्वारण कर्ता हों । यज्ञ आरम्भ करनेपर ब्रह्मणस्पति समस्त सारा धन पशुओंका दान और क्षणका परिहोय करते हैं । वह द्रोहकारोंका विनाश करते हैं ।

तव श्रिये व्यजिर्हात पवन्तो गवां गोत्रमुवसृजां यदङ्गिरः ।  
 इन्द्रं ण युजा तमसा परीवृत बृहस्पते निरवामौव्जा अणवम् ॥ १८ ॥  
 ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्य ।  
 चिष्वं तदुभद्रं यद्वन्ति देवा बृहदुदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥



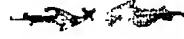
१८ अङ्गिरोवङ्गीय बृहस्पति, पर्वतोंने गायोंको क्षिपाया था । तुम्हारी सम्पत्तिके लिये जिस समय वह उद्व्यापित हुआ और तुमने गायोंको बाहर किया, उस समय इन्द्रका सहायक पाकर तुमने वृत्र दुवारा आक्रान्त जलाबारभूत जल-राक्षसको नीचे किया था ।

१९ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो । इस सूक्तको जानो । हमारी मन्तितियोंको प्रसन्न करो । देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह मल्लो भौति कल्याणवाङ्क है । हम पुत्र और पौत्रवाने होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

पष्ठ अध्याय समाप्त



## सप्तम अध्याय



२४ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और अगती छन्द ।

समामपिदृष्टि प्रभृति य ईशिपया विधम नवया महागिरा ।  
यथा नो माद्वानस्तपते मन्वा तत्र बृहस्पते सापथः सोऽत नो मतिम् ॥१॥  
यो नन्वाभयनमन्योजसाताद्वभन्युना शम्भूराणि वि ।  
प्राक्याभयदच्युता ब्रह्मणस्पतिगवाविशत्रुपन्तं वि पर्वतम् ॥२॥  
तद्वानां देवतमाय कर्त्तव्यमथनन्दृहलाग्रदन्त वीलिता ।  
उद्गा आजवमिनद्व्रतणा बलमगृह्णन्तमोव्यनक्षयन्स्वः ॥३॥  
अश्मास्यमवन्त ब्रह्मणस्पतिर्बुध्रात्मभि यमोजसातृणन् ।  
तमेव विश्वे पापिरे स्वर्दृशो बहु साकं त्विसिचुरसमुद्रिणम् ॥४॥  
मना ता काचिद्गवना भजन्त्वा मन्त्रिः शरद्भिर्दुरा वरन्त वा ।  
अग्रतन्ता चरन्तो अन्यदन्वदिष्टा स्वकार वयुता ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

१ ब्रह्मणस्पति, तुम साँस संसारके स्वामी हैं । हमारे द्वारा भली भाँति की गयी स्तुतिको ग्रहण करो । हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुतिके द्वारा, सेवा करते हैं । हमें अभिमत फल प्रदान करो, क्योंकि, बृहस्पति, तुम्हारे वरदायक हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करता है ।

२ बृहस्पति, अपनी सातव्यय, तुमने तिरस्कारगोत्रका तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्भूको विरोध किया था, निरञ्जल जलको चालित किया था और गोधनपण पर्यन्त प्रवेश किया था ।

३ देव-अष्ट देव बृहस्पतिके कार्यों में सहृदयता दिखित हुआ था और स्थिर वृक्ष मग्न हुआ था । उन्होंने पाथोका उद्धार किया था । मन्त्र द्वारा बलाघ्नको मिन्न किया था । अन्वकारका अहण किया था । आदित्यको प्रकट किया था ।

४ बृहस्पतिने पथरको तरह हृदय मुखरात्रे, मधुर जलमें पूर्ण और निम्न अवतल जिम में घड़ा, बल-प्रयोग द्वारा, धध किया था, इसका आदित्य-किरणोंने जल पान किया था और उन्होंने ही जलधारा-मय घृष्टका मिन्न किया था ।

५ स्तुतिको, तुम्हारे ही लिये बृहस्पतिके मानमान और वाचित्र प्रज्ञानमें महीने-महीने और साल साल होने वाली वर्षाका द्वार उद्घाटित किया था । बृहस्पतिने ऐसे प्रजातोंको मन्त्र-विषयक किया था । स्वप्न करके धावापृथिवी परस्पर छल बढ़ाती हैं ।

अभिन्नप्रन्तो अभि यै तमानशुनित्रिं णाणां परमं गुहाहितम् ।  
 ते विनाम् प्रतिचक्षुःनृपा पुनयेत उ - यन्तदुदीशुर्गाशम् ॥६॥  
 सृता रानः प्रतिचक्षुःनृपा पुनरात आनस्थः कवयो महस्पथः ।  
 ते बाह्व्या धर्मिमग्रिमश्मनि नकिण्यो अस्त्रयणा जहृहितम् ॥७॥  
 सृतज्येन क्षिप्रं प्रह्वणस्पतिर्यत् वष्टि प्रतनश्रोति धन्वता ।  
 तस्य साध्वीरिपयो याभिरम्यति नृक्षसो दृक्ष्य कर्णशो नयः ॥८॥  
 ससैनयः सविनयः पुगेहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणसः तः ।  
 चाक्ष्मो यद्वार्ज भरते मती धनादित्सूर्यस्तपात् तप्यतुर्वृथा ॥९॥  
 विभु प्रभु प्रथमं मेहनावता बृहस्पतेः सुविद्व्राण राच्या ।  
 इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उमये भुज्जे विशः ॥१०॥  
 यो वरं वृज्जे विश्वथा विभुर्महामुरगवः शयशा ववक्षि ।  
 स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वदुता परिभ्रष्टाणस्पतिः ॥११॥  
 विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनश्चि वतं वाम् ।  
 अच्छेन्द्रावह्मणस्पता हविर्नानि युजेव याजिना जिगातम् ॥१२॥

६ विज अङ्गिरा लोगोंने, चारों ओर खोजते हुए, पणियोंके दुर्गमें क्षिप्राने हुए परम धनको प्राप्त किया था । मायाका दर्शन करके वे जिस स्थानमें गये थे, फिर वहीं गये ।

७ सत्यपदी और सर्वज्ञ या अङ्गिरा लोग, मायाका दर्शन करके, पुनः प्रवान मार्गमें, हमी और गये । उन्होंने हाथोंमें जकाये अग्निमें पर्वतपर फेंका । पड़से वह ध्वंसक अग्नि वहाँ नहीं गी ।

८ बृहस्पति वाण-जैयक और सत्यरूप जयावन्ते हैं । वे जो चाहते हैं, धनके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । जिस वाण-को वह फेंकते हैं, वह कार्य-साधनमें कष्ट होता है, उस वाण द्वारा ही आपन्न हुए हैं । उर्ण ही उसका उत्पत्ति-स्थान है ।

९ ब्रह्मणस्पति पुराहि, तः । तः लोग पशुओंका दूधक और दूधक प्राप्त हैं । सत्य उनकी स्तुति करते हैं । वह युद्धमें प्रवृत्त होते हैं । सर्वदुष्टी वृत्तान्त जिस अन्त्य अन्न और धन प्राप्त करने हैं, उस सत्य अनायास सूर्य उगते हैं ।

१० कृष्टिर्नृप बृहस्पति धन चारा और व्याप्त, प्रापगाय, प्रनृप और उत्तम है । कमनीय और अन्नवान् बृहस्पतिने यह सारा धन प्राप्त किया । दोनों प्रकारके मनुष्य ( यजमान और स्तोता ) व्यानावस्थित वित्तसे इस धनका उपभोग करते हैं ।

११ चारा और व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् यज्ञी, दोनों प्रकारके स्तोताओंकी, अपने शक्तिसे, रक्षा करने हैं । दोनों ही गुणवान् बृहस्पति द्वारा प्रतिनिधि रूपमें सर्वक आयन्न विख्यात हैं । इसीलिये वह सारे प्राणियोंके स्वामी भी हुए हैं ।

१२ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो । सारा सत्य तुम्हारा ही है । तुम्हारे वतकी जल नहीं मार सकता जैसे रथमें जुन हुए बाण क्षायक सामने दीदते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे श्वक लिये दोगे ।

कताशिष्टा अनुश्रुण्वन्ति ब्रह्मः सगगो निप्रो भरते मनीषना ।  
 वांस्तुष्टे षः अनुवशशृणुमद्विः सहवासां सांमशं ब्रह्मणस्पति ॥१३॥  
 ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्या मन्युमति कर्माकर्णिततः ।  
 यो गा उदाहन् स दिव सिनामजन्महीन गतिः शवसास्वन् पृथक् ॥१४॥  
 ब्रह्मणस्पते सुधमस्य विश्वहराद्यः स्याम रथ्या वयस्मन्तः ।  
 वारिषु वारां उपपृग्वि नरुषं वदाशानां ब्रह्मणा वषि मे धवम् ॥१५॥  
 ब्रह्मणस्पते त्व. स्य यन्ता मूकस्य बोधि तनयं न जिव ।  
 विश्व तद्भद्रं भवन्ति देवा बृहददेम विदथ सुवीराः ॥१६॥

२५ सूक्तः ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

१-धानो अग्नि वनहनुष्यतः कृतब्रह्मा शशुवद्राततः । इतु ।

जलेन जातमिति स प्रवस्यते यथं युजं कृणते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ॥

१३ ब्रह्मणस्पति ऋषिमान् वांस्तुष्टे इमारा स्तोत्र सुनते है । मेरु ती आर सभ्य अध्वर्यु, मन्तरम स्तोत्र द्वारा, इत्य प्रवृत्त करते है । वनहनुष्यतः तमनकारः ब्रह्म स्पति इमार पाप, इन्द्राशुमार, कृण स्वीकार करते है । जलेन जातमिति युज्यते इति प्रहण को ।

१४ जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी मरुत वसने प्रवृत्त होते है उस समय उनका १५ उनकी अग्नि पाषाणे अनुसार सकल होना है जिन्होंने मायाकी आश्रय लिया, उन्हें इति धृत्वाकित्तिये उनका भाग किया है । महान् सोमकी तरह गन्ध, अपने बलमे, अलग-अलग । यथा है ।

१५ ब्रह्मणस्पति, हम सब समय एकुष्ट निराम को प्रनमस्कार धनक अधिपति है । तुम हमारे वीर पुत्रको पौत्र वा; क्योंकि तुम स्वर्ग ईश्वर हो । इमारा यजुति और जन्तुको वाह ।

१६ ब्रह्मणस्पति, तुम इस भवार्थके अभिषेक हो । तुम है भवार्थ जाति । तुम हमारी मन्त्रतियोंका प्रमत्त को । देवता लोग जिसकी रक्षा करने है वह कल्याणवादा है । पुत्र और पौत्रवाले द्वार लय इस यज्ञमे प्रवृत्त रूप से करेंगे ।

अधिकां प्रवर्तित करने यजमान शशुवी की दिना का । यजमान पूरा और अन्य जान करने हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके । जिस यजमान को भस्म करके ब्रह्मणस्पति ग्रहण करने है, यह पुत्रके पुत्रमे भी अधिक जीवित रहता है ।



वीरेभिर्वीरान्वनवदनुष्यतो गोम्री रयि पप्रथद्वाधति त्वना ।  
 लोकं च तस्य तत्रयं च वधते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥  
 सिन्धुर्न श्रोदः शिर्मावाँ ऋघ्रायतो वृषेव वध्नाँ रभिवष्ट्याजसा ।  
 अग्रे रिच प्रसिन्तिर्नादवर्नवे ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥  
 तस्मा अर्पन्ति दिव्या असश्चतः सम-चभिः प्रथमे गोषु गच्छति ।  
 अनिभृष्टतविर्गहन्त्यो नसा ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥  
 तस्मा इतिग्वे धुनयस्त विन्धवाच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।  
 देवानां सुप्तं मुमगः स एषने ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥



२६ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

ऋजुरिच्छंसा वनवदनुष्यतो देवयन्तिरदेवयन्तमभ्यसत् ।

मुप्रावीरिदितवत् पृत्सु दुष्टरं यज्जेदयज्योविमज्जानि भोजनम् ॥१॥

२ यजमान वीर शत्रुओं के द्वार शत्रुओं के वीर पुत्रों को मार । वह राजसूय करने निकलता हुआ है और अन्य सब समझ सकता है । बृहस्पति जिस यजमान का भस्म कड़कर ग्रहण करने है, उसका पुत्र और पौत्र भी समृद्धि प्राप्त करता है ।

३ जैसे नदी सड़को लावती है, सौँड़ जैसे घेतों की पराजित करता है, ऐसे ही बृहस्पति की सेवा करनेवाला यजमान, अपनी शक्ति से, शत्रुओं को पराभूत करता है । जैसे नाशनीशस्त्राकार निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति जिस यजमान को सखा कड़कर ग्रहण करने है, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता ।

४ जिस यजमान का बृहस्पति सखा कड़कर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अश्वत्थान निर्माण होकर, स्वर्गीय जल आता है । परिचर्याकारिणों में भी वही सबसे पहले साधन प्राप्त करता है । उनका बल अनिवार्य है । वह बल द्वारा शत्रुओं का विनाश करते हैं ।

५ जिस यजमान का सखा स्पति ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । वह सहा नानाविध सुख का उपभोग करता है । वह सौभाग्यशाली है । वह देवी द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त कर समृद्धि पाता है ।

१ ब्रह्मणस्पतिको भस्म करनेवाला शत्रुओं का विनाश कर उन देवताओं की अदेवताओं को पराभूत कर डाले । जो बृहस्पतिको अच्छी तरह पूज्य करता है, वह युद्ध में शत्रुओं का विनाश करता है । यज्ञपरायण अयाज्ञिकों के जनका उपभोग कर सके ।

यजस्य वीरि प्रविदि मनायतो भद्रं मनः कृणुत्व वृत्रतृणं ।  
 दधिष्कृणुः सुमगो यथास्मि ब्रह्मणस्पतिरय आ कृणांसहे ॥ २ ॥  
 स इज्जन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाज भरते धनानृभः ।  
 देवानां यः पितरमाविवासति अजमना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥  
 यो अस्मै हव्येष्टुं तवर्दमिरावधन् प्रतं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।  
 उरुष्यतीमहसो रक्षतीरिषाहाश्चिदस्मा उरुचकिरदुभुतः ॥ ४ ॥



२० सूक्त । आदित्यगण देवता । षिष्टेषु छन्द ।  
 इमा गिर आदित्येभ्यो घृतसूतः सनाद्राजभ्यो जुहा जुहोमि ।  
 शृणोतु मित्रो अयमा भगो नमूनायजातो वरुणो दक्षा अंशः ॥ १ ॥  
 इमं स्तोमं सकृदयो मे अय मित्रो अयमा वरुणा जुपन्त ।  
 आदित्यासः शुचयो धारपूता अर्वाजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥  
 अ आदित्यास उज्वो गभीरा अदव्यासो दिप्सन्तो भूयश्वा ।  
 अन्तः पश्यन्ति वृजिनां सन्धु स्रवे राजस्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

२ और, इस ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति करो : अभिमानी शत्रुओंके विरुद्ध यात्रा करो । शत्रुओंके साथ संध्यामें मनको हृद करो । ब्रह्मणस्पतिकी निन्दे हृदय में न करो । वेदा करनेपर तुम उत्तम धन पाओगे । इस ब्रह्मणस्पतिके पाशमें रक्षा चाहते हैं ।

३ जो यजमान अर्वाजाने हाथ देवोंके पिता ब्रह्मणस्पतिकी, हव्य दुवाश, परिचर्या करता है, वह अपने अनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्यन्त्र परिचारकोंके अन्न भोग और धन उपगत करता है ।

४ जो ब्रह्मणस्पतिकी पाशवशो पत युक्त पश्यते करता है, उसे ब्रह्मणस्पति पाशोन सरत मार्गसे ले जाते हैं । उसे ये पाप, शत्रु और दुरिद्वतासे बचाते हैं । अन्तर्वाक्य ब्रह्मणस्पति उसका महान् उपकार करते हैं ।



१ मैं हृद द्वारा, भद्रंदा शोभमान आदित्योंको लक्ष्य कर, पान छाविणी स्मृति अर्पण करता हूँ । मित्र, अयमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्षा यौरे अंश मेरी अस्ति स्म ।

२ आदित्यमान, शृणोतु, नमूनायजात, अरिष्टा, उज्वो, गभीरा, अदव्यास, दिप्सन्तो, भूयश्वा, अयमा और वरुणासक आदित्य आज मेरे हृद स्तोत्रका रूपमें १२ ।

३ महान्, गभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी और बहुव्यापक आदित्यगण प्रार्थनोंका अन्तःकरण देवते हैं । दुरिद्वश-स्थित पशुधर्मों आदित्योंके पाश निकट है ।

नारायणः आदिद्यामी उग्रस्थः देवा विराजस्य भुवनस्य गाथाः ।  
 दद्यात्तु यः कक्षमाणा अग्र्यमृतावानश्चरामातः ऋणानि ॥ ३ ॥  
 विद्यामादित्या अदसी च अस्मदयसमन्तं सः आ चिन्मयोभु ।  
 गुणमाजं मिवावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रं च ददितानि नज्याम ॥ ५ ॥  
 सुगो ति दो अयमन्मित्र पत्न्या अनुक्षरो वरुण साधुरस्मि ।  
 तेनादिद्या अश्विनोमना नो गच्छता नो दुःपरिण्तु शर्म ॥ ६ ॥  
 विपत्तं नो अदितौ गार्ग्यद्वानिते पांसुयस्येमा सुगेमिः ।  
 वत्स्मिन्नश्व वरुणस्य शर्मोदस्याव गुरुवोरा रुचिटाः ॥ ७ ॥  
 निस्त्रो भूमी रंगन्त्रो कृतज्ञस्त्रीणि वताविद्ये यत्नरेणाम ।  
 अनेनादिद्या मति यो मणितं नदयस्त्वामणमित्र नार ॥ ८ ॥  
 त्रौ गीन्तना दिव्या आरयन्तः शिरययाः शूनयो भगवताः ।  
 अस्मद्वतो यनिमिषा अश्वना रुशंसो गार्ग्यो भवर्ग्य ॥ ९ ॥  
 च विष्णवेपां वरुणासि राता ये च देवा असुर ये न मर्षाः ।  
 शतं नो अस्मदश्वो विच्छेदयन्मायूषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥

४ आदित्यगण स्वार्थ और जंगमको अवस्थापरिणत करने और सारे भुवनोंकी रक्षा करने हैं । वे बहुत ही वासे और कष्टों केवला प्रणके देवसुत जनकी रक्षा करने हैं । वे कष्टकारों और कृज-परिहोषक हैं ।

५ आदित्यगण, इस दुःखदश आश्रय प्राप्त करें । अथ यज्ञेय कष्टकारों आश्रय स्वरूप प्रदान करता है । हे अग्र्यमा मित्र और वरुण, तुम्हारा अनुमान करके मैं सृष्टीकी तार्क्यकारों को दान कर दूँ ।

६ अग्र्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा अर्थ सुनो, अग्र्यमा मित्र और वरुण हैं । आदित्यगण, उसी मार्गमें तुम हमें से जाओ, गीत वचन लेलो और विराजो मन्त्र को ।

७ शतमात्र आदिति शम्भुभर्ता जीवन्त हमें दुर्गम देशों से जाके अग्र्यमा हमें समस्त मार्गों से जाओ । इस गुरुवीर-युक्त और आदित्य के कष्टों से और वरुण का सुख प्राप्त करें ।

८ ये पृथिवी, जलरश्मि और अग्र्यमा तथा मर्षा, हम और अन्य लोकोंको आरक्षण करते हैं । इनके यज्ञों में नून वन (नील मकर) हैं । आदित्यगण, यज्ञ द्वारा तुम्हारी मोहना खोद दूँ है । अग्र्यमा मित्र और वरुण तुम्हारा वह महत्त्व सुन्दर है ।

९ एवर्णान्कार-सृष्टि, विपत्ति, भूषण, विद्वत्पण, प्रतिवेदन-तुल्य विपत्ति-हित और मन्त्रके स्तुतियोग्य आदित्यगण सरल-मन्त्रावयव से कष्टों को दूर करने और दुर्गम मार्गों से मार्गों को प्रदान करते हैं ।

१० अश्व वरुण, तुम देवता हो या असुर, सबके राजा हो । हमें सौ वर्ष देखने दो, ताकि हम पूर्वजोंकी उपसृक्त आयुको प्राप्त कर सकें ।

न दक्षिणा विचिकिते न सत्या न प्राज्ञो न मादित्या नानश्रवा ।  
 पावया बिहसवो धीर्या निघ्नूष्मानीतो अभयं ज्यातिरश्याम् ॥ ११ ॥  
 यो राक्षस्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।  
 स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुधाया विवधेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥  
 शुचिरपः सूर्यवसा अद्वय उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।  
 न किष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥  
 अदिते मित्रवरुणो न मूलं यदं तथ वक्तुमा कच्चिद्वामः ।  
 उर्वश्यामभयं ज्यातिरिन्द्र मा नो दोषः अभिनशन्तमिन्द्राः ॥ १४ ॥  
 इमे अस्मै पीपयतः समीचीन्यो वृष्टिः स्वभगो नाम पूष्यन ।  
 उभा श्यानाज्येन यानि प्रत्यूभावर्धो भवतः साधु अरमै ॥ १५ ॥  
 यः नो माया ह्यभिद्रुहे रुजत्राः पाशा आदिरया गिपधे विचृन्ताः ।  
 अश्वीय तौ कश्चि मेघं रथेजारिण्यः तदा वा शर्जन्तसू रथाम ॥ १६ ॥

११ वास-प्रदाता आदिभ्यो, हम न भी दादिते जानते, न वागे जानते, न सामने जानते और न पीछे जानते । मैं अपरिणत बुद्धि और असीद्ध कर्तृ हूँ । मुझे हम से जाओगे, तो मैं निर्भय ज्योतिषको प्राप्त करूँगा ।

१२ रुजके नायक और राजा आदिभ्यो जो इन्त्य प्रदान करता है, उनको नित्य अनुग्रह जिसकी पुष्टि करता है । जो अग्नि घनवान्, विरुणात्, वदान्त्य-गौरवो मित्र होकर तथा रथेन उदकर रुजस्थलेमें जाता है ।

१३ वर दोसिमान्, हिंसा-रहित, पुत्र-वर्धनशील और सुव्रत नु श्रेष्ठा उत्तम शस्त्रवासे जलन पास निवास करता है । जो आदित्योंका अनुसरण करता है, उभका तब या निकटता कः, वर नहीं कर सकता ।

१४ अदिति, मित्र, वरुण, जो यदि तुम्हारे पक्ष में कार्य करेगा तब, तो कदा कर हमका मार्जन कर दालो । इन्द्र, हम निम्नोर्ण और निर्भय लपोति प्रत्येक कार्य । अज्यमान्यो, जो हमसे लिहा न करे ।

१५ जो आदित्योंका अनुग्रह करता है । पक्षी, श्वेत, ध्विनी एकत्र हाकर, पुष्टि करती है । वह सीमावशाल है और स्वर्गीय जल प्राप्त करके समृद्ध पाना है । युद्धक्षेत्री वह उत्तम विरुणात् करके अपने और रुजके निवास-स्थान पर जाता है । संसारका आधा भाग ही इन्द्रका मेल-मिलन ।

१६ पूजनीय आदित्यगण, होह कारिणीक लिये तुम्हारी क माया बनाती गयी । अगर जो पाश शत्रुओंके लिये ब्रियम हुआ है, हम उनको, अवरोही पुरुषको सहः अनायास लयि जायें । प्रम हिंसाशून्य होकर परम सुखमें निवास करें ।

माहं मघोनी वरुण प्रियस्य भृगिदावन् आ विदं शूनमापेः ।  
मा रायो गजस्तस्युयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीगो ॥१७॥

२८ सूक्त । वरुण देवता । तिष्ठत्प छन्द ।

इदं कधेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु महमा ।  
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं मिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥  
तव व्रते सुभगासः स्थाम स्वाध्या वरुण तुष्टुवांसः ।  
उपायन उपसां गोमतीनामग्नयो न जग्माणा अनु द्यून् ॥२॥  
तव स्थाम पुरुतीरस्य शर्मन्तुरशंसस्य वरुण प्रणेतः ।  
यूयं नः पुत्रा आदितेरदवधा अभि श्रमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥  
प्र सीमादिन्यो असृजद्विधन्तो अतं स्थिध्वो वरुणस्य यन्त्रि ।  
न ध्राग्यन्ति न विमुच्यन्त्येते त्रयो न पत्न रघुया परिष्मन् ॥४॥  
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाय ऋध्याम ते वरुण गम्यतस्य ।  
मानन्तुश्चदिवयतो ध्रिय ते मा माता शायवन्तः पुरश्चरे ॥५॥

१७ वरुण, मुझे किसी घबो और प्रभुत-दानशील व्यक्तिक पाम जातिकी वसिष्ठताकी बात न कहनी पड़े । राजन, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो । इस दान और पौत्रवाले जाति इस पजन से बहुत स्तुति करेंगे ।

१ कवि और मन्त्र्य सशोभित वरुणके लिये यह हटप है । वह अपनी मन्त्रिणाके द्वारा मारे भूतोंको पराजित करते हैं । प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमानको प्रसन्न हो प्रदान करते हैं । मैं तनयों स्तुतिकी चार्धना करता हूँ ।

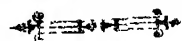
२ वरुण, हम मली भूमि तुम्हारी स्तुति, धन्य न और पवित्रता वरुण को भगवन्ताकी हो सके । किरण-युक्त उषाके आनेपर अग्निकी तरह इस पतिहिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों ।

३ विश्व-नायक वरुण, तुम किन्ने ही कोशिकाये हो, बहुत लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं । हम तुम्हारे घरमें निवास कर सकें । हिंसा-शून्य और दासिमान् अर्द्धिता कुले, तुम्हें हमारी वैश्वके लिये, हमारे अपराधको मिटा दो ।

४ विश्व-धारक और अद्विष्ट वरुणने अच्छी तरह मुझको सृष्टि की है । वरुणको महिमामे नवियौ प्रवाहित होती हैं । ये कभी विश्राम नहीं करते, लौटाने की नहीं । ये, यजियों । ताड़, वेणक पाथ पृथिवीपर जाती हैं ।

५ वरुण, मेरे पापके मुझे रम्भो की तरह बोर रहा है । मुझे बुराया । हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें । यज्ञके धननेके समय हमारा तन्त्रु कभी टूटन न पावे । अरुमय-यज्ञकी मात्रा कभी विकल न हो ।

अपः २ स्यश्च वरुण नियम मत् सघ्राद् श्रुतावोतु मा गृभाय ।  
 दामेन वत्सालि सुमुग्ध्यद्वा तद्धि स्वदारे निमिषश्चनेश ॥६॥  
 मा ना वध-वरुण ये न इष्टावनाः कृण्वन्ममसुर भ्रूणन्ति ।  
 मा ज्योतिषाः प्रवसथानि गन्म विप्रसृधः शिश्रधा जीवसे नः ॥७॥  
 नमः पुरा तं वरुणानि नूतमुतापरा तुविजात प्रवाम ।  
 न्व हि कम्पवर्धन न श्रुतस्यश्चपुनानि दुङ् न वदन्ति ॥८॥  
 पर शृणासा शीघ्रमत्कृतानि माहं राजन्नर्यकृतेन भाजम् ।  
 ज्वकुप्ता इत्थं भूयमाकषस आ ना जीवान् वरुण तालु शान्धि ॥९॥  
 यो मे राजन्पुत्रो वा सखा वा स्वप्न भयं भारये मह्यमाह ।  
 स्नेनां वा यो दिप्सन्ति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥  
 माह दधोना वरुण प्रपश्य भूदिदावन् आ विद् शूनमापेः ।  
 मा भाया राजन्स्तु गमद्विपस्थां बृहद्वैम विद्वय सुवीराः ॥११॥



६ वरुण मेरे पक्षीय जन्मों के लिये का दान न करेगा, मैं अन्धकार मुक्तपः कृपा करे । जैसे रस्मीमे बड़बड़को बुझाया जाता है, वैसे ही वरुण मुझे नव-राजः कृपा करे । जन्मों प्रत्येक होकर कोई एक एकके लिये भी आधिपत्य नहीं कर सकता ।

७ अरुण वरुण, तुम्हारे यन्त्रों परराध करनेवालों को जो आकुल मारते हैं, वे हमें न मारें । हम प्रकाशसे निर्वासित न हों । हमारे जीवने के लिये हिंसकहो हटाओ ।

८ हे बहुम्यानीपन्न वरुण, हम भूत, वतमान और जातिव्यत समवर्गों के दुःखों लिये नमस्कार करेंगे ; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण पूर्वकी तरह तुम्हें सारा अकृत्य कम आश्रित हैं ।

९ वरुण, पूर्वजोंने जो दण्ड किया था, उन्हा पक्ष्याध करे । इस समय में जो शृण करता है, उसका ये परिशोध वरी, ताकि वरुण, मुझे कृपाकर क्षमा करे । यह जोन करनेकी आवश्यकता न हो । शृणके कारण शृणवत्ताके लिये मानों अनेक उपायोंका प्रयत्न हो नहीं हुआ । वरुण, हम उन लोगों उपायोंमें जीवित रहें, ऐसी आज्ञा करो ।

१० राजा वरुण, मैं शिर हूँ । भूमि जो लम्बु नीच स्थिति में भयंकर बात कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ । तस्कर या बृक मुझ मारना चाहता है । उससे मुझे बचाओ ।

११ वरुण, मुझ विषय घनो और प्रभु-दानशाली व्यक्तिके पास जासकी दृष्टिवाकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे आवश्यक घनका अभाव न हो । इस पुत्र भी पौत्रत्वसे होकर हम यज्ञमें प्रभुत्व स्मृति करेंगे ।

२८ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

धृतावता आद्रया शिप्या आरे मत्कन्त रत्नसूत्रिवागः ।  
 शृण्वता वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे बुवेवः ॥१॥  
 यूयं देवाः प्रभातयूयभोजी यूयं द्वेषांसि सनुनयुशेन ।  
 क्षमिष्यन्तामिदमव्यस्यन्तमद्याचनो मूलानां परं च ॥२॥  
 किमुनु - कृणवामापरं किं रुनेन वसध आप्येन ।  
 यूयं नो मित्रावरुणादिने च स्वस्तिमिन्द्रामरुता दधात ॥३॥  
 ह्ये देवः यूयमिदापयः स्थ न मूलत नाधमानाय मह्यम् ।  
 मा वो रथो मध्यमवाहुने भून्मा युष्माश्चत्स्वापिप् श्रमिष्म ॥४॥  
 प्र त एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।  
 आरे पाशा आरे अधानि देवा मा माश्चि पुत्रं विमित्र ग्रमाष्ट ॥५॥  
 जर्वाञ्चा अद्या भवता यजत्रा आ वा हार्दि मयशना व्ययेयम् ।  
 आध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य आध्वं कर्तादवपता यजत्रा ॥६॥

१ हे वक्ता, शीघ्र समस्तशक्ति और सबके प्राप्ति के आर्पण, गुन पावना का एक समको तरह मेरा अपराध दूर देणमें फेंक दो । मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कथनों में जोतकर, रत्न के लिये, तुम्हें बुलाता हूँ । तुम हमारी स्तुति सुनो ।

२ देवगण, तुम्हीं अनुप्रादक और बल हो । तुम हो यशस्वि हमें पालने अलग करो । शत्रु-निमिष, शत्रु-ओंको पराजित करो । वर्तमान और भविष्यत्तुम्हें हमें सुखी करो ।

३ देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम सिद्ध कर सकेंगे ? वध और सनातन प्राप्त्य कार्य द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे ? मित्रावरुण, अर्द्धि, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो ।

४ देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो । हम तुम्हारी प्राप्ति करने हैं । कृपा करा । हमारे यज्ञमें आनेमें तुम्हारा एक मन्त्र-गति न हो । तुम्हारे समान बन्धु पाकर हम आस्त रहें ।

५ देवगण, तुम लोगो के बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेकविध पाप नष्ट कर डाले । जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्रको उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है । देवी, मांग पाश और पाप दूर हों । जैसे व्याध बच्चोंके सामने पक्षीको मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना ।

६ पूजनीय देवा, आज हमारे सामने आओ । मैं डर डर तुम्हारे तद्व्यावस्थित आश्रयको प्राप्त करूँ । देवी, वृकक हाथसे मारे जानेसे हमें बचाओ । पूजनीयो, जो हमें आपदुर्म फेंक देता है, उसको हाथसे हमें बचाओ ।

माहं मघानां वरुणस्यैव भूमिद्वयं आविर्बभूवमपि ।

मा रायां राजनन्तुधमाः पश्यां उहन्तेम । प्रदधं सुवीर्यः ॥५॥

३० सूक्त । १—५ तकके इन्द्र, ६-५ सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सख्स्वती और इन्द्र, ९ के बृहस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्रके मरुद्गण देवता हैं ।

जगती और ऋषिः छन्दः ।

अतं देवाय कृण्वते आविष इन्द्रः र हिमं न रमन्त आषः ।

अहर्हृदन्तिस्तुः परां किमपि प्रथमः कर्म आसाम ॥१॥

यो वृत्राय स्निमव्रामोरप्यतु प्र तं जानत्रा चिदुष उवाचः ।

पथा रक्षन्तामनुजोपमस्मं द्विर्दिदं धनया यन्धधम् ॥२॥

ऊर्ध्वो ह्यस्यादभ्यन्तरिक्षं ध्रुवः वृत्राय प्र बभूव जगाम ।

मिहं वसान उपतीमदुदुर्गतिमापुत्राः बलथच्छत्रं मिन्द्रः ॥३॥

बृहस्पते ननुयश्चरं विष्य वृकद्वन्तो अमुरस्य वीरान ।

यथा जघन्य वृषणा पुं निदिश जहि शत्रु मस्माकामन्द्र ॥४॥

० वरुण, मुझे किसी वन और प्रभुत्व इन्हींमें जगती जगती और इन्द्र की बात न कहनी पड़े । राजन, मुझे नियमित या आवश्यक वनका भ्रम न हो । इस पुत्र और वीरवाने होकर इस यज्ञमें प्रभूत्व स्थापित करेंगे ।

१ वृष्टिकारी, धृतिमान्, स्वर्ग के रक्षक और पुत्र-प्राप्त के इन्द्रके यज्ञके लिये कर्मों को जल नहीं रुकता, उसका खात प्रतिदिन चलता करता है । कर्मों के पक्षों पहली सृष्टि हो गई ।

२ जो जन्म वर्णनके वृत्रका अन्त भक्षण किया था, उसको पान माता आदिने इन्द्रमें कह दी था । इन्द्रकी इच्छाके अनुसार नदियाँ, अपना मार्ग बनायी हुई, प्रतिदिन समुद्रकी ओर जाती हैं ।

३ चूँकि अन्तरीक्षमें इन्द्रके वृत्रने सार पदार्थों का भक्षण कर, इसलिये इन्द्रने उसके उपर वृत्र पंका । वृष्टि-प्रद मेघने आच्छादित होकर वृत्र इन्द्रके सामने दीड़ा था । उसी समय ताज्ज्यायुधवाणी इन्द्रने उसको पराजित किया था ।

४ बृहस्पति, वृत्रके सामने दक्षिण पक्ष के दुर्गम पक्ष के पुत्रोंका देदी । इन्द्र, जैसे प्राचीन समयमें तुमने शक्ति द्वारा शत्रुओंको जीता था, उन्हीं प्रकार इस समय हमारे शत्रुओंका विनाश करो ।



अवश्वद दिवा अश्मानमुच्चा येन शत्रं मन्दसानो निजूर्वा ।  
 तोक्षस्य स्वातो तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुताविन्द्र गोताम् ॥५॥  
 प्र हि क्रतुं बृहथा यं वसुधा रघस्यस्था यजमानस्य चोदौ ।  
 इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टर्मास्मिन् भयस्य कृणुदभुलांकम् ॥६॥  
 न मा तमन्तश्मन्तोत तन्द्रन्त वांशाम मा सुनन्तेति सांमम् ।  
 यो मे पृणाया ददयो निबोधायो मा सुन्वन्ममुप गोमिरायन् ॥७॥  
 सगस्वति न्यमस्माँ अविडहि मरुस्वना भृपनी जेषि शत्रून् ।  
 त्यं निच्छर्धन्तं तविपीषमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभ शविडकानाम् ॥८॥  
 यो नः सनुत्य उत वा जिघत्स्वमिष्याय तं तिगितेन विध्य ।  
 बृहस्पत आयुधेर्जपि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन् ॥९॥  
 अस्माकेभिः सन्धभिः शशूरैर्वीर्यं कृषि यानि ते कर्त्यानि ।  
 ज्योगभूवन्ननुभूषितासो हतवी तेषामाभरा ना वसूनि ॥१०॥

५ इन्द्र, तुम उपर रहते हो । अश्मानोप ऊपर परनेपर सुमन जिसका दुबारा शत्रुका विनाश किया था, वही पक्षकी तरह कटित वज्र धनुर्कोसे निकालि सुवर्णका । जिससे उस लोह अष्टष्ट पुत्र, पौत्र और गोघन प्राप्त कर सकें, वसी ही इधे तुम समृद्धि हो ।

६ इन्द्र और सोम, जिसका हम भोग्य करे । हम द्वयोको उन्मूलित करो । यजमानोंको शत्रुओंके विरुद्ध प्रेरित करा । इन्द्र और सोम, तुम मेरा रक्षा करो । हम यजस्थानमें भय-शुभ स्थान बनाओ ।

७ इन्द्र मुझे कृपा न द, अरु न कर, लाजसी न कराए । इस कमी यह न कहे कि, सोमाभिषेच न करो । इन्द्र मेरी अभिलाषा पूरा करने, दमोष्ट हान करते, यज्ञको जानते और गो-समुह लेकर अभिषेच-कृतिक पास उपस्थित होते हैं ।

८ मरुद्वती, तुम हमें बच आ । मरुतोंके साथ बृहद्वे हाकर दृढ़ता-पूर्वक शत्रुओंको जीतो । इन्द्रने शूराभिमानों और स्पृष्टावान् शमिडोर्ध्व प्रघात ( शयडःसर्व ) को मारा था ।

९ बृहस्पति, जो अन्नाहित शय्ये छिपकर हमारा प्राण-नाश करनेका अभिलाषी है, उसे खोजकर तीखे हथिहारसे छेदो । आयुधसे हमारे शत्रुओंको जीतो । राजा बृहस्पति, दोहकारियोंके विरुद्ध प्राण-नाशक वज्र चारो ओर फेंको ।

१० शूर इन्द्र हमारे शत्रु-इन्द्रा वारोंके साथ अपने सन्ध दतीय वीर-कार्योंको सम्पन्न करो । हमारे शत्रु, बहुत दिनोंसे गर्वपूर्ण हो रहे हैं । उनका विनाश कर उनका धन हमें दो ।

तं वः शर्धं मारुतं सुस्रुग्याणां पुत्रं नमसा देव्यं जन्म ।  
यथा रथि सज्जनीर नशामहा अपत्यसक्तं श्रुत्यं दिव्येन्दवे ॥ ११ ॥

—००००००००—

३१ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
अस्माकं मित्रावरुणां तं रथमादित्यैश्चैर्धसुभिः सन्नाभुषा ।  
प्र यद्वयो न पृथग्वस्मदस्पांश्च श्रवस्पांश्च हृषीयन्ता वनपद्मः ॥ १ ॥  
अथ्यमान उदवना सज्जोपसा रथं देवासा अभिर्वाक्षु राजमुप ।  
महाशवः पशामिस्तिवता रजः पृथिव्याः सानी जहुनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥  
वनस्प न रन्द्रो विश्वचर्पणिद्विः शर्धेन मारुतेन सूक्तनुः ।  
अनु त्व स्थान्यवृक्षाभिरुतिमोरथं मते सनये वाजसालये ॥ ३ ॥  
उतस्य देवा भुवनस्य सश्रणिस्त्वष्टा प्राभिः सज्जोषा जनुवद्रथम् ।  
इला भगो बृहद्वीत रोदसी पूषा पुनश्चिद्विवावधायनी ॥ ४ ॥  
उत त्वं देवी सुभगे मिथूदशोपासनतां जगतामपीजुषा ।  
पुत्र यहा पृथिवि नव्यसा जन्म स्यादुश्च वयस्त्रियया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

११ मन्त्रों, इस सूक्त में अग्नि-आयुधों सुभि और नव्यसा द्वारा तुम्हारे देव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बल-ही स्तुति करते हैं, ताकि हमके द्वारा हम प्राप्त दिव्य चीज अपत्यवाले हाकर प्रकसनीय जनका उपयोग कर सकें ।

१ जिस समय हमारा रथ जन्माभिलाषी, मद्मत्त और वन-विषयण पक्षियोंकी तरह निवास-स्थानसे दूरे स्थानको जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ मिलकर उसको रक्षा करते हो ।

२ समान प्रतिभाग्य देवा, इस समय हमारे रथको रक्षा करो । यह अन्न स्वाजनेके लिये देहमें गया है । इस रथमें जाते हुए खाँके कदमसे मार्ग से करते और विश्वोर्ण भूमिके लज्जन प्रवेश-आगत करते हैं ।

३ अथवा—सर्वेश्वरी इन्द्र—तुम्हारे पराक्रमसे एक पराक्रमी करके, मार्ग-मार्ग आते हुए, हिंसा-शून्य लाभ्यके द्वारा नष्टाश्रम और अन्न-प्राप्तिके लिये हमारे रथको अनुकूल हो ।

४ अथवा—संसारके मेघनीय बहु स्वरूप देव, देवपतिवर्ग आद्य, पवित्रयुक्त मार्ग हमारे रथको चलावे । इला, महादीर्घमान भग, वावापुत्र्यो, बहुधी पूषा और सूर्यादि स्यामा दानो नमिनीकुम्भ हमारा यह रथ चलावे ।

५ अथवा—प्रसिद्ध, युतिमयी, सुभगा, परस्पर-दक्षता और जीवनीय कर्तव्यता तथा और राति हमारा रथ चलावे । हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनोंकी, नव स्यागने स्तुति करवा हूँ । स्यावत यदि आदि अन्न देता हूँ । ओषध, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकारके अन्न हैं ।

उत नः शशमुनि भगिण्ड एव हित्व धन्याज प्रकः दुःख ।

१७ - ऋभुक्षाः नान्त, जना दधपान्नपादाशहेमा विद्या शानि ॥ ६ ॥

पता वा अश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्त यदा नव्यसंसम् ।

श्रवस्यवो वाजं चक्रानाः सतिर्न रथ्यो अहधीतिमश्याः ॥ ७ ॥



३२ सूक्त । १ के छावापृथिवी, २—३ के इन्द्र, ४—५ के राक्षा, ६—७ के

सिनीवाली और ८ के छ देवियाँ देवता हैं ।

अनुष्टुप् और जगदी लन्द ।

अस्य मे द्वावापृथिवी वायतां भुतमवित्री ब्रह्मः स्मिन् सतः ।

ययोनायः प्रहसन्तं इदं पञ्च जगत्तुल्यं तस्मै युवांसोऽयं ॥ ३ ॥

या नो गृह्या रिण कालोऽवन्तुनमान आचर्य रीतिना दुच्छनुमयः ।

मानाविधौ मुख्या रिति नान्यः ॥ सुभाषितः पञ्चमा तत्त्वमहं ॥ २ ॥

सहोदरा मनसा अष्टिमान् पुत्रान् पौत्रं पितामहस्य ।

एवमपि राजं वन्दन्त न च तत्रान्नं हन्ति । त्रीणि पक्वहन् विह ॥ ३ ॥

इ देवगण, तुम हमारी स्तुतिकी इच्छा करो। एक तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। अन्नपरीक्ष-जात अहि देवता (अहिर्बुध्नः), सूर्य (आत पक्षपात), जिन, उदयिवाय हन्ता (राक्षस)। और यशिता हमें कनक प्रदान करें। शीघ्रयामी जल-तपता (अग्नि) हमारी स्तुतिमें प्रसन्न हो।

७ यज्ञीय विश्वदेवगण, हम मनुष्या की प्रति प्रति की श्रद्धा रखते हैं। हम सर्वोपेक्षा स्तुति-योग्य हैं। अन्न और बलके अभिलाषी मनुष्यों के हस्तों में हम स्तुति योग्य हैं। आपके आचर्य की श्रद्धा हमारा बल हमारा लिये लावे।

[illegible]

इसलिए, शत्रु को मुहम्मद का नाम लेकर आगे बढ़ने से रोकना ही हमारे लिए सबसे बड़ा काम है। हमें शत्रु सेना के वश में नहीं करना। हमारी मैत्री नहीं हथौता। हमारे पास एक ही धारणा है कि हमारा इस्लाम हमें हमारे इस्लाम के प्रति स्थायी करता है। हमारे पास हम यही कामना करते हैं।

२ इन्द्र, इसमें चित्तों से सबकरी, दुःखवली, मोटा और मजबूत गायक से आता। इन्द्र, तुम्हें सब बुलाते हैं। हम बहुत जोर चलते हैं। हम ब्रह्मभाषी हैं। मैं दिव-राज तुम्हारी स्तुति करता हूँ।



श्रेष्ठो ज्ञातस्य रुद्रः श्रियांसि तवस्त्वमस्त्वसं वज्रवाह ।  
 पापिणः पारमहंसः स्वान्त दिव्या अर्धातीरपमो युगोपि ॥ ३ ॥  
 माता रुद्रं चुकृतमां सतीभिर्मां दुष्टुमी तपसा मां महती ।  
 उन्नो वीर्यं अपेयं भेषजं भिक्षुपत्रं स्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥  
 हवीमभिर्हवने यो हविर्भिरव स्तोमोमी रुद्रं दिवीय ।  
 ऋदुदरः सुतवा मा नां अयं वधुः सुशिषां गोरधन्यताये ॥ ५ ॥  
 उन्मा ममन्द वृषभा मरुत्वान्त्वश्रीयसा वयसा नाभसानम ।  
 पृष्णीचक्षुशामरणा अशीया विवामेयं रुद्रस्य सन्नम ॥ ६ ॥  
 कस्य ते रुद्र मृत्युकृत्स्वो यो अस्ति भेषजां जलाषा ।  
 आपमर्ता रक्षो वेत्यस्याभो नृ पा वृषभा लक्षणीयाः ॥ ७ ॥  
 प्र वध्रवं वृषभाय दिवनीचं महो मां रुद्रं निमीरयामि ।  
 नमस्वो इन्मनीकितं नमोमिमृ नामसि त्वयं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥  
 स्थिरं भिरङ्गीः पुरुषस्य उदा पञ्च शृङ्ग मिः पार्श्वे निरुहो  
 ईशानादस्य भवतस्य भूर्जं तारयोपदं द्वातलयमं ॥ ९ ॥

३ रुद्र, ऐश्वर्यमें तुम सबसे ऊँच हो। ते ब्रह्मरूप, तुम्हें दुस शक्ति प्रकट है। तब पापन उस पाप में चले  
हमारे पास पाप न आने पाव।

[illegible]

५ जो सद्व्यवहार करनेवाले हैं, वे ही भगवान् के पास जायेंगे।

लोदर, शोभन आह्वानवाली, अर्थात् (सारी) जगत् में फैली हुई है।

६ में प्रार्थना करता हूँ कि, संसद के सभी सदस्य इस प्रस्ताव को समर्थन देकर जितने धनका माग मनुष्य कल्याणको आहित करता है, वही हम में से प्रत्येक एक व्यक्ति को सच मानना चाहिये। मैं स्वयं ही वाच्यता करूँगा।

७ अथ, तुम्हारा वह अपराध काय कष्टों से, पिता से दूर रहना, अथवा अन्धकार, पायी करते हो। असाष्टवर्ग  
रुद्र, देव-पापके विधातक होकर तब मुझ क्षण क्षण कर

[illegible]

६ दृढाङ्ग, बहुरूप, उग्र और अज्ञान के अन्तर्गत अज्ञान के अन्तर्गत स्थित हैं। दृढ़ सामे भुवनोक्त अधिपति और भक्त हैं। इनका अन्त अन्तर्गत ही होता है।

अहं नमोऽपि साधकानि धन्यतन्निष्कं यजते विश्वरूपम् ।  
 अहो नमोऽद्योऽपि विश्वरूपं न वा आहोया रुद्र रुद्रस्मि ॥१०॥  
 सृष्टिं प्रव नतसदं युवानं सृष्टं न साधुगुणान्मुपमम् ।  
 सृष्टा जाग्रत रुद्रस्त्वानाद्य नै लस्मान्निगमन् संताः ॥११॥  
 कुमारश्चैव पितर वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रा पयन्तम् ।  
 भूरेदीताय स्तुपाति गुणान् स्तुतस्त्वं भयजा गन्धस्मे ॥१२॥  
 या वा भयजा मरुतः श्रुतानि या शन्तमा नृपणा या मयोभु ।  
 याति मनुगुणाना पिता नरुता शं न योश्च रुद्रस्य वशिम् ॥१३॥  
 परि णो देता रुद्रस्य वृज्या परि स्वपस्य युर्मतिर्मही गान्  
 अवीक्ष्यता मधवद्वयस्तनुषा साद्वस्तोकाय ननयाय मूल ॥१४॥  
 एव वभ्रा नृपम चाकितान यथा देव न हृणाप न होंस  
 हवनश्रुन्ता रुद्र ह वोधि बृहददेम विदथ सुवीराः ॥१५॥



२० पूजायोग्य रुद्र, तम प्रार्थना के हैं । पूजते, तम नाना कर्पायाने हैं और पूजनीय निष्कको धारण किया है । अर्चनाएं, तम भार व्यापक स्वरूपों रक्षा करते हैं । तमारा भयजन अधिक बली दोते नहीं है ।

११ हे स्तोता, विश्वरूप भय प्रति युवा, युवाको यह भयजन और भयार्थक विनाशक तथा उग्र रुद्रकी स्तुति करो । रुद्र, स्तुति करनेपर तम हरे भयान्तरों हैं । तमारा यम रुद्र का विनाश करे ।

१२ जैसे आशीर्वाद तम समय विनाशो पुत्र परस्परतः बनता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आनेके समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । रुद्र, तुम वृषभदाता और साधुर्भक्त चालक हो । स्तुति करनेपर तम हरे आपधि देते हो ।

१३ मरुतो, तुम्हारे नानाभक्त आर्षाध है, हे प्रमाणदर्शक तुम्हारी न आर्षाधि अतीय सुखदात्री है, जिस आर्षाधिको हमारे पिता मनुगुणाना य प्रदा धनदत्त और भयार्थक आर्षाध हम चाहते हैं ।

१४ रुद्रका हेमि-आयुष शन जादू की दीप रुद्रका मरुतो पुनर्ति गये हरे छोटे हैं । मेवन-समर्थ रुद्र, धनवान् यजमानके प्रति अपने धनुषका जय शिखर प्रकाश हुआर पुनर्ति और गोशोको सुनो करो ।

१५ अभीष्टपूर्वी, वभ्रा शान्ति, शीतमान, सर्वज्ञ योग्य तम आहवन्, कानेकाने रुद्र, हमारे लिए तुम यहाँ पेनी विवेचना करो कि, हमारे उग्र, बली वृद्ध न हो । नै वाने विष्ट न करो । हम पुत्र और पौत्रवासे होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेगे ।

३ : सूक्त । मरुद्गण देवता । जगतः और त्रिष्टुप् छन्दः ।  
 धाराधरा मरुतो धृष्टवाजसो मृगा न भीष्मास्तविषोभिर्गच्छन्तः ।  
 अग्रयो न शुशुचाना अजीपिणो भूमि धमन्तो अप या अकृण्वन् ॥१॥  
 द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त स्वादिनो व्यभ्रिया न स्युतयन्त वृष्टयः ।  
 रुदो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसां वृषाजनि वृष्ट्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥  
 उन्नन्तं अश्वान् अन्यान् इवाजिप् नदस्य कर्णं स्तुग्यन्त आशुभिः ।  
 हिरण्यशिप्रा मरुतो दक्षिध्वजः पृक्षं याधपृषतीभिः समन्यवः ॥३॥  
 पृक्ष ना विश्वा भुवना त्वक्षिर्ग मिश्राय या सदमा जीमदानवः ।  
 पृषवश्वासो अनवभ्राघस ऋजिप्यानां न ज्युनेप् धूपदः ॥४॥  
 इध्वन्वभिर्धनुभी रप्सादूर्ध्वभिर्वक्षस्यभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।  
 आ हंसासो न स्वसराणि गन्त न मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥  
 आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवः नरां न शंसः स्वनानि गन्तन ।  
 अश्वामिद पिप्यन् धेनुमूधनि कर्ता धिर्यं जरितं वाजपेशस्तम ॥६॥

१ जलधाराले मरुत लोग आकाशको छिटा लेते हैं । उनका बल वृष्णदेव पराजित करता है । वह पशुकी तरह भयंकर हैं । वे बल दुबारा संसारको व्याप्त कर लेते हैं । वे वहिबी तरह हीमिमान् और जलमे परिपूर्ण हैं । ये अमणकत्तं मेघको इधर-उधर भेजकर जलको गिराते हैं ।

२ छवर्णहृदय मरुतो, चूँकि मेघन-समर्थ होने प्रसन्न । रिमिल उदरमें दुग्ध उत्पन्न किया है; इसलिए, उक्त आकाश नक्षत्रोंसे छायाभित होता है, वेसे ही, तुम भी अपने आभरणसे छायाभित होओ । तुम शत्रु-भक्षक और जल-प्रेरक हो । तुम मेघरूप विद्युत्तुको तरह शोभित होओ ।

३ तुममें शत्रुकी तरह मरुद्गण विशाल भुवनको पार करते हैं । वे धीरे-धीरे चढ़कर शब्दायमान मेघके कानके पाससे होकर द्रुत वेगसे जाते हैं । मरुता, तुम हिरण्य-क्षरस्त्राणशाले और समान-क्रोधवाले हो । तुम वृक्ष आदि कम्पित करते हो । तुम पृषती ( बिन्दु-चिह्नित ) मृगपर चढ़कर अन्नके लिए जाते हो ।

४ मरुद्गण मित्रकी तरह, हव्ययुक्त यजमानके लिये, सर्वदा समस्त जल उठाते हैं । वे दानशील, पृषती-मृग वाले, अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्वकी तरह पथिकोंके आग जाते हैं ।

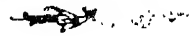
५ हे समान-क्रोध और शीतमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हम अपने निवास-स्थानपर जाता है, वेसे ही तुम भी महाजलस्रोतवाले मेघोंके साथ और धनु-युक्त होकर विज-शून्य मार्गमें, मधुर सोम-रसमे हृत्पन्न हर्ष-काभके लिये, आओ ।

६ हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्तोत्रमे आते हो, वेसे ही हमारे अभिपूज्य अन्नके पास आओ । घोड़ीकी तरह गायका अघोर्देश पुष्ट करो और यजमानका यज्ञ अन्नवाला करा ।





तां द्युतां महि बहूनाम्नः स्पर्शदत्ता नमसा गृणीमसि ।  
 त्रिना न यान पृथ्वीतलमप्यु० अग्रेतद्वाराश्वक्रियावसे ॥ १४ ॥  
 यथाग्रे पारयथात्यं हो यथा निदा मुञ्चथ चन्दितारम् ।  
 अर्वाचो सा मरुता या व ऊतिरोषु वाश्रं व सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥



१४ सूक्त । अपां नपात् देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।  
 उपेमस्तुति वाजयुवचस्यां चनो द्युतां नाद्या गिरा मे ।  
 अपां नपादाशुहेमा कुचित् स सुपेशसस्करति अपिपिद्धि ॥ १ ॥  
 इमं स्वर्गमेतद् आसुनष्टं मन्त्रं वोच्यते कुचितस्य वेदत् ।  
 अपां नपात्सूर्यस्य मह्यः विश्वान्यस्यां युवता अजान ॥ २ ॥  
 समन्वाधन्तयुपुपुन्यस्याः सप्तमस्तुतिं नरा पृणन्ति ।  
 तमुगुचि युवतो दीर्घांसमपां नपात् पारतरुपुपुः ॥ ३ ॥  
 तमस्मैरा युवतयो युवानं मसृज्यमानाः परियन्त्यपः ।  
 मशुकमिः शिकमीरेवदस्मै दादायानिधमा वृत्तिर्निर्णयस्तु ॥ ४ ॥

१४ मरुतोमे वरणीय एतको वायव्य करते हैं, अर्वाचो अर्वाचो जल, अर्वाचो द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं ।  
 अमीष्ट-सिद्धि के लिये, त्रिष्टुप् द्वारा, त्रिष्टुप् छन्दः द्वारा, अजान, समान, वरुण और अर्वाचो पाँच हीनाओं (मरुतो) को आवृत्ति करते हैं ।

१५ मरुता, तम त्रिष्टुप् अर्वाचो वायव्य करते हैं, अर्वाचो द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं, अर्वाचो द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं, अर्वाचो द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं ।

१ मैं अन्नकी इच्छा है इस स्तुति को उच्चारण करता हूँ । अर्वाचो और अर्वाचो अपा नपात् (जल-पौत्र अग्नि) नामके देवता हमें दत्ता अन्न और अन्न के रूप में उनकी स्तुति करना है । वह स्तुतिको पसन्द करते हैं ।

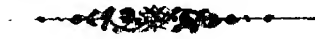
२ उनके लिये हम दत्तों को दत्त इस मीठा अन्न तद् उच्चारण को गेद वह हमें बार-बार जान । स्वामी अपां नपात्ने शत्रु-क्षपणकारी अर्वाचो समस्त युवतको उपस्थित करता है ।

३ कोई-कोई जल इच्छा होता है, अन्न स्थाय कृता, मित्रता है । वह अन्न समुद्र के बबबानल को प्रसन्न करते हैं ।  
 विशुद्ध जल निर्मल और दीर्घाना अपां नपात् नामके देवताओं द्वारा और देकर रहता है ।

४ उपरहित युवतो जल-संश्लि, युवाको नरक, अपां नपात् देवता को अर्वाचो और परिप्रेषित करती है । इन्धन-रहित और धूल-पूत अपां नपात् हमारे धनवासे अन्नकी उत्पत्तिके लिये जलके बाध निर्मल तेजो बलसे दीप्त है ।



अस्मै बहूनामनामाय सरस्ये यज्ञैर्विधेय नमसा हविभि ।  
 संस्तानुमाजिमे दिक्षिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परिवन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥  
 स ईं वृषाजतयत्तासुगभं स ईं शिशुर्धर्षति तं रिहन्ति ।  
 सो अपां नपादन्मि म्लातवर्णोन्यस्येवेह तन्वा बिबेप ॥ १३ ॥  
 अस्मिन् पदै परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीर्घांसम् ।  
 आपोनप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परिदोषन्ति यहीः ॥ १४ ॥  
 अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायाशांसमुमितिमघ वज्रयः सुवृक्तिं ।  
 विश्वं वज्रदं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदधं सुवीर्यः ॥ १५ ॥



३६ सूक्त । १ के इन्द्र २ और मधु, के मरुद्गण और माध्व, ३ के त्वष्टा और  
 शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नभ तथा  
 ६ मंत्रके नमस्स्य देवता हैं । जगती छन्द ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपोधुक्षन्त सीम विभिरद्विभिर्नरः ।

पिवेन्द्र स्वाहा प्रहृतं वषट्कृतं होत्रादासोभं प्रथमोय ईशिपे ॥ १ ॥

१२ अपने मित और बहुत देवोंके आति अर्थात् नपात देवताकी, यज्ञ इन्द्र और नमस्कार द्वारा, हम परिचया  
 करेंगे । मैं उनके उन्नत प्रदेशको सली भोगि अर्द्धकृत करूंगा । मैं काष्ठ और अन्न द्वारा उनको धारण करता और  
 मंत्र द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ ।

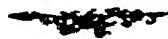
१३ सेवन-ममथे उन अर्थात् नपात्ने इस बार जलके तीन गमं ग्रहण करने किया है । वही कभी पुत्ररूप होकर जल  
 पीते हैं । सारे जल उन्हींको चारता है । दीप्तियुक्त वही स्वर्गीय अग्नि हम पृथिवीपर अन्य शरीरसे व्याप्त है ।

१४ अपां नपात् उरकृष्ट इत्यर्थमें उद्धृत हैं । यह नपात देवता प्रविष्टि दीप्तियुक्त हैं । महान् जल-समूह उनके  
 लिये अन्न होते हुए सत्त्व गति द्वारा उरकृष्ट निम्ने हुए हैं ।

१५ अस्मिन्, तुम होस्वर्गीय हो । पद-नमस्स्य इत्यर्थ में नमस्कार प्राप्त आया हूँ । यजमानके हितके लिये धरचित  
 स्तुति लेकर आया हूँ । सर्वस्त देवताओं को नमस्कार करने में, जल सब प्रसार हो, पशु और पौधवाले होकर हम इस  
 यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सब ।

१ इन्द्र, तुम्हारे हृद्येयसे प्रेरित यह सोम गव्य और जलसे युक्त है । यज्ञके नेता लोग इस सोमको प्रस्तरखण्ड  
 द्वारा आभूषित करके मेघ-लोममय दशापात द्वारा इसे संस्कृत करते हैं । इन्द्र, तुम सारे संसारके ईश्वर हो । सारे  
 देवोंके प्रथम स्वाहाकारमें अग्निमें अक्षिप्त और वषट्कार द्वारा स्वर्ग सोम होताके पाससे पान करो ।

यज्ञैः सम्मिश्रता पृथ्वीमिहृष्टिभिर्म्यामञ्छुभ्रासो अङ्गिषुप्रिया उत ।  
 आसद्या बहिर्भरतस्य सूनवः पोत्राद्भासोमं पिबतादितो नरः ॥ २ ॥  
 अमेवनः सुहृदा आहिगन्तानि बहिर्हिपि सवतनारणिष्ठन ।  
 अथामन्स्व जुजुषाणो अश्वसस्त्वष्टर्ध्वेभिर्जनिभिः सुमङ्गणः ॥ ३ ॥  
 आवक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशनहोतर्निषदा योनिषु त्विप ।  
 प्रतिधीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाम्नीध्रात्तव भागस्य तृप्नुहि ॥ ४ ॥  
 एषस्य ते तन्वो नृग्नवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्योर्हितः ।  
 तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादातृपत् पिब ॥ ५ ॥  
 जुपेयां यज्ञं बाधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्या अनु ।  
 अच्छा राजाना नम एतवावृतं प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥



२ यज्ञके साथ संयुक्त, पृथ्वीयोजित रथपर अवस्थित, अपने आयुधसे शोभित, आमरण-प्रिय, भरत वा पदके पुत्र और अन्तरीक्षके नेता मरुतो, तुम कुशपर घेठकर पोताके पाससे सोम पान करो ।

३ शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुशपर घेठो और विहार करो । अनन्तर हे स्वष्टा, तुम देवों और देवपत्नियोंके शोभनीय ठलके साथ अन्नकी सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो ।

४ मेधावी अङ्गि, इस यज्ञमें देवोंको बुलाओ और उनके लिये ब्रह्म करो । देवोंके आह्वानकारी अङ्गि, तुम हमारे हृदयके अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदिके तीनों स्थानोंपर घेठो । होमके लिये तत्पर वेदीपर लाये हुए सोम-रूप मधु स्वीकार करो । जग्नीध्रके पाससे सोमपान करो और अपने अंशमें तृप्त होओ ।

५ धनवान् इन्द्र, तुम प्राचीन हो । जिस सोम द्वारा तुम्हारे हाथमें अश्व-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही तुम्हारे लिये अमिषुत और आहूत हुआ है । तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक्के पाससे सोम पान करो ।

६ हे मितावर्ण, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो । होता घेठकर चिरन्तनी स्तुतिका उच्चारण करते हैं । तुम हमारा आह्वान सुनो ; तुम शोभावाले हो । ऋत्विकों द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है । इस मधुर सोमरसका, प्रशान्ताके पाससे, पान करो ।

## सप्तम अध्याय समाप्त

## अष्टम अध्याय



३७ सूक्त । १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ मंत्रके

देवता अग्नि हैं । जगती छन्द ।

मन्दस्व होत्रादनुजोषमन्धसोऽध्वर्यवः सपूर्णां वष्टयास्त्रिचम् ।

तस्मा एतं भरत तदृशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१॥

यसु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्योनामपत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोमं मधुपोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२॥

मेघन्तु ते वह्नयोः येभिरीयसेरिषण्यन्वीलयस्वा वनस्पते ।

आयुया धृष्णो अभिगूष्ठा त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३॥

अपाद्भोत्रादुतपोत्रादमत्तोत्त नेष्ट्रादजुषत प्रथो हितम् ।

तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्य द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४॥

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं च गुञ्जाथामिहवां विमोचनम् ।

पृक्तं दवीरिपि मधुनादिकं नतमथास्मामं पिबतं वाजिनोवम् ॥५॥

१ हे द्रविणोदा वा घनप्रिय अग्नि, होत्र-कृत यज्ञमें अन्न ग्रहण करके प्रमन्न और दृष्ट बनो । अध्वर्युगण, द्रविणोदा पूर्णाहुति चाहते हैं, इसलिये उनके लिये यह सोम प्रदान करो । सोमाभिलाषी द्रविणोदा अभीष्ट फल देनेवाले हैं । द्रविणोदा, होताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

२ हमने पहले जिसको बुलाया है, इस समय भी उन्हींको बुलाते हैं । वह महत्त्वान-योग्य हैं, क्योंकि वह दाता और सबके अविपति हैं । उनके लिये अध्वर्युओं द्वारा सोम-रूप मधु तैयार किया गया है । द्रविणोदा, पोताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

३ द्रविणोदा, तूम जिस अवसर जाते हो, वह शूत हो । वनस्पति, किसीकी हिंसा न करके दृढ़ होओ । वर्षणकारी, नेष्ट्राके यज्ञमें आकर ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

४ द्रविणोदा, जिन्होंने होताके यज्ञमें सोम पान किया है, जो पिताके यज्ञमें दृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्ट्राके यज्ञमें प्रदत्त अन्न भक्षण किया है, वही सुवर्ण-दाता ऋतुवत्क अशायित और मृत्यु-निवारक अर्थात् सोम-पात्रका पान करें ।

५ अश्विनीकुमारों, जो रथ श्रीघ्रगामो, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थानपर तुम्हें उतार देनेवाला है, आज इसी रथको इस यज्ञमें हमारे सामने योजित करो । हमारा दृष्ट्य सुस्वादु करो और यहाँ आओ । अन्नवाले अश्विद्वय, हमारा सोम पान करो ।

जं पृथग् सार्धं ज्ञाप्याहुनि ज्योति प्रव्रजयं ज्योति सुष्टुतिम् ।  
दृष्ट्वेमि विश्वा ऋतुना वसा मह उरन्देवा उशतः पायया हविः ॥१॥



३८ सूक्त । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

उदुष्य देवः सविता सवाय शश्वन्नमं तद्वा बहूनिरस्थात् ।  
नूनं देवेभ्यो विहिधाति रत्नमथामजद्रीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥  
विश्वस्य हि त्रुष्ट्ये देव ऊर्ध्वः प्रबाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।  
आर्षश्चदस्य व्रत आनिमुग्रा अयं चिद्रातो रमते परिज्मनः ॥२॥  
आशुभिश्चयान्विमुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।  
अह्यर्षाणां चिन्त्ययाँ अविष्यामनुव्रतं सवितुर्मोक्यामान् ॥३॥  
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तार्यश्चाच्छकम धीरः ।  
उरुसंतायास्थाद्वयूतूरर्ध्वररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥  
ननौर्कासि दुर्यो विश्वमायुवितिष्ठते प्रभवः शोको अग्रः ।  
ज्येष्ठं माना सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिपितं सविता ॥५॥

१ अग्निदेव, तम सन्निधा, आहुति, लोगोंके हितकर स्तात्र और सन्धर स्तुतिमें युक्त होओ । तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे इव्यके अभिलाषी होओ । हमारा इव्य चाहनेवाले मागे देवोंको, ऋषियों और विश्वदेवोंके साथ, सोम पान कराओ ।

२ प्रकाशक और जगदुवाहक सविता वा सूर्य, प्रसवके लिये, प्रति दिन उदित होते हैं । यही उसका कर्म है । वह स्तोत्राओंको रत्न देते और अन्धर यज्ञवाले यजमानको मंगलभागी बनाते हैं ।

३ प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्वके आगन्दके लिये, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं । उनके कार्यके लिये अतोव पात्र उलम्बर्ध प्रवाहिन हाना है और वायु भी सर्वताव्यापी अन्तरीक्षमें विहरण करता है ।

४ जाते-जाते जिस मध्य सविता शीघ्रगामी किर्णों द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वह निरन्तरगामी पथिकों भी विरत करते हैं । जो शत्रुके विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जानेकी इच्छाको भी निवृत्त करते हैं । सवितारके कर्मके अन्तर रात्रिक आगमन होता है ।

५ तस्मिन् बुननेवाली रमणीकी तरह रात्रि पुनः आकाशको, भलो भाँति, घेरन करती है । बुद्धिमान लोग जो कर्म करते हैं, वह करनेमें मग्ध होनेपर भी मध्य मार्गमें रत्न देती है । विशाम-रहित और अशुविभाग-कर्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या द्वाङ्गत हैं ।

६ अग्निके गृहमें स्थित पशु तेज यजमानके भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्नमें अधिष्ठित है । माता उबाने सविता द्वारा प्रेरित प्रजापक यज्ञका श्रेष्ठ भाग पुत्र अग्निको दान किया है ।

समाववति विष्टितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।  
 शशवाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनुव्रतं सवितुर्देव्यस्य ॥६॥  
 स्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वितरुधः ।  
 वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥  
 याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निर्मिषि जभुराणः ।  
 विश्वो मार्ताण्डो वज्रमापशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥  
 नयस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमान मिनन्ति रुद्रः ।  
 नापातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥  
 भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो ब्राह्मपतिर्नो अव्याः ।  
 आयेवामस्य सङ्गये रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥  
 अस्मभ्यं तद्विधो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राघ आगात् ।  
 शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युक्तांसाय सवितर्जस्त्रि ॥११॥



६ स्वर्गीय सविताके व्रतकी समाप्ति होनेपर जयाभिकाषी राजा, युद्ध-यात्रा कर चुकनेपर भी, लौट आता है। सारे जंगम पदार्थ घरकी अभिकावा करते और सदा कार्य-रत व्यक्ति अपने किये आधे कर्मको भी छोड़कर घरकी ओर कौलता है।

७ सविता, अन्तरीक्षमें तुमने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्तेषणकर्त्ता लोग चारो ओर डसे पाते हैं। तुमने पक्षिर्भेदि किये बुद्धोंका विभाग किया है। कोई भी सविताके कार्यकी हिंसा नहीं कर सकता।

८ सविताके अस्त होनेपर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थोंको छलकर, वाण्डनीय और सुगम वास-स्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतोंको स्थान-स्थानपर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय पक्षि-पक्षिगण भी अपने-अपने स्थानको जाते हैं।

९ इन्द्र जिसके व्रतकी हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, वज्रगण भी हिंसा नहीं करते, वन्हीं षुतिमान् सविताको कक्ष्याणके किये इस प्रकार नमस्कार द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१० जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देव-पत्नियोंके रक्षक हैं, वही सविता हमारी रक्षा करें। हम भक्त-नीय, बहुप्रशं और ध्यान-योग्य सविताको बलवान् करते हैं। हम धन और पशुकी प्राप्ति और संख्यके सम्बन्धमें सविताके प्रिय हों।

११ सविता, तुमने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह धूलोक, भूलोक और अन्तरीक्षलोक-से हमारे पास आये। जो धन स्तोताभेदि वंशजोंके किये शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि, मुझे वही धन दो।

३६ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रावाणेष्वतदिदं जरथेगृध्रैववृक्ष निधिमन्तमच्छ ।  
 ब्रह्माणेव विदथ उक्थशाखा दूतेव हव्या जन्या पुरुथा ॥१॥  
 प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।  
 मेने इव तन्वा शुभमाने दम्पतीव श्रुतुषिदा जनेषु ॥२॥  
 शृङ्गोवनः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जभुराणा तारोमिः ।  
 चक्रवाकेश प्रति वस्तोरुस्त्रार्वाञ्जायातं रथ्येव शका ॥३॥  
 नावेवनः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।  
 श्वानेव नो अरिपथ्या तनूनां खगलेव विस्त्रसः पातमस्मान् ॥४॥  
 वातेवाज्या नद्येवरीतिरक्षी इव चक्षपायातमर्वाक् ।  
 हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥  
 ओष्ठाविव मध्वास्त्रो वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।  
 नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

१ अश्विद्वय, शत्रु के प्रति प्रेरित प्रस्तर-खण्डद्वयकी तरह शत्रु की बाधा दो । जैसे दो पक्षी वृक्षपर आते हैं, वैसे ही तुम भी बजमानक निशट आओ । मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नामक श्रुतिवक् और देशमें दो दूतोंकी तरह तुम बहुतोंके बुलाने योग्य हो ।

२ अश्विद्वय, प्रातःकाल जानेवाले दो रथियोंकी तरह तुम वीर हो, दो झगाँकी तरह यमज हो, दो स्त्रियोंकी तरह सुन्दर शरीरवाले हो, दम्पतीकी तरह संगत और सबके कमेज्जाता हो । तुम दोनों भक्तके पास आओ ।

३ देवोंमें प्रथम अश्विद्वय, तुम पक्षुकी दोनों सींगों वा अथवा आदिके दोनों खुरोंकी तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ । शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिनमें चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जैसे शो रानी आते हैं, वैसे ही तुम हमारे सामने आओ ।

४ अश्विद्वय, नौकाकी तरह तुम हमें पार उतार दो । रथके युगकी तरह, रथचक्रके नाभि-फलककी तरह, उसके पारवन्ध फलककी तरह और चक्रके बाह्यदेशके बलयकी तरह हमें पार करा । दो कुक्करीकी तरह तुम हमारे शरीरको हिंसासे बचाओ । दो बर्मकी तरह तुम हमें जरासे बचाओ ।

५ अश्विद्वय, दो वायुओंकी तरह अक्षय, दो नदियोंका तरह शास्त्रगामी और दो मंत्रोंकी तरह दर्शक हो । तुम हमारे सामने आओ । तुम दोनों हाथों और पैरोंकी तरह शरीरक सुखदाता हो । तुम हमें अष्ट चक्रकी ओर ले जाओ ।

६ अश्विद्वय, दोनों ओंठोंकी तरह मधुर-वाक्यका लक्षणरूप करो, दोनों स्तनोंकी तरह, हमारे जीवन चारणके किये, दूध पिकाओ, दोनों नाकोंकी तरह हमारे शरीरक रक्षक होओ और दोनों कानोंकी तरह हमारे श्रोता होओ ।



हस्तेव शक्तिमभिसद्दी नः क्षामेव नः समज्जतं रज्जोसि ।  
 इमा गिरा अश्विना युष्मयन्तोः शृणोत्रेणेव स्वधिति संशिशीतम् ॥७॥  
 पतानि वामाश्वना वधेनानि ब्रह्मस्तोमं गृत्समदासो अकन् ।  
 तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विदध सुवीराः ॥८॥



४० सूक्त । सोम और पूषा देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 सोमापूपणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।  
 जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥  
 इमौ देवौ जायमानौ जुपन्तेमौ तमांसि गृहतामजुष्टा ।  
 आभ्यामिन्द्रः पक्रमामास्वन्तः सोमापूपभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२॥  
 सोमापूपणा रजसो विमानं सतचक्रं रयमविश्वमिन्वम् ।  
 विष्णुवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥  
 दिव्यन्यः सन्नं चक्र उच्च्रा पृथिव्याभ्यन्यो अध्यन्तरिक्षे ।  
 तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षं रायस्पोषं विष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

७ अश्वद्वय, दोनों हाथोंकी तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करो । चावः/पृथिवीको तरह हमें जल दो । अश्वद्वय, ये सब स्तुतियाँ तुम्हें चाहती हैं । तुम धान चढ़ानेके यंत्रके दुवाहा तलवारकी तरह उन्हें तीव्र करो ।

८ अश्वद्वय, गृत्समद ऋषिने तुम्हारी वृद्धिके लिये ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं । तुम नेता और अतीव प्रोतिवाले हो । तुम्हारे पास यह सब स्तुतियाँ आँ । हम पुत्र और पौधवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

१ सोम और पूषा, तुम घन, अलोक और पृथिवीके जनक हो । जन्मके अनन्तर ही तुम सारे संसारके रक्षक हुए हो । देवोंने तुम्हें अमरताका कारण बनाया है ।

२ जनम ही अतिमान् सोम और पूषाकी देवोंने सेवा की थी । ये दोनों अप्रिय अन्धकारका विनाश करते हैं । इनके साथ इन्द्रदेव सहगी धेनुओंके अधःप्रदेशमें एक दुग्ध उत्पन्न करते हैं ।

३ अमीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसारके विभाजक, सतचक्र ( सात श्रुत, मलमास लेकर ) वाले संसारके लिये अविभाज्य, सर्वत्र वर्तमान, और पंचरश्मि ( पाँच श्रुत, हेमन्त और शीतको एकमें करके ) वाले हो । इच्छा होते ही योजित रथ हमारे सामने प्रेरित करते हो ।

४ तुममें एक जन ( पूषा ) छन्नत अलोकमें रहते हैं । दूसरे ( सोम ) ओषधि-रूपमें पृथिवी और चन्द्र-रूपमें अन्तरिक्षमें रहते हैं । तुम दोनों अनेक लोगोंमें बरणाय, बहुकोर्त्तिष्वाकी हमारे भागका कारण और पशुरूप घन हमें दो ।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।  
 सोमापूषणा ववतं धियं मे युवाम्यां विश्वाः पृनना जये ॥५॥  
 धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्नो रयि सोमो रयिपतिर्दधातु ।  
 अवतु देव्यदितिग्नर्वा बृहद्वदेम विदधे सुवीरा ॥६॥



४१ सूक्त । १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१२ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ के सगरुवती और १९-२१ मन्त्रके देवता छावापृथिवी हैं ।

वाया ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्सोमपीतये ॥१॥  
 नियुत्वान् वायवागहायं शुको अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥  
 शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायु नियुत्वतः । आयातं पिबतं नरा ॥३॥  
 अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम श्रुतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥  
 राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे मदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥  
 ताः सम्राज्ञा घृतासुति आदित्यादानुनस्पती । सन्तेते अननह्वरम् ॥६॥  
 गोमदस्य नासन्वा शवावद्यातमश्विना । वर्तारुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

१ सोम और पूषा, तुममेंसे एक ( सोम ) ने और भूतार्का उत्पन्न किया है । दूसरे ( पूषा ) सारे संसारका पर्यवेक्षण कर जाते हैं । सोम और पूषा, तुम हमारे कर्मकी रक्षा करो । तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रु-सेनाकी जय कर डालें ।

२ संसारकी प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्मसे तृप्त प्राप्त करें । घनपति सोम हमें धन दान करें । धूमिमती और शत्रु-रहिता अर्दति हमारी रक्षा करें । हम पुत्र और पौत्रवान्त होकर इस यजमं प्रभूत स्तुति कर सकें ।

१ वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुतगणसे युक्त होकर सोम पानके लिये आओ ।

२ वायु, नियुतगणसे युक्त होकर आओ । तुमने दोसिमान सोम ग्रहण किया है । सोमाभिषेककारी यजमानके घरमें तुम जाते हो ।

३ नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुतगणसे युक्त होकर और सोमके लिये शाकर गव्य-मिला सोम पीओ ।

४ मित्रावरुण, तुम्हारे लिये यह सोम तैयार हुआ है । सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सुनो ।

५ शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थानपर बैठें ।

६ सम्राट्, घृतान्नभोजी, अर्दति-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरलगति यजमानकी सेवा करते हैं ।

७ अश्विद्वय, नामस्यद्वय, रुद्रद्वय, यज्ञके नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोमका धनु और अश्वसे युक्त करके तथा रथपर लेकर आओ ।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥  
 तान अत्रोद्वलमश्विना रथिं पिशङ्गसन्दूशम् धिष्ण्या वरिवोधिदम् ॥९॥  
 इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीपदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥  
 इन्द्रश्च मृलयाति नो ननः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवति नः पुरः ॥११॥  
 इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥  
 विश्वेदेवास आगत शृणुताम इमं हवम् । पदं बाहनिपीदत ॥१३॥  
 तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥  
 इन्द्रश्चेष्टा मरुद्गणा देवासः पूषरायतः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥  
 अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥  
 त्वे विश्वा सरस्वति ध्रितायूँपि देव्याम् । शुनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिविड्ढिनः ॥१७॥  
 इमा ब्रह्म सरस्वति जपस्व वाजिनीवति । या ते मनम गृत्समदा श्रुतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥  
 प्रेतां यज्ञस्य शम्भुश गुत्रामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

८ धनवर्षी अश्विद्वय, दूरस्थित वा समीपवर्ती मरुद्गणों मर्त्य रिपु जिस धनको नहीं चुरा सकता, उसे ही हमें दो ।

९ ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नानारूप और धन-प्राप्तक धन से आओ ।

१० इन्द्र अधिक और अभिभवकारी भयको दूर करते हैं । वह स्थिर और प्रज्ञावान् हैं ।

११ यदि इन्द्र हमें सुखी करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आवेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा ।

१२ प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारों ओरसे हमें भय-शून्य करें ।

१३ विश्वदेवगण, यहाँ आओ । हमारा आह्वान सुनो और कुशके ऊपर बैठो ।

१४ विश्वदेवगण, तीव्र मरुद्गण, रसशाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिये गृत्समद्वंशीयोंके पास है । इस सोमन सोमका पान करो ।

१५ जिन मरुतोंमें इन्द्र छेष्ट हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुद्गण हमारा आह्वान सुनें ।

१६ मातृ-गर्भमें छेष्ट, नदियोंमें छेष्ट और देवोंमें छेष्ट सरस्वती, हम द्रविष्ट हैं; हमें घनी करो ।

१७ सरस्वती, तुम घृतिमती हो । तुम्हारे आश्रयमें अन्न है । शुनहोत्रोंमें तुम सोम पान करके तृप्त होओ । देवी, तुम हमें पुत्र दो ।

१८ अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्यको स्वीकार करो । यह मननीय और देवोंके लिये प्रिय है । गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं ।

१९ यज्ञके सुख-सम्पादक धावापृथिवी, तुम आओ । हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । हम हव्यवाहन अग्निकी भी प्रार्थना करते हैं ।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्ममद्य दिविस्पृशाम् । यत्नं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

आ चामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥



४२ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कनिकदञ्जनुषं प्रमृवाण इत्यति बाचमरितेव नावम् ।

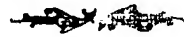
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिद्भिमा विश्व्या विदत् ॥१॥

मा त्वा श्येनः उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विदादिधुमान्वीरो अस्ता ।

पित्र्यामनुप्रदिश कनिकदत् सुङ्गलो भद्रवादी वदे ॥२॥

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥३॥



४३ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । जगती, मध्या, शक्ती और अष्टि छन्द ।

प्रक्षिणिदभिगृणन्ति काग्वो वया वदन्त ऋतुषा शकुन्तयः ।

उभे वाची वदन्ती सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥

० द्यावापृथिवी स्वर्ग आदिके साधक और देवोंके ओर जानेवाली हैं । हमारे इस यज्ञकी देवोंके पास ले जायें ।

२१ शत्रुता-हान्य द्यावापृथिवी, सोमपानके लिये यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठे ।

१ बाइबर शब्दायमान और अविष्यदवृत्ता कपिञ्जल, जैसे कर्णधार नौकाको परिचालित करता है, वैसे ही, भाकवको प्रेरित करता है । शकुनि, सम् कल्याण-सूचक होओ । किसी ओरमें किसी प्रकारकी पराजय तुम्हारे पास न आवे ।

२ शकुनि, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—गकद्व पक्षी भी न मारे । तब बलवान्, वीर और धनुर्धारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे । दक्षिण दिशामें बार-बार शब्द करके और सुमङ्गल-दांसी होकर हमारे लिये प्रियवादी बनो ।

३ शकुन्ता, सुमङ्गल-सूचक और प्रियवादी होकर चरकी दक्षिण दिशामें बोलो, ताकि चोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

१ समय-समयपर अश्वकी खोज करके स्तोताओंकी तरह शकुनिगण, प्रक्षिण करके, शब्द करें । वैसे सामगायक लोग गायत्री और त्रिष्टुप् ( दोनों साम ) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जल भी दोनों वाक्य उच्चारण करता और श्रोताओंको अनुरक्त करता है ।

उद्गातेव शकुने सामगायसि ब्रह्मपुत्रैव सवने, शंससि ।

वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद

विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥

आषदं स्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चाकद्धिनः ।

यदुत्पतन् बहसि कर्करिपथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



२ शकुनि, जैसे उद्गाता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ । यज्ञमें ब्रह्मपुत्र ऋत्विक्की तरह तुम शब्द करो । जैसे सेवन-समर्थ और आग्नीके पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो । शकुनि, तुम सर्वत्र हमारे लिये मंगल-सूचक और पुण्य-जनक शब्द करो ।

३ शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिये मंगल-सूचना करते हो । जिस समय घुप रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो । उड़नेके समय तुम कर्करि ( एक बाजा ) की तरह शब्द करते हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।



## द्वितीय मण्डल समाप्त



# तृतीय मण्डल



२ अष्टक । ३ मण्डल । ८ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । विश्वामित्र ऋषि । x त्रिष्टुप् छन्द ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यमे वह्निं चकथं विदथे यजध्वे ।  
देवाँ अच्छादीद्यध अं अद्रिं शमाये अमे तन्वं जुपस्व ॥१॥  
प्राञ्चं यज्ञं चकम वधतां गोः समिद्भिरग्निं नमसा तुवस्यन् ।  
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥  
मयाधधे मेधिरः पूतदक्षां दिवः सुवन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।  
अविन्दन्नुदर्शतमप्स्वन्तर्दवासो अग्निमपसि स्वसृणाम् ॥३॥  
अवधयन्त्सुभगं सप्तयज्ञीः श्वेतं अजानमरुपं महित्वा ।  
शिशुं न जातमभ्याकुरश्वा देवासो अग्निं जनिमग्वपुष्वन् ॥४॥

१ अग्निदेव, यज्ञ करनेके लिये तुमने मुझे सोमका वाहक किया है; इसलिये मुझे बलवान् करो । अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवोंको लक्ष्य कर, अग्निवज्रके लिये, पस्तरखण्ड ग्रहण और स्तव करता हूँ । अग्नि, तुम मेरे शरीरकी रक्षा करो ।

२ अग्नि हमने भली भर्ति यज्ञ किया है । हमारी स्तुति वर्द्धित हो । समिधा और इव्य द्वारा लोग अग्निकी परिचर्या करें । ध्रुलोकसे आकर देवोंने स्तोत्रार्थोंको स्तात्र मिलाया है । स्तोत्रागण स्तवनीय और प्रबुद्ध अग्निकी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं ।

३ जो मेधावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्मसे ही उन्कष्ट बन्धु हैं, जो ध्रुलोकका सुत्र-विधान करते हैं, वन्हीं दक्षनीय अग्निको, देवोंने, यज्ञ-कार्यके लिये, वहनशील नदियोंके जलके बीच, प्राप्त किया है ।

४ क्षीभन घनवासे, शुभ्र और अपनी महिमामें दोषिणाकी अग्निके उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियोंमें संवर्द्धित किया था । जैसे अश्वी नवजात शिशुके पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्निके पास गयी थीं । उत्पत्तिके साथ ही अग्निको देवोंने दीक्षितमान् किया ।

✽ इस मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशज हैं । पाचीन भारतके अनेक ऋषियोंकी तरह विश्वामित्र भी गुरुस्व और महान् ब्रह्मा थे । विश्वामित्र और उनके वंशजोंके साथ बलिष्ठ और उनके वंशजोंकी सभी प्रतिबुद्धिबलता थी ।

शुक्रेभिर्गङ्गा रज आतनन्वान् सृत्तं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।  
 शोचिर्वसानः पर्यायुखां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥१॥  
 वज्राजासीम नदीरद्वधा दिवो यहीरवसाना अनग्नाः ।  
 सना अत्र युवनयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्तवाणीः ॥६॥  
 स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवधे मधूनाम् ।  
 अस्थुरत्र धेनवः पितृवमाना महीदस्मस्य मातरा समीची ॥७॥  
 वज्राणः सूनो सहस्रो व्यघोद्धानः शुक्रा रभसा पूंषि ।  
 श्रोतन्ति धारा मधूनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काल्येन ॥८॥  
 पितुश्चिदूधर्जनुषा विबेद् व्यस्य धारा असृजद्विधेनाः ।  
 गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यहीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥  
 पितुश्च गर्भं जनितुश्च वम्ने पूर्वोरेको अधयत् पीप्पानाः ।  
 वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मे मनुष्ये निपाहि ॥१०॥

५ शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा अन्तरीक्षको व्याप्त करके अग्निदेव यजमानको स्तुति-योग्य और पवित्र तेजके द्वारा परिशोधित करते तथा दोसिका परिधान करके यजमानको अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं ।

६ अग्नि जलकी चारो ओर जाते हैं । वह जल अग्निको नहीं बुझाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूखता । अन्तरीक्षके अपत्यभूत अग्नि वस्त्रसे आच्छादित नहीं हैं, तो भी, जलसे वेष्टित होनेके कारण, नग्न भी नहीं हैं । समातन, निस्व, तपण और एक स्थानसे उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्निका गर्भ धारण करती हैं ।

७ जल-वर्षणके अनन्तर जलके गर्भ-स्वरूप और अन्तरीक्षमें पुण्यभूत नानावर्ण अग्निकी किरणें रहती हैं । इन अग्निकी जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं । सुन्दर और महान् आवापृथिवी दर्शनीय अग्निके माता-पिता हैं ।

८ बलके पुत्र, सवके द्वारा तुम्हें धारण करनेपर तुम उज्ज्वल और वंगवान् किरण धारण करके प्रकाशित होओ । जिस समय अग्नि यजमानके स्तोत्र द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मघर जलधारा गिरती है ।

९ जन्मके साथ ही अग्निने पिता ( अन्तरीक्ष ) के अवस्थान जल-प्रदेशको जाना था और अवस्थान-सम्बन्धिनो धारा या वृष्टि और अन्तरीक्षधारा वज्रको गिराया था । अग्नि, क्षुभकतां वायु आदि वस्तुओंके साथ, अवस्थान करते और अन्तरीक्षके अपत्यभूत जलके साथ गुहामें वर्तमान रहते हैं । इन अग्निको कोई नहीं पाता ।

१० अग्नि पिता ( अन्तरीक्ष ) और जनयिताका गर्भ धारण करते हैं । एक अग्नि बहुतर वृद्धिको प्राप्त ओषधिका भक्षण करते हैं । सपत्नी और मनुष्योंकी हितकारिणी आवापृथिवी अभीष्टवर्षी अग्निके बन्धु हैं । अग्नि, तुम आवापृथिवी-को अच्छी तरह बचाओ ।

उरौ महौ अनिवाधे ववर्धापो अग्नि यशसः संहि पूर्वीः  
 ऋतस्य योनावशयद्मूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ॥११॥  
 अक्रो न बभ्रिः समिधे महीनां विदूक्षेयः सूनव भाऋजीकः ।  
 उदुन्विय जमिता यो जजनापां गर्भो नृतमो यहो अग्निः ॥१२॥  
 अपां गर्भं दर्शतमोपधोनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।  
 देवासश्चिन्मनसा संहि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवश्यन् ॥१३॥  
 ब्रह्मन् इन्द्रानवो भाऋजीकमग्नि सन्नन्त विद्युतो न शुक्राः ।  
 गुहेव वृद्धं सदर्शस्वे अन्तरपार ऊर्ध्व अमृतं दुहानाः ॥१४॥  
 ईले च त्वा याजमानो हविर्भिरीले सखित्वं सुमतिं निकामः ।  
 देवैरवो मिमीहि संजरित्रे रक्षा च नो दम्येमिरनीकैः ॥१५॥  
 उपक्षतारुतव सुप्रणीतंमे विश्वानि धन्या दधानाः ।  
 सुरेतसा श्रवसा तुजमाना अभिष्याम पृतनार्यूरवेवान् ॥१६॥

११ महान् अग्नि असम्बाध और विस्तारण अन्तरीक्षमें वदित हाते हैं; क्योंकि बहु-प्रसन्नवान् जन उतको अच्छी तरह वदित करता है । जलके जन्मस्थान अन्तरीक्षमें स्थित अग्नि अगिनी-स्थानीया नदियोंके जलमें प्रक्षालित चित्तसे शयन करते हैं ।

१२ जो अग्निदेव समस्त संसारके जनक, जलके गर्भभूत, मनुष्योंके सुरक्षक, महान्, शत्रुओंके आक्रमणकर्ता, संघाममें अपनी महती सेनाके रक्षक, सबके दशनीय और अपनी दोसिसे प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमानके लिये जल उत्पन्न किया है ।

१३ सौभाग्यशाली अग्निने दशनीय, विविध रूपवान् तथा जल और औषधियोंके गर्भभूत अग्निको उत्पन्न किया है । सारे देवता लोग भी स्तुति-योग्य, प्रबुद्ध तथा सघोजात अग्निके पास, स्तुति-सम्पन्न होकर, गये थे । उन्होंने अग्निकी परिचर्या भी की थी ।

१४ दीप्तिशाली विजकीकी तरह महान् सूर्यगण अगाध समुद्रके बीच अमृतका दोहन करके, गुहाकी तरह, अपने भवन अन्तरीक्षमें प्रबुद्ध और प्रभा द्वारा प्रदीप्त अग्निका आश्रय करते हैं ।

१५ इव्य द्वारा मैं यजमान तुम्हारी स्तुति करता हूँ । धर्म-क्षेत्रमें बुद्धि पानेकी इच्छासे तुम्हारे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ । देवोंके साथ मुक्त स्तोत्रांक पशु अर्द्धको और मेरी, दुर्दम्य तेजके द्वारा, रक्षा करो ।

१६ खनेला अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं । हम समस्त जनकी प्राप्तिका कारणीभूत कर्म करते और इव्य प्रदान करते हैं । हम तुम्हें वीर्यशाली अग्नि प्रदान करके अर्द्धा और अहितकारी शत्रुओंको जीत सकें ।



आ देवतामभवः केतुरग्ने मन्द्रा विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।  
 प्रतिमतीं अवासयो दमूना अनुदेवात्रथिरा यासि साधन् ॥१७॥  
 निदुरोण अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विद्वानि साधन् ।  
 घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निविश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥  
 आ नो गहि सख्येभिः शिभिर्महान्महीभिरूर्तभिः सरण्यन् ।  
 अस्मे रयि बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधो नः ॥१९॥  
 पता ते अग्ने जनिमा सनानि प्रपूठयिष्य नूतनानि वाचम् ।  
 महान्ति वृष्णे सवता कृतेमा जग्मज्जन्मन्निहितो जातवेदाः ॥२०॥  
 जन्मज्जन्मन्निहतो जातवेदा विश्वमित्रे भिरिध्यते अजस्रः ।  
 तस्य वयं सुमतीं यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥  
 इमं यज्ञं सहाधत्वं नो देवत्रा धेहि सुकृतो रराणः ।  
 प्रयसि होतवृहतीरियो नोम्ने महि द्रविणमायजस्व ॥२२॥  
 इलामग्ने पुरुषंसं सनिं गीः शश्वन्म हवमानाय साध ।  
 स्यान्नः मनुस्तनयो विजा रात्रे सा ते सुमानभूर्न्वस्मि ॥२३॥

—ॐ नमः शिवाय—

१७ अग्नि, तुम देवोंके स्ववनीय दूत हो । तुम सारे स्तोत्रोंके ज्ञाता हो । तुम मनुष्योंको उनके अपने-अपने गृहमें वास देने हो । तुम रथी हो । तुम देवोंका कार्य-वाचन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो ।

१८ नित्य राजा अग्नि यज्ञका साधन करके मनुष्योंके गृहमें घेठने हैं । अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं । अग्निका अंग बोकें द्वारा दीप्तियुक्त है । विशाक्त अग्नि प्रकाशमान होते हैं ।

१९ गमनेच्छु महान् अग्नि, मङ्गलमयी मैत्री और महान् रक्षाके साथ हमारे पास आओ और हमें बहुत, निरुप-द्रव, शोभन स्तुतिवाला और कीर्तिशाली बन दो ।

२० अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो । तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्रका हम पाठ करते हैं । सब-भूतज्ञ अग्नि मनुष्योंके बीच निहित है । उस अभीष्ट रथी अग्निका लक्ष्य करके हमने यह सब सवन किया है ।

२१ सारे मनुष्योंमें निहित और सर्व-भूतज्ञ अग्नि विश्वामित्र द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं । हम उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्निका अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें ।

२२ बलवान् और शासन करनेवाले अग्नि, तुम सब बिहार करते-करते हमारे यज्ञको देवोंके पास ले जाओ । देवकी बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो । अग्नि, हमें महान् बन दो ।

२३ अग्नि, स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुप्रदायी भूमि हमें, चिर काल, दो । हमारे वंशका विस्तार करनेवाला और सम्पत्ति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

२ सूक्त । वश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।  
 वश्वानराय धिषणासृतावधे घृतं न पृतममये जनामसि ।  
 द्विता हातारं मनुष्यं वाधतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥  
 सरोन्वयज्जनुपा रोदसी उभं स माश्रोमभवत् पुत्रव्ययः ।  
 हव्यवाललग्निर्जरश्चनाहितो दूलभो विशामतिर्यिर्विभावसुः ॥२॥  
 ऋत्वा दक्षस्य तरुणो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।  
 रुक्मानं भानुना ज्यातिषा माम यं न वाजं स्निष्यन्नुपम वे ॥३॥  
 आ मन्द्रस्य स्निष्यन्तो वरेण्यं हृणोमहे अहयं वाजमृगिमयम् ।  
 राति भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोक्त्या ॥४॥  
 अग्निं सुस्राय दधिरे पुत्राजना वाजश्रवसमिह वृक्तवर्हिषः ।  
 यतस्तुचः सुचुचं । वश्वदेव्यं रुद्रं धजानां साधदिष्टमपसाभ ॥५॥  
 पावकशोचे तव हि क्षयं परि तोतयज्ञेषु वृक्तवर्हिषो नरः ।  
 अग्निं दुष इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥  
 आ रोदसी अपृणदास्वर्मज्जानं यदेनमपसां अधारयन् ।  
 सो अश्वराय परि णोयते अश्वित्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

१ हम यज्ञ-वर्द्धक देवानाको लक्ष्य करके विशुद्ध घृतकी तरह प्रसन्नता-शायन स्तुति करेंगे । जैसे कुटार रथका संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और आग्नि के लक्ष्य देवोंको चुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकारके रूपोवाले अग्निका संस्कार करते हैं ।

२ जन्मके साथ ही वह धावापृथिवीको प्रकाशित करने हैं । वह पता-साताको प्रदामाके अनुकूल पुत्र हुए थे । हव्यवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभाघन अग्नि मनुष्योंके, अतिगिणं ममान, पुत्र्य हैं ।

३ ज्ञानी देवता लोग विपद्मे उद्धार करनेवाले बलके द्वारा यज्ञमें अग्निको उत्पन्न करते हैं । जैसे भार-वाही अश्वकी स्तुति करता हूँ, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान् तेजके द्वारा प्रशस्तमान और महान् अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

४ हम स्तुति-योग्य वेश्वानरके भ्रष्ट, लज्जा-रहित और प्रशंसनीय अन्नके अभिलाषी होकर भृगु-वंशियोंके अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्तिके द्वारा शोभावाले अग्निका भजन करता हूँ ।

५ घृतकी प्राप्तिके लिये अस्तिव् लोग कुण्डकी फेलाकर और अश्वका उठाकर अन्नदाता, असीव प्रकाशक, सारे देवोंके हितधी, दुःखनाशक और यज्ञमार्गके यज्ञ-साधक अग्नि स्तुति करते हैं ।

६ पवित्र दीप्तिवाले और देवोंको चुलानेवाले पशु, रुम्हारी मेधा आभिलाषी यज्ञमान लोग यज्ञमें कुण्ड फेलाकर सुम्हारे योग्य याग-गृहकी सेवा करते हैं । उन्हें धन दो ।

७ अग्निने धावापृथिवी और विशाल आकाशको भी पूर्ण किया था । यज्ञमार्गमें इन नवजात अग्निको धारण किया था । सर्वत्र व्याप्त और अन्नदाता यही अग्नि, अश्वकी तरह अन्न लाभके लिये, लाये जाते हैं ।

नमस्यत हव्यदाति स्वध्वरं दुवस्यत दग्धं जातवेदसम् ।  
 रथीऋतस्य बृहतो विचपेणिरग्निदवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥  
 तिस्रो यद्वस्य समिधः परिज्मनोग्रं रपुनगुशिजो अमृत्यवः ।  
 तासामेका मधुमस्य भुजमुलोकमुद्वे उप जामिमीषतुः ॥९॥  
 विशां कवि विशपति मानुषीरिषः संसीमकृण्वन्स्वधिति न तेजसे ।  
 स उद्वतो निवतो याति वेविपत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥  
 स जिव्वते जठरेषु प्रजाक्षिषान्वृषा वित्रेषु नानवन्न सिंहः ।  
 वैश्वानरः पृथुपाजा अमस्योवसु रत्ना द्यमानो वि दाशुषे ॥११॥  
 वैश्वानरः प्रत्नयानाकमाकृद्दिव स्पृष्टं भन्दमानः सुमग्मभिः ।  
 स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्यति जागृचिः ॥१२॥  
 श्रुतावानं यक्षियं विप्रमुक्थ्य मायं दध्रे मातरिश्वा दिविक्षयम् ।  
 तं नित्रयामं हन्किशमीग्रहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥  
 सुचिं न यामं निपिरं स्वद्वृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुपवृधम् ।  
 अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

८ नेता और महान् यज्ञके दशोक जो अग्नि देवोंके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्होंने हव्यदाता, शोभन यज्ञवाले, गृहके हितेषी और सर्वभूतज्ञता अग्निकी पूजा और परिचर्या करो ।

९ अमर देवोंने अग्निकी इच्छा वरके महान् और जगद्वृषापी अग्निकी पार्थिव, वैद्युतिक और सूर्यरूप तीन मूर्तियोंको शोभित किया था । उन्होंने तीनों मूर्तियोंमें से जगद्वृषाणिका पार्थिव मूर्तिको मर्त्यलोकमें रखा, शेष दो अन्तरीक्षमें गयीं ।

१० घनाभिलाषी प्रजाओंने अपने प्रभु मेधावी अग्निको तलवारकी तरह तीक्ष्ण करनेके लिये संस्कृत किया था । वह उन्नत और निम्न प्रदेशोंको व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनोंका गर्भ धारण करते हैं ।

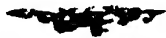
११ नवजात और अमीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानोंमें सिंहाकी तरह गर्जन करके अनेक जठरोंमें वदित होते हैं । वह अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं । वह यज्ञमानको रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं ।

१२ स्तोताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि तिरग्नकी तरह अन्तरीक्षकी पीठ—स्वर्ग—पर चढ़ते हैं । प्राचीन ऋषियोंके सद्यः यजमानोंको धन देकर वह जागरूक होकर देवोंके साधारण मार्गपर, सूर्य रूपसे, भ्रमण करते हैं ।

१३ बलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और अलोक-वासी जिन अग्निको ध्रुलोकसे लाकर वायुने पृथिवी पर स्थापित किया है, हम उन्हीं नाना गतिवाले, पिङ्गलवर्ण किरणसे युक्त और प्रकाशमान अग्निसे नया धन चाहते हैं ।

१४ प्रदीप्त, बज्रमें गमनकारी, सारे पदार्थोंके ज्ञानभूत, ध्रुलोकके पताका-स्वरूप, सूर्यमें अवस्थित, उषाकालमें जाग, रूक, अन्नदान और महान् अग्निकी, स्तोत्र द्वारा, याचना करता है ।

मन्द्रं होतारं शुक्मिष्ठयाविनं दमूनसमुक्थं विश्ववर्षणिम् ।  
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुहितं सवमिद्राय ईमहे ॥१॥



३ सूक्त । वैश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।  
अग्निहि देवां अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥  
अन्नदूर्तो रोदसी द्रुम ईयते होता निपत्तो मनुषः पुरोहितः ।  
क्षयं वृहन्तं परिभूपति द्युमिर्दवेभिरग्निरिषितो घियावसुः ॥२॥  
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्नि महयन्त चित्तिभिः ।  
अपांसि यस्मिन्नधिसन्दधुगिरस्तस्मिन्सुम्नानि यजमान आचरे ॥३॥  
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्धेयुनं च बाधताम् ।  
आ विवेश रोदसी भूगिर्वसा पुरुप्रियो भन्वते धामभिः कविः ॥४॥  
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिष्ठं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्चिदम् ।  
विगाहं तूर्णं तविणीमिगवृतं भूर्णि देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥

१५ स्तुत्य, देवाङ्गवानकारी, सर्वदा शुद्ध, अकुटिल, दाता, श्रेष्ठ, विश्ववर्षक, रथकी तरह जाना वर्णवाले, ईश-  
नीय रूपवाले और मनुष्योंके सदा कल्याणकर्ता उन अग्निदेवके पास में घनकी याचना करता हूँ ।

१ मेधावी स्तोता लोग, सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये, बहु-बलशाली वैश्वानरको लक्ष्य कर यज्ञमें समर्पण स्तोत्रोंका पाठ करते हैं । अमर अग्नि हव्य प्रदानके द्वारा देवोंकी परिचर्या करने हैं । इसलिये कोई सनातन यज्ञकी कृति नष्ट कर सकता ।

२ दशनीय होता अग्नि, देवोंके दूत होकर, द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं । देवों द्वारा प्ररित धीमान् अग्नि यजमानके सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृहको अलंकृत करते हैं ।

३ मेधावी लोग यज्ञके केतु-स्वरूप और यज्ञके साधनभूत अग्निको अपने वीर रथ द्वारा युजित करते हैं । जिन अग्निमें स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मोंको अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्निमें यजमान सुखकी आशा करते हैं ।

४ यज्ञके पिता, स्तोताओंके बलदाता, श्रुतिवर्कोंके ज्ञानहेतु और यज्ञादि कर्मोंके साधनभूत अग्नि पार्थिव और वैष्णवादि रूपके द्वारा द्यावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं । अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान द्वारा स्तुत होते हैं ।

५ आङ्लाङ्क, आङ्लादजग रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जलके बीच निवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वश व्याप्त, शीघ्र-  
गामी, बलशाली, भर्ता और दीप्तिवाले वैश्वानर अग्निको देवोंने इस लोकमें स्थापित किया है ।

अग्निर्देवेभिर्मनुष्यञ्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।  
 रथीरन्तरीयते साधद्विष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिन्नातनः ॥६॥  
 अग्ने जरस्व स्वपश्य आयून्यूजां पिन्वस्व समिषा दिदोहि नः ।  
 वयांसि जिन्व वृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुकतुर्विषाम् ॥७॥  
 विश्वपतिं यह्नमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।  
 अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्बुधे ॥८॥  
 विभावा देवः सुरणः परिक्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।  
 तस्य व्रतानि भूरिपोदिणो वयमुपभूयेम दम आ सुवृत्तिभिः ॥९॥  
 वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्धिदभवो विचक्षणः ।  
 जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥  
 वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहद्वरिणादेकः स्वपरुयया कविः ।  
 उभा पितरा मध्वयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥



६ जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विगोंके साथ कर्म द्वारा यजमानके नाकाविध यज्ञोंका सम्पादन करते हैं, जो नेता, शीघ्रगामी, दानशील और शत्रुओंके नाशक हैं, वही अग्नि द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं ।

७ हम सुपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिये, हे अग्नि, तुम देवोंकी स्तुति करो । अन्न द्वारा उन्हें प्रीत करो । हमारे घाम्यके लिये भली भौति वृष्टिको संचालित करो । अन्न दान करो । मदा जागरण-शील अग्नि, तुम महान् यजमानको अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवोंके प्रिय हो ।

८ मनुष्योंके पति, महान्, अतिथि-भूत, बुद्धि-नियन्ता, ऋत्विगोंके प्रिय, यज्ञके ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्वभूतज्ञ अग्निही, नेता लोग, समृद्धिके लिये, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा, प्रशंसा करते हैं ।

९ दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बलके द्वारा सारी प्रजाको व्याप्त करते हैं । हम अनेकोंके पालक और गृहमें निवासी अग्निके सारे कर्मोंको, सुन्दर स्तोत्र द्वारा, प्रकाशित करेंगे ।

१० विश्व वैश्वानर, तुम जिस तेजके द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेजका स्तव करता हूँ । जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवी और सारे भुवनोंको व्याप्त कर डालते हो । अग्नि, तुम अपने सारे भूतोंको व्याप्त करते हो ।

११ वैश्वानरके सन्तोषजनक कर्मसे महान् धन होता है; क्योंकि वह सुन्दर यज्ञ आदि कर्मकी इच्छासे यजमानोंको धन देते हैं । वह वीर्यशाली हैं । पिता-माता द्यावा-पृथिवीकी पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं ।

४ सुक्त । आग्नी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

समिन् समित् सुमना बोध्यस्मे शुन्ता शुन्ता सुमतिं रासि षस्वः ।  
 आ देव देवान्यजथाय नक्षि सखा सखीन्तसुमना यक्ष्यमे ॥१॥  
 य ईवांस स्त्रिरश्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।  
 सेमं यज्ञं मधुमन्तं कधी नस्तनूनपाद्घृतयानि विधन्तम् ॥२॥  
 प्र दीधितिर्विश्वानारा जिगाति हातारमिष्ठः प्रथमं यजथ्यै ।  
 अच्छा नमोमिष्टु पमं बन्ध्यै स देवान्यक्षदिपितो यजीयान् ॥३॥  
 ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वो शोचीषि प्रस्थिता रजांसि ।  
 दिवो धा नामा न्यसादि होता स्तृणोमहि देवव्यन्ता विर्बाहिः ॥४॥  
 सप्त होत्राणि मनसा धृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।  
 नृपेशसो विद्येषु प्रजासा अभीमं यज्ञं विचरन्त पूर्वीः ॥५॥  
 सा मन्वमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।  
 यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वा उत वा महोभिः ॥६॥

१ हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मनसे जागो । तुम अतीव गतिशूल तेजसे युक्त होकर हमारे ऊपर घनके लिये अनुग्रह करो । द्योतमान अग्नि, देवोंको तम यज्ञमें ले आओ । अग्नि, तुम देवोंके सखा हो । अनुकूल मनसे मित्र देवोंका यज्ञ करो ।

२ वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात नामक अग्निका, प्रतिदिन तीन बार करक, यज्ञ करते हैं, वही हमारे इस जल-कारण यज्ञको वृष्टि आदि फल दें ।

३ देवोंके आह्वानकारी अग्निके पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करें । इला, प्रसन्नता उत्पन्न करनेके लिये, प्रधान, अतीव अभ्योष्टवर्त्ता और बन्धनीय अग्निके पास जायँ । यज्ञकर्ममें कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें ।

४ अग्नि और बहिरूप अग्निके लिये यज्ञमें एक उन्नत मार्ग किया हुआ है । दीप्तियुक्त इन्ध्न ऊपर जाता है । दीप्तिमान यज्ञ-गृहके नोमिप्रदेशमें होता उपविष्ट है । हम देवोंके द्वारा उपोष कुशको विद्वान्ते ।

५ जल द्वारा संसारके प्रसन्नकर्ता देवता लोग सप्त यज्ञमें जाते हैं । वे अकपट चित्तसे वाचित होकर नरूपी यज्ञाज्ञा ( अग्निके यज्ञ-द्वार-द्वय ) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञमें आते ।

६ स्तुयमान अग्नि-रूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूपसे, सबरीर प्रकाशित होकर आते । मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूपसे अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर, उसी रूपको धारण करें ।

दंत्या होताग प्रथमा नृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।  
 श्रुत शंसन्त श्रुतमिच्छादुरनु वनं वनपा दोष्यानाः ॥७॥  
 आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।  
 सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बहिरेदं सवन्तु ॥८॥  
 तन्नभ्तुरीपमथ पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।  
 एतो धीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्त्यावा जायते देवकामः ॥९॥  
 वनस्पतेव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिताः सुदधाति ।  
 मेदु हाता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वैद ॥१०॥  
 तायाह्यग्रे समिधानो अर्वाङ्निदेण देवैः सरथं तुरेभिः ।  
 बहिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥



५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

एतं मि रुषसश्चेकितानो बांधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।  
 पृथपाज्जा देवयज्ञिः समिद्धोपद्राग तमसो वह्निगवः ॥१॥

७ में १-८व्य और प्रधान अग्निरूप दोनों हाताओंको प्रसन्न करता हूँ । यज्ञामिलायी, सप्त और अन्नवान् श्रुतिवक् लोग स्वयं द्वारा अग्निंको प्रसन्न करते हैं । वनके रक्षक और दोपिण्डाली श्रुतिवक् लोग प्रत्येक व्रतमें यज्ञरूप अग्निंको यह वचन बोलते हैं ।

८ भारती लागा ( सूर्य-सम्बन्धियों ) के साथ अग्नि-रूप भारती आवें, देवी और मनुष्योंके साथ इला आवें, अग्नि भी आवें । सारस्वतगणों ( अन्तरीक्षस्थ वचनों ) के साथ सरस्वती भी आवें । ये तीनों देवियाँ आकरसंमुखस्थ कुशपर बैठें ।

९ अग्नि रूप त्वष्टा देव, जिसमें घोर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषवके किये प्रस्तर-इस्त और देवाभिलाषी पुत्र उत्पन्न हो गए, सन्तुष्ट होकर तुम हमें वैसे ही प्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो ।

१० अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंको पास ले आओ । पशुके संस्कारक अग्नि ( वनस्पति ) देवोंके किये हव्य दें । ये ही यज्ञ-रूप देवता लोगोंको बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि वे ही देवोंका जन्म जानते हैं ।

११ अग्नि, तुम दोपिण्ड-युक्त होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवोंके साथ एक रथपर हमारे सामने आओ । सुदुष्ट-पुला अग्नि हमारे कुशपर बैठें । नित्य देवगण अग्निरूप स्वहाकारवाले होकर सृष्टि प्राप्त करें ।

१ भारती उपाकी जानते हैं । सेवाधी अग्नि ज्ञानियोंके मार्गपर जानेंके लिये जागते हैं । अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवाभिलाषी व्यक्तियोंके द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञानका त्वार उदुचाटित करते हैं ।

प्रेक्षप्रिर्वावृध्रे स्तोमेभिर्गीभिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थेः ।  
 पूर्वोऽमृतस्य सन्दृशश्चकानः सन्दूतो अद्यौ दुषसो विरोके ॥२॥  
 अधायथग्निमानुषीषु विध्वपां गर्भो मित्त्र ऋतेन साधनम् ।  
 आ हव्यतो यजतः सान्वस्थादभूवु विप्रो हव्यो मनीषाम् ॥३॥  
 मित्रो अग्निर्मवति यन् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।  
 मित्रो अधव्यु र्षिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥  
 पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यद्वह्मरुणं सूर्यस्य ।  
 पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥  
 ऋभुश्चक ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।  
 सप्तस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तदिदग्नी रक्षस्थिप्रयुच्छन् ॥६॥  
 आ योनिमग्निघृतवन्तमस्थान् पृथुप्रमाणमुशन्तमुशानः ।  
 दीधानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मानरानव्यसीकः ॥७॥  
 सद्योजात ओषधीभिर्ववक्षे यदा वर्धन्ति प्रेक्षो घृतेन ।  
 आप इव प्रवता शुभममाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थं ॥८॥

२ पूज्य अग्नि स्तोताओंकी स्तनात्र, वाक्य और मंत्र द्वारा वृद्धि पाते हैं। देव-कृत अग्नि अनेक यज्ञोंमें दोष प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३ यजमानोंके मित्र, यज्ञके द्वारा अभिकाषा पूरी करनेवाले और जलके पुत्र अग्नि मनुष्योंके बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वह अन्ततः स्थानपर बैठे हैं। ज्ञानी अग्नि स्तोताओंकी स्तुतिके योग्य हुए हैं।

४ जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वही मित्र हो, होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वही, मित्र हो, दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु हैं। वह नदियाँ और पर्वतोंके मित्र हैं।

५ सृष्ट्र अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवीके प्रिय स्थानको रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्यके विहरण-स्थान अन्तरीक्षकी रक्षा करते हैं। अन्तरीक्षके बीच मनुष्योंकी रक्षा करते हैं। वह देवोंके प्रसन्नता-कारक यज्ञकी रक्षा करते हैं।

६ महान् और सारे ज्ञातव्योंके ज्ञाता अग्नि प्रांसरीय और सृष्ट्र जल उत्पन्न करते हैं। अग्निके निहित रहनेपर भी हलका चर्म या रूप दीप्तिमान् रहता है वही अग्नि मावधानीसे उसकी रक्षा करते हैं।

७ दीप्तिमान्, विशेष रूपसे समुद्र और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अग्निरूढ़ हुए हैं। दीप्तिवाली, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि पिता-माता यावापुत्रिणीको नवीनतर करते हैं।

८ जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों द्वारा घृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवाहित जलकी तरह श्यामल आवाधियों जल द्वारा वर्द्धित होकर फल देती हैं। पिता-माता या वापुत्रिणीका काङ्क्षे बहकर अग्नि हमारा रक्षा करे।



उदुष्टुतः समिधा बहो अद्यौर्ध्वमिन्दवो अधिनामा पृथिव्याः ।  
 मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्ष्यजथाय देवान् ॥६॥  
 उदस्तम्भीत् समिधा नाकसृष्वोऽग्निर्मवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।  
 यदो भृगुभ्यः परिश्वा मातरिश्वा गुहासन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥  
 इलामग्रे पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।  
 स्यान्नः सूनुस्तनयो विजात्राने सा ते सुमतिर्मृत्वस्मे ॥११॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र कारवो मनना वक्ष्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।  
 दक्षिणावाङ्वाजिनी प्राचयेति हविर्मरुत्यग्नये घृताधी ॥१॥  
 आ रोदसी अपृणा जायमान उत्त प्र रिक्था अध नु प्रयश्यो ।  
 दिवश्चिदग्रे महिना पृथिव्या वक्ष्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥  
 द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।  
 यदो विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलते शुक्रमर्चिः ॥३॥

६ हमारे द्वारा स्तुत और दीप्ति द्वारा महान् अग्निने पृथिवीकी नामि वा उत्तर वेदीपर स्थित होकर अन्तरीक्षको प्रकाशित किया है । सबके मित्र और स्तुति-योग्य अराण-प्रदोषत अग्नि देवोंके दूत होकर यज्ञमें देवोंको बुलावे ।

१० जिस समय मातरिश्वाने भृगुओं वा आदिह्य-रात्रिमयों किये गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्निको प्रज्वलित किया था, उस समय तेजस्विनोंमें श्रेष्ठ महान् अग्निने तेज द्वारा स्वर्गको स्तब्ध किया था ।

११ अग्नि, तुम स्तोत्राको अनेक कर्मोंके हेतु भूत और धनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो । हमारे वंशका विस्तारक भार सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

१ यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमामिलायी हो । मंत्र द्वारा प्रेरित होकर तुम देवाचन-साधक झुक् से आओ । जिसे आहवनीय अग्निकी दक्षिण रिशामें ले जाया जाता है, जिसके अग्न है, जिसका अग्र भाग पूर्व दिशामें है और जो अग्निके लिये अन्न धारण करता है, वही घृतयुक्त झुक् जाता है ।

२ जन्मके । हो तुम द्यावापृथिवीको पूर्ण करो । याग-योग्य, महिमा द्वारा तुम अन्तरीक्ष और पृथिवीसे प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूत विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वाएँ पूजित हों ।

३ अग्नि, तुम होता हो । जिस समय देवामिलायी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेजकी स्तुति करने हैं, उस समय अन्तरीक्ष, पृथिवी और यज्ञार्ह देवगण, यज्ञ-सम्पादनके किये तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

महान्तसधस्थे ध्रुव आनियन्तान्तर्धावा माहिने हर्यमाणः ।  
 आस्के सपत्नी अजरे अमृक्ते सधर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥  
 व्रताते अग्ने महता महानि तव क्रत्वा रादसी आनतस्थ ।  
 त्वं दूतो अमवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ सर्पणीनाम् ॥५॥  
 ऋतस्य वा केशिना योग्यामिधृतस्तुवा रोहिता धुरि श्रिष्व ।  
 अथा वह देवाग्देव विश्वान्स्वध्वरा कृणुहि जानवेदः ॥६॥  
 दिवश्चिदाने रुन्वन्न रोका उषो विमानोरनु भासि पूर्वीः ।  
 अगो यदप्रउशश्रवनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥  
 उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोन्ने सन्ति देवाः ।  
 ऊमा वा ये सुहवास्तो यजता अयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥  
 ऐभिश्च स्रथं याह्यर्षाङ् नाना रथं वा विभवो ह्यश्वाः ।  
 पत्नीषतस्त्रिंशतं त्रींशं देवाननुष्व धमावह मादयस्व ॥९॥  
 स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यक्षं यक्षमभिवृधे गृणीतः ।  
 प्राप्नी अधरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी अतन्नातरय सत्ये ॥१०॥

४ महान् और यजमानोंके प्रिय अग्नि, द्यावापृथिवीके बीच, महिमावान् अपने स्थान पर, बैठे हैं। आक्रमण-शीला, सपरनीभूता, जरा-रहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी द्यावापृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्निकी गार्थ हैं।

५ अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा कर्म महान् है। तुमने यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको विस्तृत किया है। तुम वृत्त हो। अमीष्टवर्षी अग्नि, उत्पन्न होनेके साथ ही तुम यजमानके नेता बनो।

६ श्रुतिमान् अग्नि, प्रशस्त केशवान्, रज्जुयुक्त और घृतसावी रोहित नामक दोनों धं धोंको यज्ञके सम्मुख योजित करो। अबन्तर तुम सारे देवोंको बुलाओ। सर्वभूतश्च, तुम उन्हें छन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७ अग्नि, जिस समय तुम वनमें जलका शोषण करते हो, उस समय सूर्यसे भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम मकी भाँति प्रकाशमान पुरातन वषाके पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्निकी स्तुति करते हैं।

८ विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें जो देवगण दृष्ट हैं, आकाशकी दीप्तिमें जो सब देवता हैं, 'उम' संज्ञक जो यजनीय पित्र-लोक मली भाँति आहूत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्निंके जो सब अश्व हैं—

९ अग्नि, उक्त सब देवोंके साथ एक रथ अथवा नाना रथोंपर चढ़कर हमारे सामने आओ क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवोंको, उनकी स्त्रियोंके साथ, अन्नके लिये, ले आओ और सोम द्वारा दृष्ट करो।

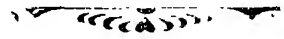
१० विशाल द्यावापृथिवी, पत्न्येक यज्ञमें, समृद्धिके लिये, जिन अग्निकी प्रशंसा करती हैं, वे ही देवोंके होता,। सुकृपा, जलवती और सत्यस्वरूपा द्यावापृथिवी, यज्ञकी तरह, सत्यसे उत्पन्न होता अग्निके अङ्गकूल हैं।

इलामग्नो पुरुवंस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साधः ।  
स्यान्नः सुनुस्तनयो विजाधाम्ने सा ते सुमतिर्भूस्वस्मे ॥११॥



११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुवादी भूमि सदा दो । हमारे वंशका विस्तारक और सशक्तिजनयिता एक पुत्र दो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त



द्वितीय अष्टक समाप्त



# “ऋग्वेद-संहिता”

( हिन्दी-श्रीका-महित )

तृतीय अष्टक छप रहा है

द्वितीय अष्टक छप गया

प्रथम अष्टक का मूल्य

अन्वयगत सप्तऋषि

प्रत्येक

रुपये, आठ

और

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

हिन्दु मानिकी भवन

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

विमानवासी मार्गदर्शक

—“महा”-कायालय, कृष्णगढ़, सुन्दरानगर, भागलपुर

## हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'गंगा' इसलिये है कि,

- १—संसारके जितने बड़े-बड़े विद्वान् "गंगा"में लिखते हैं, उतने हिन्दीकी किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- २—"गंगा"की जैसा सजावट और कम्पोजीशन होता है, वैसा हिन्दीकी किसी भी पत्रिकाका नहीं,
- ३—हिन्दूधर्मके मूल—हिन्दुसभ्यता, प्राचीनतम इतिहास, संस्कृति, संस्कृत-साहित्य और हिन्दूधर्म—पर "गंगा"में जितने लेख निकलते हैं, उतने किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- ४—विश्वविदित विद्वानोंने "गंगा" और उसके अदभुत "वेदाङ्क"की जितनी प्रशंसा की है, उतनी हिन्दीकी किसी भी पत्र-पत्रिका और पुस्तकका नहीं।

### कुछ प्रशंसाएँ पढ़िये—

१—देशपूज्य और विद्वान्-रत्न बाबु राजेन्द्रप्रसाद—“गङ्गाके लेख उच्च कोटिके होते हैं। इसमें बहुत गहन और रोचक विषयोंपर लेख छपा करते हैं। इसके विशेषाङ्क और भी मावोंके होते हैं। प्रगल्भता होती है कि, विद्वानों का ऐसा सर्वोत्कृष्ट पत्रिका इतनी सफलता प्राप्त कर रही है।”

२—सर जार्ज एच. ग्रियर्सन (एडि., इङ्ग्लैण्ड)—“गङ्गाका 'वेदाङ्क' प्रत्यक्ष रूपसे एक महत्त्वपूर्ण घण्टा है।”

३—डा० स्टीन कोलो पी-एच० डी० (नार्वे)—“गङ्गामें बहुत रुचिकर और रोचक प्रबन्ध रहते हैं।”

४—डॉ० रैस्सन एम० ए० (लण्डन)—“गङ्गा द्वारा प्रकाशित भारतवर्षके साहित्य, इतिहास और पुरातत्वकी प्रगतिकी आगे बढ़ाया जा रहा है।”

५—डा० बर्रेट एम० ए०, डी० लि० (ब्रिटिश म्युजियम, लण्डन)—“वेदाङ्कका सम्पादन तथा सौख्यताएं प्रशंसनीय हैं।”

६—डा० जोसेफ स्टॉन पी-एच० डा० (नैकोप्लोमेटिकिया)—“वेदाङ्कके सम्पादनकी प्रशंसा संस्कृतिके ऐतिहासिकों तथा डॉ० आनन्द मिश्रोंका।”

७—“सर्वोच्च दर्जके लेखक डा० अर्पिनाजचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी० (कलकत्ता)—“वेदाङ्कके प्रकाशनका कार्य समस्त भारतवर्षमें अपने ढङ्गका एक डी है। वेदाङ्क कि, वेदाङ्क आध्यात्मिकता का प्रकाशन करने में सफल है।”

८—श्रीयुक्त नागयण भगवन्दास पाचगी (पूना)—“सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें 'वेदाङ्क'की समता सर्वोच्चता की ही नहीं है। इसका सर्वोच्चता साहित्य है।”

९—भारत सरकारके “पुरातत्त्व-विभाग”के अन्तर्गत पी० डी० गणेश शर्मा एम० ए०, एम० पी०, एम० पी० (नैकोमिरी)—“वेदाङ्कमें वैदिक साहित्यके लेखकों की अनुसन्धानकी योग्यता है।”

१०—पं० गंगाधर इतिहास-संशोधक-प्राध्यापक आनन्द विश्वेश्वर मिश्र बाह्यस्वरूप—“वेदाङ्ककी प्रकाशिका विशेषाङ्क आज तक किसी साहित्यिक पत्रिकासे नहीं प्रकाशित किया। 'वेदाङ्क'के सम्पादकाय विचार वैदिक गहन स्वाध्यायों के निष्कर्ष हैं।”

११—राजा राजेन्द्रप्रसाद (बैतर्न)—“गङ्गा आध्यात्म-वैदिकताका एक है।”

“वेदाङ्क” का मूल भाग है; भाग २ का वार्षिक मूल्य केवल जो

“गङ्गा”के मूल भागमें उनकी “वेदाङ्क” सुवन मिलेगा।

“गङ्गा”के मूल भागकी “वेदाङ्क”का प्रत्येक अंक अपनी अलग-अलग कीलता है।

मैनेजर, ए. जे. सुन्दरानाथ, भागलपुर

गङ्गा और वेदाङ्क, मद्रास नैकोमिरी, ए. जे. सुन्दरानाथ, भागलपुर।



सांप्रतिकानां केषां चिज्जनानां मनोवृत्त्यनुगुणा न भवतीति चेत् या तथा विधा कैश्चिन्निर्मिता भवेत्सापीतरेषां मनोवृत्त्यनुगुणा नैव भवेत् ।

किं च जैमिनिना किमियं द्वादशाध्यायी भवत्सदृशानां दुःखदित्सया विरचिता । नैव । किं तु सुखदित्सयैव विरचिता । तच्च सुखमेहिकं पारलौकिकं वेत्यन्यदेतत् ।

न वयं जैमिन्युषिणा जनानां दुःखदित्सयेयं द्वादशाध्यायी प्रणीतिति ब्रूमः । किं तर्हि सुखदित्सयैव । केवलं संप्रति तस्याः सकाशाद्दुःखमिदानींतनानां भवतीति । तर्हि सांप्रतिका जना एव तत्र कारणं न जैमिनिरिति भवद्वचसैव सिद्धं भवति ।

किं चानवथा प्रेक्षावतां लोकानां निरूढा पद्धतिर्न्याय इत्युच्यते । तां च तथाविधां निरूढां पद्धतिं समालोच्य ततस्तेषां सुखप्राप्तिं दुःखहानिं च संवक्ष्य मन्दधियामपि तादृशसुखप्राप्तये दुःखहानाय च प्रवृत्ताः सूत्रकारास्तादृशपूर्व-पद्धतिमेव सालभ्यन ज्ञापनाय सूत्ररूपेण संजग्रहुः । त एव च न्याया इत्युच्यन्ते । न तु न्याया नामापूर्वाः सूत्रकृता प्रतिपादिताः । तदुक्तम्—

नैव सूत्रकृता न्यायाः स्वकपोलप्रकल्पिताः ।

अनुग्रहाय मन्दानां सिद्धा एव प्रदर्शिताः ॥ इति ।

किञ्च जैमिनिस्तत्रतत्र सिद्धान्तभूतेऽर्थे हेतुं प्रदर्शयन्नित्थं संसूचयति—न मयोक्त-मित्येतावता स्वीकर्तव्यमपि तु प्रदर्शितं हेतुं परिज्ञाय युक्तियुक्तं चेत्प्रतीयेत तर्हि स्वीकर्तव्यमिति ।

अपि च यश्च कस्यामपि पद्धती दोषत्वेनाभिमतोऽर्थस्तस्य दोषत्वं च न दुःखदातृत्वेन । यश्चापि तत्र गुणत्वेनाभिमतोऽर्थस्तस्य गुणत्वं च न सुखदातृत्वेन । किं तु सा पद्धतिर्वादस्वरूपस्य तत्त्वावबोधपर्यन्तं सामीचीन्येनावस्थितये समा-श्रीयते । अतस्तत्रत्यां योऽर्थस्तत्त्वावबोधायापर्याप्तो भवति स दोषः । यश्च तत्पर्याप्तो भवति स गुणः । तथा च गुणस्य गुणत्वं दोषस्य दोषत्वं च न वस्तुस्वरूप-प्रयुक्तम् । यतो यो यत्र गुणो भवति स एवान्यत्र दोषो भवति । अतो नैमित्तिकं तत् । तदुक्तम्—

अग्राभावे कथं सूच्या संधीयेत पटद्वयम् ।

व्यथादाप्यपि सूच्यग्रं न दोषत्वेन गण्यते ॥ इति ।

तदेवं या हि वादे मीमांसापद्धतः परित्यागो यश्चापीतिहासपद्धतेरुररीकार-स्तदेतदुभयमपि न प्रमाणपद्धतिमारोढुमर्हतीति तदनुसारणं निर्णीतोऽर्थो न धर्मात्मतामवगाहोदिति सुव्यक्तमेव तत्र निरतानां धार्मिकजनानामिति विभावयन्तु मुधियः । यच्चाप्यन्यः कैश्चिदुक्तं ‘ वेदवाक्यार्थनिर्णयाय प्रवृत्तमिदं शास्त्रं न खलु स्मृत्यायर्थनिर्णयविषये समादरणीयम् ’ इति । तदेतद्विचारमूलकम् । यतो निर्णय-

मिन्धु- वीरमित्रोदय- व्यवहारमयूख-हेमाद्रिप्रभृतिषु निबन्धेषु मनुयाज्ञवल्क्य-पराशरादिमहर्षिप्रणीतासु च स्मृतिषु मीमांसाशास्त्राहिताज्ञैकविधान्यायाननु-मंधायिव धर्मतत्त्वनिर्णयस्य प्रतिपादितत्वात् । नेतावदेव किं तु काव्यप्रकाशकार-मम्मटप्रभृतय आलंकारिका अपि मीमांसितवाक्यार्थानुसारणं तत्रतत्रालंकारा-जिरणुः । समग्रहीषुश्च तदर्थं स्वग्रन्थे मीमांसाविषयघटितान् प्रस्तावानिति नावि-ज्ञातमिदं बहुविदाम् । कैयटदीक्षितादयोऽपि व्याकरणा मीमांसानुरोधेनव सूत्रार्थं वर्णयन्तः शब्दसाधुत्वं निश्चिन्वन्ति । मञ्जुपावयाकरणभूषणसदृशानां ग्रन्थाना-मध्ययनमृते मीमांसापासनया दृष्टंस्तेवेति मन्ये ।

यद्यपि यागादिधर्मः श्रुतिपृक्तो दृश्यते तथापि श्रुतिष्वेवांक्त इति न मन्तव्यम् । मनुयाज्ञवल्क्यादिभिलोकव्यवहारार्थं स्मृतिष्वपि बहुधा धर्मस्य संगृहीतत्वात् । यं हि स्मार्ता धर्म इत्याचक्षते धर्मविदः । अत एवांक्ते याज्ञवल्क्येन—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ इति ।

किञ्च वेदवाक्यान्युद्दिश्य जमिनिनाऽस्य शास्त्रस्य प्रणीतत्वेऽपि 'घटायोन्मीलितं चक्षुः पटं नहि न पश्यति' इति न्यायेन स्मार्तादिवाक्यान्तरेष्वपि प्रवर्ततेवेदं मीमांसाशास्त्रम् । यतोऽन्योद्देशेन निर्मितस्याप्यन्योपकारकत्वं लांके दृश्यते । यथा नागरिकाणां स्नानपानादिव्यवहारसिद्ध्यर्थं कुल्यां निर्मायाऽऽनीतमप्युदकं मार्गेऽन्तराऽन्तराऽनागरिकभ्यामपि क्षेत्रार्थं दीयते एव । अध्वर्गः पश्वादिभिश्राप्युपभुज्यते । तदुक्तं महाभाष्यकाररनुदात्तजित इति सूत्रे भाष्ये— 'अन्यार्थमपि प्रकृतमन्यार्थं भवति । तद्यथा-शाल्यार्थं कुल्याः प्रणीयन्ते ताभ्यश्च पानीयं पीयत उपस्पृश्यते शाल्यश्च भाष्यन्ते' इति ।

अथ मन्येथास्तत्रतत्र वेदवाक्यान्वेदोदाहृतानि दृश्यन्त इति तादृशवाक्ये-ष्वेवेदं शास्त्रमुपयाज्यतां न वाक्यान्तरेष्विति चेद्बुद्धं भ्रान्तोऽसि । नहि सुष्युपास्य इत्यादि लौकिकं प्रयोगमुदाहृत्य विवरितमिकांयणचीन्यादि शास्त्रं तादृशलौकिके-ष्ववोपयाज्यतां न 'सूर्यं मुषिरामिव' इत्यादौ वेदिके इति युक्तं कल्पयितुम् ।

अपि च नैव कर्मकाण्डीयश्रुतिवाक्यान्नुपादाय प्रदर्शिता गुणदोषा वाक्या-न्तराण्याश्रित्य गुणदोषत्वं परित्यज्युरिति मांप्रतम् । नह्यात्मार्थं संपादिता स्वाद्वी रसाला शिखरिणी वा परं नरं प्राप्य माधुर्यं परित्यजति । नहि वा द्विषदर्थं निर्मितं विषमयमार्षधं मित्रमुपस्थायामृतं भवति । तस्माच्छ्रीमत्याऽनया मीमांस-या महत्याऽऽरभत्या ये वेदवाक्येषु गुणदोषा विवेचितास्ते केवलं वाक्यत्वनिब-न्धना एव न वेदिकत्वमूलका इत्येव कल्पना ज्यायसी । तच्च वाक्यत्वं श्रुतिवाक्ये-ष्विव स्मृत्यादिवाक्यान्तरेष्वप्यविशिष्टम् । तत्र कथमिवेयं मीमांसा श्रुताविव वाक्यान्तरेष्वपि अर्थनिर्धारणं कर्तुं न प्रवर्ततेति त्वमेव प्रशान्तेन मनसा विचार-